Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स० ४६२

अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय

डा. सुभाष चन्द्र खरे
एल. एल. डी.
विधि संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय
भारत सरकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय

डा० सुभाष चन्द्र खरे
एल-एल० डी०
विधि संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय

विधि साहित्य प्रकाशन
विधि, न्याय और कम्पनी-कार्य मन्त्रालय
भारत सरकार

1—11 VSP/ND/83

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

© 1983 भारत सरकार

सम्पादन
देवेन्द्र
सहायक सम्पादक
विधि साहित्य प्रकाशन

मूल्य : (देश में) रु. 16.70 (विदेश में) पौंड 1.95 या डालर 6 2 सेंटस्

प्रकाशन और विक्रय प्रबन्धक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि, न्याय और कम्पनी-कार्य मन्त्रालय (विधायी विभाग), भारत सरकार, भगवानदास रोड, नई दिल्ली—110 001 द्वारा प्रकाशित तथा प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नाशिक—422 006 द्वारा मुद्रित।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह कृति परमपूज्य पिताजो स्वर्गीय हजारी लालजो खरे
तथा
माता स्वर्गीया श्रीमती रामकली देवी
को
सादर समर्पित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राक्कथन

भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी विश्व की समृद्ध भाषाओं में से विश्व के बहुत बड़े समुदाय की भाषा है । किन्तु हिन्दी को राष्ट्र भाषा का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने के इतने वर्ष बाद भी उसमें विधि साहित्य का अब भी अभाव-सा है । यह अभाव मुझे विधि के विद्यार्थी जीवन से ही खटकता रहा है । 1964 में एल-एल० एम० का विद्यार्थी बनने के बाद ही मैंने इस कमी को पूरा करने के लिए कार्य प्रारम्भ कर दिया था । 1967 में एल-एल० एम० परीक्षा पास करने के बाद 1968 में मेरी पहली पुस्तक "संयुक्त राष्ट्र संघ और उसके कार्य" के नाम से प्रकाशित हुई । 1972 में दूसरी पुस्तक "भारत का संविधान" नाम से प्रकाशित हुई । इस पुस्तक की सबसे बड़ी उपयोगिता यह थी कि इसमें संविधान के मूल पाठ के साथ व्याख्यात्मक टीका प्रस्तुत की गई थी । 1974 में भारत सरकार ने इसे पुरस्कृत कर मान्यता प्रदान की ।

भारत सरकार हिन्दी में विधि साहित्य के मौलिक लेखन तथा विकास में रुचि ले रही है तथा विद्वानों द्वारा एल-एल० बी० स्तर के विद्यार्थियों के हितों को ध्यान में रखकर उच्च कोटि के ग्रन्थों का सृजन करा रही है। इस पुस्तक का सृजन भी इसी नीति के अन्तर्गत भारत सरकार से अनुबन्धाधीन किया गया है ।

इसकी भाषा को परिमार्जित करने, भाषा और भाव में उचित सामान्जस्य प्र दान किए जाने की दिशा में श्री देवेन्द्र जी, सहायक सम्पादक, विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रदान किए गए अथक सहयोग के लिए मैं आभारी हूं ।

इस पुस्तक में जिन विद्वानों, विधिवेत्ताओं की रचनाओं की सहायता ली गई है उनको मैं अपना आभार, श्रद्धा और कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूं ।

इस पुस्तक के प्रणयन में मेरी व्यस्तता के कारण हुई उपेक्षा और कष्टों के बावजूद धर्मपत्नी श्रीमती कान्ति खरे तथा पुत्री से प्राप्त सौहार्द और सहयोग के लिए भी मैं आभारी हूं ।

आशा है पुस्तक विधि विद्यार्थियों, अन्तरराष्ट्रीय विधि के विद्वानों तथा उसमें रुचि रखने वाले सभी विद्वतजनों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी तथा वे त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे ।

सुभाष चन्द्र खरे

नई दिल्ली
10 अगस्त, 1983

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विषय सूची

पृष्ठ

समर्पण iii

प्राक्कथन v

निर्णय सूची x

उद्धृत निर्णयों की सूची xii

1. अन्तरराष्ट्रीय विधि के स्रोत 1–45

दि पैकेट हबाना, दि लोला 3

दि स्कॉटिया 7

नार्थ सी कॉण्टिनेण्टल शेल्फ केसिज़ . . . 9

वेस्ट रेण्ड सेण्ट्रल गोल्ड माईनिंग कम्पनी लिमिटेड बनाम किंग 150

असाइलम केस (कोलम्बिया/पीरू) . . . 20

एस० एस० लोटस का मामला . . . 28

भारतीय राज्यक्षेत्र पर रास्ते के अधिकार से सम्बन्धित मामला (पुर्तगाल बनाम भारत) 40

एंग्लो-नार्वेयन फिशरीज़ का मामला . . . 112

2. अन्तरराष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि का सम्बन्ध . . 46–60

दि पैकेट हबाना, दि लोला 3

वेस्ट रेण्ड सेण्ट्रल गोल्ड माईनिंग कम्पनी लिमिटेड बनाम किंग 150

चुंग ची चियुंग बनाम किंग 49

आर० बनाम केन 52

अलबामा माध्यस्थम् 57

3. विधि के विषय 61–69

रिपेरेशन फॉर इन्जरीज़ सफर्ड इन दि सर्विस ऑफ दि यूनाइटेड नेशन्स 63

4. मान्यता 70–98

लूथर बनाम सागर 73

अरन्तज़ाजू मेंडी 77

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

सिविल एयर ट्रान्सपोर्ट इन्कारपोरेशन **बनाम** सेण्ट्रल एयर ट्रान्स-पोर्ट कारपोरेशन 80

टिनाको कन्सेशन्स (ग्रेट ब्रिटेन-कोस्टा रिका आरबिट्रेशन) . 85

हेली सिलासी **बनाम** केबिल एण्ड वायरलैस लिमिटेड . . 93

ग्विडनिया अमेरिका लाइनी जेग्लुगोव स्पोल्का सक्यजना **बनाम** बोगुस्लास्की 95

5. राज्यक्षेत्र 99–110

प्रिय विहार मन्दिर का मामला (कम्बोडिया **बनाम** थाईलैण्ड)

पॉमस द्वीप का मामला 121

6. समुद्रीय सीमा 111–119

एंग्लो-नार्वेयन फिशरीज़ का मामला . . . 112

नार्थ सी कॉण्टिनेण्टल शेल्फ केसिज़ . . . 9

आर० **बनाम** केन 52

कार्फू चैनल का मामला 143

7. राज्य अधिकारिता 120–134

पॉमस द्वीप का मामला 121

इचमैन **बनाम** अटर्नी जनरल, इज़रायल . . . 128

एस० एस० लोटस का मामला 28

8. अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता . . 135–148

एंग्लो-इरानियन ऑयल कम्पनी का मामला (युनाइटेड किंगडम **बनाम** ईरान) 136

कॉर्फू चैनल का मामला 143

9. राज्य उत्तराधिकार 149–158

वेस्ट रेण्ड सेण्ट्रल गोल्ड माइनिंग कम्पनी लिमिटेड **बनाम** किंग . 150

भारतीय राज्यक्षेत्र पर रास्ते के अधिकार से सम्बन्धित मामला (पुर्तगाल **बनाम** भारत) 40

टिनाको कन्सेशन्स (ग्रेट ब्रिटेन-कोस्टा रिका आर्बिट्रेशन) . 85

हेली सिलासी **बनाम** केबिल एण्ड वायरलैस लिमिटेड . . 93

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

10. **प्रत्यर्पण** 159–167
कस्तोनी का मामला 161
कतिर **बनाम** फेडरल पब्लिक प्रासीक्यूटर . . . 163
जान फैक्टर **बनाम** एच० सी० डब्ल्यू० लौवनहैमर . . 167

11. **राजनयिक उन्मुक्तियां और विशेषाधिकार** . 168–186
मिगहिल **बनाम** जोहोर का सुल्तान . . . 170
दि क्रिस्टिना 173
डिकिन्सन **बनाम** डेल सोलर 176
आर० **बनाम** केण्ट 179
बर्गमैन **बनाम** डी० साईस 181
आर० **बनाम** मदान 182
जोहोर का सुल्तान **बनाम** अबूबकर तुनकू अरिस बन्दाहार . 184

12. **शक्ति प्रयोग** 187–201
कैरोलाइन का मामला 189
दि नौलीला 191
कॉर्फू चैनल का मामला 194

13. **शत्रु प्रकृति** 202–208
डेमलर कम्पनी लिमिटेड **बनाम** कॉण्टिनेण्टल टायर एण्ड रबर कम्पनी (ग्रेट ब्रिटेन) लिमिटेड . . . 203

14. **युद्ध अपराध** 209–220
न्यूरेम्बर्ग निर्णय 210

15. **तटस्थता** 221–242
दि किम 224
दि फ्रान्सिसका 230
दि अप्पाम 237

16. **प्राइज न्यायालय** 243–255
दि जमोरा 244
दि मारिया 252

हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली 256–264
अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली 265–273

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्णय सूची

पृष्ठ

अप्पाम 237

अरन्तज़ाज़ू मैंडी 77

अलबामा माध्यस्थम् 47

असाइलम केस (कोलम्बिया/पीरू) 20

आर० **बनाम** केण्ट 179

आर० **बनाम** केन 52

आर० **बनाम** मदान 182

इचमैन **बनाम** अटर्नी जनरल, इज़रायल . . . 128

एंग्लो-नार्वेयन फिशरीज़ का मामला 112

एस० एस० लोटस का मामला 28

कस्तोनी का मामला 161

कतिर **बनाम** फैडरल पब्लिक प्रासीक्यूटर . . . 163

कॉर्फू चैनल का मामला 143,194

किम 224

कैरोलाइन का मामला 189

क्रिस्टिना 173

ग्डिनिया अमेरिका लाइनी ज़ेग्लुगोव स्पोल्का सक्यिजना **बनाम** बोगु-
स्लास्की 95

चुंग ची चियुंग **बनाम** किंग 49

जमोरा 244

जॉन फैक्टर **बनाम** एच० सी० डब्ल्यू० लौबनहैमर . . 167

जोहोर का सुल्तान **बनाम** अबूबकर तुनकू अरिस बन्दाहार . . 184

टिनाको कन्सेशन्स (ग्रेट ब्रिटेन–कोस्टारिका आरबिट्रेशन) . . 85

डिकिन्सन **बनाम** डेल सोलर 176

डेमलर कम्पनी लिमिटेड **बनाम** कॉण्टिनेण्टल टायर एण्ड रबर कम्पनी
(ग्रेट ब्रिटेन) लिमिटेड 203

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

नार्थ सी कॉण्टिनेण्टल शेल्फ केसिज़ 9
नौलीला 191
न्यूरेम्बर्ग निर्णय 210
पुर्तगाल **बनाम** भारत 40
पॉमस द्वीप का मामला 121
पैकेट हवाना, दि लोला 3
प्रिय विहार मन्दिर का मामला (कम्बोडिया **बनाम** थाईलैण्ड) . 100
फ्रान्सिसका 230
बर्गमैन **बनाम** डी साईस 181
मारिया 252
मिगहिल **बनाम** जोहोर का सुल्तांन 170
युनाइटेड किंगडम **बनाम** ईरान 136
रिपेरेशन फॉर इन्जरीज़ सफर्ड इन दि सर्विस आफ दि युनाइटेड नेशन्स 63
लूथर **बनाम** सागर 73
वेस्ट रैण्ड सेण्ट्रल गोल्ड माइनिंग कम्पनी लिमिटेड **बनाम** किंग . 150
सिविल एयर ट्रान्सपोर्ट इन्कारपोरेशन **बनाम** सेण्ट्रल एयर ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन 80
स्कॉटिया 7
हेली सिलासी **बनाम** केबिल एण्ड वायरलैस लिमिटेड . . 93

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उद्धत निर्णयों की सूची

पृष्ठ

अण्डरहिल **बनाम** हरनेण्डेज़, (1897) 168 यू० एस० 250 . 74

आर० **बनाम** एण्डरसन, (1868) 11 काक्स सी० सी० 198 . 51

आर० **बनाम** केन, (1876) 2 एक्स० डी० 63 . . 52

आर० **बनाम** गवर्नर बोस्टन प्रिज़न, (1955) 1 क्यू० बी० 540 . 162

आर० **बनाम** गोडान-फिन्लोसन, (1941) 1 के० बी० 171 . 51

इचमैन **बनाम** अटर्नी जनरल ऑफ इज़रायल, (1962) 36 आई० एल० आर० 277 . . . . 128;165

इण्डियन नेशनल स्टीमशिप कम्पनी **बनाम** मौक्स फौलबाम, ए० आई० आर० 1955 कलकत्ता 491 . . . 157

इस्ट्रेला का मामला, 4 वीट 298 240

ईस्टर्न ग्रीनलैण्ड का मामला, पी० सी० आई० जे० (1933) सिरीज़ ए/बी संख्या 53; डब्ल्यू० सी० आर० 151 . . 127

एक्स-पार्टी लोपेज का मामला, 6 एफ० सप्लीमेण्ट 342 . . 134

एडीलेड का मामला, 2 राव 111 233

एसेल जॉनसन का मामला, (1921) 1 ए० सी० 473 . . 229

ओहियो **बनाम** हेलबरिंग, 293 यू० एस० 360. . . 175

कर्मशियल एण्ड एस्टेट्स कम्पनी ऑफ इजिप्ट **बनाम** बोर्ड ऑफ ट्रेड, (1925) 17 के० बी० 271 155

किर **बनाम** इलीनोस, (1886) 119 यू० एस० 436 . . 134

कुनार्ड एस० एस० कम्पनी **बनाम** मिलान, (1923) 262 यू० एस० 100 51

कैम्पबल **बनाम** हाल, (1774) 1 कौप 204, 209 . . 152

कोरोक्राफ्ट लिमिटेड **बनाम** पैन अमेरिकन एयरवेज़ लिमिटेड, (1969) 1 क्यू० बी० 616 155

कोलम्बिया जिला **बनाम** एल० पेरिस, (1939) 33 ए० जे० आई० एल० 87 180

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

कोलियो डीलिंग **बनाम** इन्लैण्ड रेवेन्यू कमिश्नर, (1962) ए० सी० 1 155

कोल्जेनेस्की का मामला, ए० एल० 1 क्यू० बी० 1954 (1 ऑल इंग्लैंड लॉ रिपोर्टस 31 (1955) . . . 162

क्लिप्परटन आइलैण्ड आरबिट्रेशन, (1931) 2 आर० आई० ए० ए० 1105 127

क्रिस्टिना का मामला, (1938) ए० सी० 485 . . 155

गोन्जालेज का मामला, 58 ए० जे० आई० एल० (1964) पृष्ठ 1911 162

ग्डिनिया अमेरिका लाइनी ज़ेग्लुगोव स्पोल्का सक्किजना **बनाम** वोगुसलास्की, (1953) ए० सी० 11 . . . 76

ग्लास **बनाम** बैंटसी, (1794) 3 डाल 6 . . . 240

चाओं चियूंग चिंग **बनाम** सम्राट, (1948) 77 सी० एल० आर० 449 156

चुंग ची चियुंग **बनाम** किंग, (1939) ए० सी० 160 . . 155

जमोरा का मामला, (1916) 2 ए० सी० 77 . . 156

टेलर **बनाम** बैस्ट, (1854) 14 सी० बी० 487 . . 177

डफ्फ डेवेलपमेण्ट कम्पनी **बनाम** क्लाण्टन सरकार, (1924) ए० सी० 797, 830 171

डालमिया दादरी सीमेण्ट कम्पनी **बनाम** आयकर आयुक्त, ए० आई० आर० 1955 पेप्सू 3 156,158

डिकिन्सन **बनाम** डिल सोलर, (1930) 1 के० बी० 376 . 176

ड्यूक ऑफ बनसविक **बनाम** सम्राट् हैनोपर, 2 एच० सी० एल० 1 172

नार्थ अमरीकन ट्रेडिंग कम्पनी का मामला, (1926) 4 आर० आई० ए० ए० 26 91

नार्वेयन लोन का मामला, आई० सी० जे० रिपोर्टस् 1957 पृष्ठ 9 60

न्यूरेम्बर्ग निर्णय, 41 ए० जे० आई० एल० 1947 पृष्ठ 172 . 60

पार्लिमेण्ट बैल्ज का मामला, (1880) 5 पी० डी० 197 . 175

पेमी छिबड़ **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 442 157

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

फ्रांस **बनाम** ग्रेट ब्रिटेन, परमानेण्ट कोर्ट आफ इण्टरनेशनल आरबिट्रेशन 1911 165

फ्रेड्रिक मोल्के का मामला, 1 राव 4 . . . .

बेरूबारी का मामला, ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 845 . 157

ब्लिशन **बनाम** ब्लैन्को, (1899) 56 न्यूयार्क सुपरकोर्ट 582 . 181

मद्रास **बनाम** सी० जी० मेनन, ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 517 . . . . . 165, 166

मसरुत्स **बनाम** गेंडवान, (1899) 2 क्यू० बी० 352 . . 180

मिन्क्वाय द्वीपसमूह का मामला, आई० सी० जे० रिपोर्ट्स 1953 पृष्ठ 47 127

मैक्सिकन यूनियन रेलवे लिमिटेड का मामला, (1930) 5 आर० आई० ए० ए० 15 91

मोलवन **बनाम** अटर्नी जनरल, इज़राइल, (1948) ए० सी० 351 130

म्युतीर का मामला, (1894) 2 क्यू० बी० 435 . . 162

यू० एस० **बनाम** ग्रिफिन, (1968) सी० एम० 41 . . 220

यू० एस० **बनाम** रोशल, (1960) 191 एफ० सप्लीमेंट 663 . 181

यू० एस० **बनाम** रोशर, (1886) 119 य० एस० 407 . 165

यूनाइटेड स्टेट्स **बनाम** मैक्सिको ओपीनियन्स, 42 (1926) 92

रहमत उल्ला **बनाम** निजाम हैदराबाद, (1958) ए० सी० 379 171

रिपब्लिक ऑफ बोलिविया एक्सप्लोरेशन सिण्डिकेट का मामला, (1941) 1 चांसरी 139 183

रुस्तमजी **बनाम** सम्राज्ञी, (1876) 2 क्यू० बी० 69 . . 154

रोला का मामला, 6 राव 372 232

लइन्विन्सविल का मामला, 1 वीट 38 . . . 240

ला एमिस्टेड डी रियूस, 5 वीट 385 . . . 240

लोटस का मामला, (1927), सिरीज़ ए, संख्या 10 (2 डब्ल्यू० सी० आर० 20) . . . 129

वाबासिऊट **बनाम** क्रुप, (1878) 9 चांसरी डिवीज़न 351 . 175

विरेन्द्र सिंह **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 447 158

विलियम्स **बनाम** ब्रूफी, (1877) 96 यू० एस० 176 . . 74

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

सक्सेस का मामला, 1 डाड्स 134 232
सम्राट **बनाम** केन (1876) 2 एक्स० डी० 76 . . 156
सचट्रैक्स **बनाम** इज़राइल सरकार, (1964) ए० सी० 556 . 162
सल्वाडोर कमर्शियल कम्पनी **बनाम** सल्वाडोर, (1902) यू० एस० 838 91
सिविल एयर ट्रान्सपोर्ट इन्कारपोरेशन **बनाम** सेण्ट्रल एयर ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन, (1953) ए० सी० 70 . . . 76
सुल्तान ऑफ जोहोर **बनाम** अबूबकर, (1950) ए० सी० 318 . 171
सेण्टीसीमा ट्रिण्डाड का मामला, 7 वीट 283 . . . 240
सोम फ्रेचर **बनाम** एन० वी० ग्रेव्र, (1943) ए० सी० 203 . 208
स्वरेज का मामला, (1918) 1 चान्सरी 176, 193 . . 177
श्रीकृष्ण शर्मा **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य, ए० आई० आर० 1954 कलकत्ता 591. 157
हटीगडेन का मामला, 3 राव 324 233
हेनरिच और मारिया का मामला, 1 राव 148 . . 234
होल ब्रुक **बनाम** हेण्डरसन, (1839) 6 न्यूयार्क सुपर कोर्ट 619 . 181

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

1. अन्तरराष्ट्रीय विधि के स्रोत

अन्तरराष्ट्रीय विधि पद का प्रयोग सर्व प्रथम बेन्थम ने 1780 में किया था। अन्तरराष्ट्रीय विधि प्रथाओं, रूढ़ियों और संधियों में प्राप्त होने वाले नियमों का समूह है जिन्हें सभ्य राज्य (अर्थात् देश या राष्ट्र) अपने पारस्परिक सम्बन्धों में आबद्धकर मानते हैं। अन्तरराष्ट्रीय विधि का विषय 'राज्य' माना गया है किन्तु वर्तमान समय में अन्तरराष्ट्रीय विधि का इतना विस्तार हो गया है और उसका क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि अब इस विषय के अन्तर्गत अन्तरराष्ट्रीय राजकीय संस्थाएं, गैर राजकीय संस्थाएं और व्यक्ति भी आ जाते हैं।

अन्तरराष्ट्रीय विधि के स्रोत : स्रोत का सामान्य अर्थ उद्गम स्थान से होता है किन्तु अन्तरराष्ट्रीय विधि के सम्बन्ध में इसका तात्पर्य उस सामग्री से लिया जाता है जिसका प्रयोग अन्तरराष्ट्रीय विवादों को निपटाने के लिए विधि के रूप में किया जाता है। इनमें वे तरीके और प्रक्रियाएं सम्मिलित होती हैं जिनके द्वारा अन्तरराष्ट्रीय विवादों का निपटाण किया जाता है। सामान्यतया रूढ़िवादी दृष्टि से इसके निम्नलिखित स्रोत माने जाते हैं—रूढ़ियां, संधियां न्यायालयों तथा अधिकरणों के निर्णय, विधि शास्त्रियों तथा भाष्यकारों की रचनाएं आदि। अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय परिनियम के अनुच्छेद 38 में निम्न-लिखित स्रोतों का वर्णन है—संधियां, रूढ़ियां, सभ्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत विधि के सामान्य नियम। इन्हें मुख्य स्रोत की श्रेणी में रखा गया है तथा न्यायिक निर्णयों, मान्यताप्राप्त न्याय शास्त्रियों तथा भाष्यकारों की कृतियों को विधि के नियमों का निर्धारण करने वाले गौण स्रोत माना गया है।

अन्तरराष्ट्रीय रूढ़ि : यह एक ऐसी प्रथा होती है जिसे विधि का बल प्राप्त हो जाता है। प्रथा राज्यों द्वारा अधिकतर दोहराया जाने वाला व्यवहार है और जब वह प्राचीनता और निरन्तरता से एक रूपता प्राप्त कर लेती है तथा राज्यों द्वारा अपने व्यवहार में आबद्धकर मान ली जाती है तो वह रूढ़ि का स्वरूप धारण कर लेती है। अतः प्रथा को रूढ़ि की प्रारम्भिक स्थिति भी कहा जाता है। वैसे प्रथा में असंगतता हो सकती है किन्तु लगातार प्रयोग से जब असंगतता समाप्त हो जाती है और एकरूपता आ जाती है तथा यह अनुमान स्थापित हो जाता है कि राज्य भविष्य की ऐसी परिस्थितियों में उसी प्रकार आचरण करेंगे और सामान्य व्यवहार में वह संगत रूप से अपनाई जाने लगती है तो यह माना जाने लगता है कि उसे सभ्य राज्यों की स्वीकृति प्राप्त हो गई

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। किन्तु प्रथा द्वारा रूढ़ि का स्वरूप धारण करने के लिए इतनाही पर्याप्त नहीं है; इसके लिए यह भी आवश्यक है कि राज्य उसका व्यवहार विधि के रूप में करें अर्थात् यह धारणा रख कर करें कि ऐसा करना उनका वैध दायित्व है। जब प्रथा इस व्यवहारिक स्थिति को प्राप्त कर लेती है तब वह रूढ़ि बन जाती है।

आगे दिए हुए निर्णयों में यह स्पष्ट किया गया है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के इन स्रोतों की न्यायालयों ने किस प्रकार व्याख्या की है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दि पैकेट हवाना, दि लोला
(The Paquete Habana, The Lola)

175 यू० एस० 677

विभिन्न राज्यों की प्रथाओं और रूढ़ियों से अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों को किस प्रकार अभिनिश्चित किया जाता है। अन्तरराष्ट्रीय विधि के स्रोत के रूप में मान्यताप्राप्त विधिवेत्ताओं की रचनाओं का क्या स्थान है तथा अन्तरराष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि के सम्बन्धों के बारे में अमरीका में प्रचलित प्रथा क्या है। इन सब बातों का विवेचन दि पैकेट हवाना, दि लोला के मामले में किया गया है।

* * * *

पैकेट हवाना और लोला दो मत्स्य नौकाएं क्यूबा के तटीय जल में मछली पकड़ा करती थीं। इन पर स्पेन के ध्वज लगे हुए थे तथा इनके स्वामी तथा मास्टर हवाना में रहने वाले स्पेनिश थे। ये दोनों नौकाएं जब स्पेन के क्षेत्रीय जल में मछली पकड़ रही थीं तब अमेरीका ने स्पेन से युद्ध की घोषणा कर क्यूबा के उत्तरी तट की नाकाबंदी कर दी। जब ये नौकाएं मछली पकड़ कर लौट रही थीं तो इन्हें नाकाबंदी करने वाले अमेरीका के युद्ध पोतों ने पकड़ लिया। इन नौकाओं में कोई गोला-बारूद नहीं था। इनके पकड़े जाने से पूर्व नाविकों को न तो युद्ध का और न ही नाकाबंदी की सूचना का ज्ञान था। पकड़े जाने में न तो उन्होंने कोई बाधा डाली और न ही भागने का प्रयास किया। इसके भी कोई प्रमाण नहीं मिले कि ये नौकाएं या नाविक शत्रु की सहायता करने वाले थे। इन दोनों नौकाओं को युद्ध के प्राइज के रूप में अभिगृहीत कर अमेरीका के जिला न्यायालय के आदेश के अधीन बेच दिया गया। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अध्यादेश, संधि या उद्घोषणा के अभाव में ये नौकाएं अभिग्रहण से मुक्त नहीं हैं। इस निर्णय के विरुद्ध नौकाओं के मास्टर और स्वामी मामले को उच्चतम न्यायालय में ले गए। न्यायालय के समक्ष मुख्य प्रश्न यह था कि क्या युद्धकाल में शत्रु की मत्स्य नौकाओं को पकड़े जाने से छूट-प्राप्त है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उन्हें ऐसी छूट प्राप्त है।

न्यायालय ने मत्स्य नौकाओं के पकड़े जाने से छूट-प्राप्त होने के नियम के विकास के इतिहास को देखा कि किस प्रकार वह अन्तिम रूप से सभ्य राष्ट्रों के मध्य स्थापित हुआ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सन् 1403 और 1406 में हेनरी चतुर्थ ने अपने नौसेनापतियों तथा अन्य अधिकारियों को मछली पकड़ने वाली नौकाओं की सुरक्षा सम्बन्धी आदेश दिए थे। 26 अक्तूबर, 1403 के आदेश में यह कहा गया था कि मछली पकड़ने वाली नौकाओं की सुरक्षा से सम्बन्धित आदेश ब्रिटेन और फ्रांस के बीच हुई संधि के अनुसार दिए जा रहे हैं जिससे कि वे अपना व्यवसाय किसी प्रकार के हस्तक्षेप के बिना अच्छी तरह संचालित कर सकें।

फ्रांस, स्पेन, हालैण्ड, इंग्लैण्ड, रूस, अमरीका, जापान तथा अन्य राज्यों ने युद्ध के दौरान शत्रु की मत्स्य नौकाओं के पकड़े जाने से छूट प्रदान की थी यद्यपि कहीं-कहीं इस रूढ़ि के अपवाद भी प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ **दि यंग जैकब एण्ड जोहाना**[1] के मामले में लार्ड स्टोवैल ने कहा है कि पूर्व युद्धों में सामान्यतया मत्स्य नौकाओं को पकड़ा नहीं जाता था किन्तु यह विधि का नियम नहीं है केवल शिष्टाचार का नियम है। यह सही है कि इस विषय पर इंग्लैण्ड का कोई न्यायिक निर्णय प्राप्त नहीं होता है लेकिन उसके बाद सैकड़ों वर्षों में यह शिष्टाचार या अनुदान सभ्य राष्ट्रों की स्वीकृति प्राप्त कर अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम के रूप में विकसित हो गया है।

"अन्तरराष्ट्रीय विधि हमारी (अमेरीका की) विधि का अंग है तथा समुचित अधिकारिता के न्यायालयों को चाहिए कि जब कभी अन्तरराष्ट्रीय विधि पर आधारित अधिकार का कोई प्रश्न उनके समक्ष विचारण के लिए आए तो वे उसे अभिनिश्चित करके लागू करें। जहां कोई संधि या कार्यपालक या विधायी कार्य या न्यायिक निर्णय नहीं है वहां उसके साक्ष्य के रूप में सभ्य राष्ट्रों की रूढ़ियों और प्रथाओं का आश्रय लिया जाना चाहिए तथा इन रूढ़ियों और प्रथाओं के साक्ष्य के रूप में विधिवेत्ताओं तथा व्याख्याकारों की, जिन्होंने गहन अध्ययन द्वारा अपने को उस विषय से अवगत कराया है, रचनाओं की सहायता ली जानी चाहिए तथा उनकी कृतियों का यथार्थ विधि के विश्वसनीय साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।"[2]

"व्हीटन ने अन्तरराष्ट्रीय विधि के मुख्य स्रोतों में मान्यताप्राप्त पाठ्य-पुस्तक लेखकों को बहुत महत्व दिया है जो यह बताते हैं कि राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत प्रथा क्या है या राज्यों के पारस्परिक व्यवहार में उनकी परिभाषाएं तथा उनका स्वीकृत संशोधित स्वरूप क्या है। सामान्य रूप से उनकी अभिव्यक्तियां निष्पक्ष तथा सभ्य राष्ट्रों की प्रथाओं और उनके भावों की साक्षी होती हैं तथा जितनी

---

[1] 1 सी० रोब 20 (1 C. Rob 20).

[2] हिल्टन बनाम गुयोट (Hilton *Vs.* Guyot), 159 यू० एस० 113.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बार राजनयिकों द्वारा उन्हें प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है उनकी प्रामाणिकता उतनी ही बढ़ती जाती है।"[1]

चान्सलर केण्ट का मत है कि "किसी प्रथा के सम्बन्ध में अधिक उच्च और प्रामाणिक स्वीकृतियों या अभिसमयजात विधि के अभाव में विदेशी राष्ट्रों के अध्यादेशों और मान्यताप्राप्त विधिवेत्ताओं की रचनाओं को महत्ता दी जानी चाहिए तथा जिन प्रश्नों के सम्बन्ध में विधिवेत्ता एकमत हैं वहां नियम की स्थापना सम्बन्धी अनुमान उतना ही अधिक हो जाता है और कोई भी सभ्य राष्ट्र, जो साधारण विधि और न्याय की उद्दण्डतापूर्वक अवहेलना नहीं करता, अन्तरराष्ट्रीय विधि के मान्य लेखकों के अभिन्न मत की उपेक्षा नहीं करेगा।"

न्यायालय ने अर्जण्टीना, आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैण्ड, पुर्तगाल, स्पेन तथा स्विटजरलैण्ड के अन्तरराष्ट्रीय विधि के लेखकों के मतों को जानने के बाद कहा कि "नजीरों तथा सम्मानित लेखकों की रचनाओं का पुनर्विलोकन करने से पर्याप्त रूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विषय पर वर्तमान समय में निर्धन और परिश्रमी व्यक्तियों के प्रति मानवीय भावना तथा युद्धमान राष्ट्रों की पारस्परिक सुविधा पर आधारित, अभिव्यक्त संधि या किसी सार्वजनिक कार्यों से स्वतंत्र, सभ्य राष्ट्रों की सामान्य सहमति से स्थापित अन्तरराष्ट्रीय विधि का यह एक नियम है कि शत्रु की निशस्त्र मत्स्य नौकाओं को जो ईमानदारी से अपने कार्य में संलग्न हैं तथा शत्रु पक्ष को किसी प्रकार की सहायता नहीं पहुंचा रही हैं, अपने उपकरणों, सम्भरणों, स्थोरा तथा नाविकों सहित युद्ध प्राइज के रूप में पकड़े जाने से छूट प्राप्त है।"

प्राइज न्यायालय राज्य की अधिनियमित विधि या संधिगत उपबन्धों के अभाव में अन्तरराष्ट्रीय विधि को लागू करने और इस नियम की न्यायिक अवेक्षा कर उसे लागू करने के लिए आबद्ध हैं। इस न्यायालय का, जो अन्तरराष्ट्रीय विधि को लागू करता है, यह घोषित करना कर्त्तव्य है कि ऐसी नौकाओं को पकड़ा जाना अवैध था।

न्यायालय ने जिला न्यायालय (डिस्ट्रिक्ट कोर्ट) के निर्णय को उलटते हुए यह आदेश दिया कि नौकाओं के विक्रय से प्राप्त धन तथा उस पर ब्याज, बाद व्यय तथा नुकसानी का अभ्यर्थियों को संदाय किया जाए।

* * * *

टिप्पणी : इस मामले में न्यायालय ने निम्न सिद्धान्तों को स्वीकृति प्रदान की है।

1. अन्तरराष्ट्रीय विधि अमेरीका की राष्ट्रीय विधि का अंग है। समुचित अधिकारिता के न्यायालयों का यह कर्त्तव्य है कि वे अन्तरराष्ट्रीय विधि पर आधारित अधिकार के

[1] व्हीटन—इण्टरनेशनल लॉ, आठवां संस्करण, पृष्ठ 15.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रश्नों पर विचारण करते समय उन्हें अभिनिश्चित करके लागू करें। इस सम्बन्ध में अमेरीका की प्रथा के विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए **डिकिन्सन--दि लॉ ऑफ नेशन्स इज पार्ट ऑफ दि नेशनल लॉ ऑफ दि यूनाइटेड नेशन्स**, 101 यू० आफ पी० एस० रिव्यू 26 (1952)।

2. अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम अभिनिश्चित करने के लिए जहां कोई संधि या कार्यपालक या विधायी कार्य या न्यायिक निर्णय प्राप्त न हो वहां न्यायालय को इन रूढ़ियों और प्रथाओं के साक्ष्य के रूप में विधिवेत्ताओं तथा व्याख्याकारों की, जिन्होंने गहन अध्ययन द्वारा अपने को उस विषय से अवगत कराया है, रचनाओं की सहायता लेनी चाहिए तथा उनकी कृतियों का यथार्थ विधि के विश्वसनीय साक्ष्य के रूप में प्रयोग करना चाहिए। सामान्य रूप से उनकी अभिव्यक्तियां निष्पक्ष तथा सभ्य राष्ट्रों की प्रथाओं और उनके दावों की प्रमाणित साक्ष्य होती हैं।

3. प्राइज न्यायालय अन्तरराष्ट्रीय विधि लागू करने के लिए आबद्ध है।

4. सामान्य अन्तरराष्ट्रीय विधि का यह एक स्थापित नियम है कि युद्धकाल में शत्रु की तटीय मत्स्य नौकाएं जो शस्त्र रहित हैं और ईमानदारी से मछली पकड़ने के कार्य में लगी हुई हैं तथा शत्रु की सहायता नहीं कर रही हैं, अपने उपकरणों, सम्भरणों, स्योरा तथा चालकों सहित युद्ध के प्राइज के रूप में नहीं पकड़ी जा सकतीं।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दि स्कॉटिया
(The Scotia)

14 वालेस 170 : 81 यू० एस० 822

समुद्र में दो पोतों में होने वाली टक्कर में अन्तरराष्ट्रीय विधि में दोनों पक्षकारों का दायित्व क्या है और इस सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय विधि के किन नियमों का विकास हुआ है। इन सब बातों का विवेचन स्कॉटिया के मामले में किया गया है।

* * * *

8 अप्रैल, 1867 की रात्रि को अमेरीकी पोत बर्कशायर (Berkshire) और ब्रिटिश स्टीमर स्कॉटिया (Scotia) के बीच अटलाण्टिक महासागर में टक्कर हो गई। बर्कशायर न्यू ओलियन्स से हावरे जा रहा था तथा स्कॉटिया लीवरपूल से न्यूयार्क जा रहा था। इस टक्कर में बर्कशायर डूब गया। बर्कशायर के स्वामियों ने स्कॉटिया के विरुद्ध न्यूयार्क के जिला न्यायालय (डिस्ट्रिक्ट कोर्ट) में नुकसानी का दावा किया। उनका तर्क था कि टक्कर स्कॉटिया की गलती से हुई है। स्कॉटिया का तर्क था कि वह अन्तरराष्ट्रीय विधि के रोशनी सम्बन्धी नियमों का पालन कर रहा था जिन्हें 9 जनवरी, 1863 के ब्रिटिश आर्डर्स इन काउन्सिल द्वारा निर्धारित किया गया था तथा जिन्हें संसार के 34 वाणिज्यिक राज्यों ने अपनी राष्ट्रीय विधि में अपना कर स्वीकार कर लिया है। अमेरीका ने भी 1864 के कांग्रेस के अधिनियम द्वारा उन्हें स्वीकार कर लिया था। उक्त नियमों के अनुसार स्कॉटिया उचित रोशनी तथा मस्तूल के सिरे पर सफेद, स्टारबोर्ड पर हरी तथा पत्तन की दिशा में लाल रोशनी का प्रयोग कर रहा था। जबकि बर्कशायर, जो हरी और लाल रंग की रोशनी प्रदर्शित करने का अधिकारी था, अन्तरराष्ट्रीय विधि के विपरीत अपने अगले भाग में डेक की सतह से 4 फीट की ऊंचाई पर सफेद रोशनी प्रदर्शित कर रहा था। पास के जल में इस रोशनी को देखने से स्कॉटिया के अधिकारियों को उसके मस्तूल पर लगे होने का अनुमान हुआ। परिणामस्वरूप बर्कशायर के स्टीमशिप होने और काफी दूरी पर होने का उनका अनुमान दृढ़ हो गया क्योंकि रोशनी के विनियमों के अनुसार सफेद रोशनी 5 मील की दूरी तक तथा रंगीन रोशनी 2 मील की दूरी तक दिखाई देती है। इस भ्रम के कारण दोनों पोतों में टक्कर हो गई और बर्कशायर डूब गया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ब्रिटिश आर्डर्स इन काउन्सिल द्वारा रोशनी सम्बन्धी नियम समुद्र में पोतों की टक्कर को रोकने के लिए लागू किए गए हैं तथा बहुत से वाणिज्यिक राज्यों द्वारा अपना लिए जाने से वे एक सामान्य समुद्री नियम या रूढ़ि बन गए हैं। इन विनियमों तथा कांग्रेस के 1864 के अधिनियम के अनुसार बर्कशायर केवल हरी और लाल रोशनी प्रदर्शित करने के लिए बाध्य था तथा ऐसा न करने से उसके स्वामी नुकसानी प्राप्त करने के हकदार नहीं हैं। बर्कशायर द्वारा प्रचलित समुद्री विधि का उल्लंघन किए जाने के कारण स्कॉटिया नुकसान के लिए उत्तरदायी नहीं है। अतः दावा खारिज कर दिया गया। सरकिट न्यायालय ने भी इस निर्णय की पुष्टि कर दी। इसके बाद मामला अपील में सुप्रीम कोर्ट ले जाया गया तथा उसने भी नीचे के न्यायालयों के निर्णयों की पुष्टि कर दी।

सुप्रीम कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया कि "9 जनवरी, 1863 के ब्रिटिश आर्डर्स इन काउन्सिल द्वारा स्टीमशिप तथा चल जलयानों (सेलिंग वैसल्स) के लिए रोशनी प्रदर्शन के नियम और विनियमों का निर्धारण किया गया था जिन्हें 1864 के अन्त तक 34 वाणिज्यिक राष्ट्रों ने अपना लिया था। अतः उन्हें वैध रूढ़ि के रूप में स्वीकृति प्राप्त हो गई थी।"

"कोई एक राष्ट्र समुद्री विधि को, जो सभ्य राष्ट्रों के समुदायों की सामान्य सहमति पर आधारित है, बदल नहीं सकता। आचरण के नियम के रूप में सामान्य स्वीकृति प्राप्त कर लेने से वह बाध्यकर हो जाती है। नौ-परिवहन सम्बन्धी नियम, जो मूल रूप से दो राज्यों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं तथा 30 से अधिक प्रमुख वाणिज्यिक राज्यों द्वारा बाध्यकर नियमों के रूप में स्वीकार कर लिए जाते हैं, समुद्री विधि के अंग बन जाते हैं तथा वैध रूढ़ि के रूप में विकसित माने जाने लगते हैं। टक्कर के स्थान तथा समय सम्बन्धी इस विधि को लागू करना केवल एक सामान्य समुद्री विधि के रूप में व्यवहार करना नहीं बल्कि एक ऐतिहासिक तथ्य को मान्यता देना है कि मानवता की सामान्य सहमति द्वारा ये नियम सामान्य दायित्व के रूप में स्वीकार कर लिए गए हैं। इस तथ्य की न्यायिक अवेक्षा की जा सकती है क्योंकि अन्तरराष्ट्रीय विधि को तथ्य के रूप में प्रमाणित किए जाने की आवश्यकता नहीं होती जबकि राष्ट्रीय विधि के सम्बन्ध में होती है।"

अपील खारिज की गई।

* * * *

टिप्पणी : उपरोक्त निर्णय यह स्पष्ट करता है कि एक या दो राज्यों में निर्धारित कोई भी सामान्य नियम बहुसंख्यक राज्यों द्वारा अपनी राष्ट्रीय विधि में अपनाए जाने पर ही रूढ़ि विधि का अंग बन जाते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नॉर्थ सी कॉण्टिनेण्टल शेल्फ केसिज़
(North Sea Continental Shelf Cases)

आई० सी० जे० रिपोर्ट्स 1969 पृष्ठ 3

इस मामले में विचारणीय प्रश्न यह था कि महाद्वीपीय मग्नतट भूमि (कॉण्टिनेण्टल शेल्फ) के परिसीमन में अन्तरराष्ट्रीय विधि के कौन-से सिद्धान्त लागू होते हैं। किसी अभिसमय (कन्वेन्शन) में समाविष्ट नियमों को रूढ़िजन्य विधि के रूप में किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है तथा अभिसमयात्मक नियम किस प्रकार रूढ़िजन्य विधि के रूप में विकसित हो जाते हैं और उन्हें किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस प्रश्न पर भी विचार किया गया था कि अभिसमयात्मक नियम तृतीय पक्षकार पर लागू किए जा सकते हैं या नहीं।

* * * *

उत्तरी सागर (नार्थ सी) एक छिछला समुद्र है तथा उसकी गहराई 200 फैदम तक होने से उसके चारों ओर स्थापित राज्यों की महाद्वीपीय मग्नतट भूमि सभी राज्यों की सीमा के अन्तर्गत आ जाती है। अत: इस भूमि के विभाजन के सम्बन्ध में आमने-सामने तथा पार्श्वस्थ राज्यों के बीच दिसम्बर, 1964 और जून, 1965 में करार हुए थे जिनके अन्तर्गत पार्श्वस्थ राज्यों द्वारा समुद्र तट से 'समदूरस्थ रेखा' के आधार पर तथा आमने-सामने के राज्यों द्वारा 'मध्य रेखा' के आधार पर उस भूमि के परिसीमन को स्वीकार किया गया। इन करारों के आधार पर यूनाइटेड किंगडम, नार्वे, डेन्मार्क और नीदरलैण्ड के बीच आमने-सामने के राज्यों के महाद्वीपीय मग्नतट भूमि क्षेत्रों के बीच खींची गई 'मध्य रेखाओं' के द्वारा उत्तरी सागर (नार्थ सी) का परिसीमन हो गया था। किन्तु इस तरीके के आधार पर पार्श्वस्थ राज्यों यथा डेन्मार्क, नीदरलैण्ड और फैडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी के बीच तट के बटवारे के सम्बन्ध में विवाद उत्पन्न हुए। फैडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी की मग्नतट भूमि डेन्मार्क और नीदरलैण्ड के बीच स्थित है और उसका समुद्र तट अन्दर की ओर धंसा हुआ है; जबकि डेन्मार्क तथा नीदरलैण्ड का तट समुद्र की ओर उभरा हुआ है। परिसीमन का समदूरस्थ तरीका अपनाने पर जर्मनी को कम समुद्र तट प्राप्त होता था जबकि डेन्मार्क और नीदरलैण्ड को अधिक। दिसम्बर, 1964 तथा जून, 1965 के करारों के आधार पर आंशिक सीमा का निर्धारण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर लिया गया था जिसके अनुसार जर्मनी का कहना था कि परिसीमन के समदूरस्थ तरीकों को मानने के लिए वह बाध्य नहीं है तथा तट का बटवारा साम्या के सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार होना चाहिए कि उसे पार्श्वस्थ राज्यों के बराबर तट प्राप्त हो। अतः परिसीमन सम्बन्धी ये विवाद जर्मनी और डेन्मार्क के बीच तथा जर्मनी और नीदरलैण्ड के बीच थे। इन्हें जून, 1965 और दिसम्बर, 1964 में उन देशों के साथ क्रमशः हुए करारों के आधार पर अन्तरराष्ट्रीय न्यायालयों को सौंपा गया था। न्यायालय को यह निर्धारित करना था कि आंशिक परिसीमन से परे महाद्वीपीय मग्नतट भूमि के परिसीमन में अन्तरराष्ट्रीय विधि के कौन-से सिद्धान्त और नियम लागू होंगे।

न्यायालय के समक्ष जर्मनी का तर्क था कि वह परिसीमन के एक तरीके के रूप में समदूरस्थ सिद्धान्त की उपयोगिता को मानता है किन्तु 1958 के जनेवा अभिसमय (कन्वेन्शन) का पक्षकार न होने के कारण वह अभिसमय उस पर आबद्धकर नहीं है। उत्तरी सागर जैसी परिस्थितियों में लागू किया जाने वाला सही नियम यह होगा कि प्रत्येक तटवर्ती राज्य को उसकी तटीय सीमा या समुद्रीय अग्रभाग की लम्बाई के अनुपात में उचित एवं बराबर के अंश की मग्नतट भूमि प्राप्त हो। उसने 'तटीय अग्रभाग' या मुहार को मापने का एक तरीका भी प्रस्तावित किया कि अन्दर धंसे हुए भाग के ऊपरी भाग में दो बिन्दुओं को निर्धारित कर उन्हें आधार रेखा को जोड़ कर ज्यामितीय रचनाओं को खड़ा किया जाए और उस पर से समदूरी आंकी जाए। इस प्रकार साम्या के सिद्धान्त के आधार पर महाद्वीपीय मग्नतट भूमि का परिसीमन किया जाए जिससे पार्श्वस्थ सभी राज्यों को बराबर-बराबर मग्नतट भूमि प्राप्त हो सके।

डेन्मार्क और नीदरलैण्ड ने तर्क दिए कि—

1. जर्मनी 1958 के महाद्वीपीय मग्नतट भूमि अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 6 में उपबन्धित 'समदूरस्थ विशेष परिस्थिति' नियम से आबद्ध है क्योंकि उन्होंने उस पर हस्ताक्षर किए हैं।
2. 'समदूरस्थ' के आधार पर परिसीमन का सिद्धान्त अन्तरराष्ट्रीय रूढ़ि विधि का अंग है और अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 6 में उसका वर्णन किया गया है।
3. अभिसमय (कन्वेन्शन) में दिए गए परिसीमन के इस तरीके का राज्यों द्वारा प्रथा के रूप में प्रयोग किए जाने के कारण इसे अन्तर-राष्ट्रीय रूढ़िजन्य विधि का स्वरूप प्राप्त हो चुका है। अतः जर्मनी उससे आबद्ध है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्णय :—

[न्यायालय ने जर्मनी के तर्क पर विचार करते हुए कहा]

परिसीमन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें तटीय राज्य से पहले ही अनुलग्न क्षेत्र की सीमाएं स्थापित की जाती हैं। साम्यापूर्ण रीति से परिसीमन करना एक बात है किन्तु यह किसी पूर्वतन अपरिसीमित क्षेत्र का न्यायसंगत और साम्यापूर्ण अंश करने जैसी बात नहीं है ।

न्यायसंगत और साम्यापूर्ण अंश का सिद्धान्त 1958 के जेनेवा अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 2 में समाविष्ट सिद्धान्त के विपरीत है जिसमें कहा गया है कि "महाद्वीपीय मग्नतट भूमि के उस क्षेत्र के सम्बन्ध में, जो तटवर्ती राज्य के भूक्षेत्र का समुद्र के भीतर तक प्राकृतिक फैलाव होता है, उस राज्य के अधिकार भूमि पर उसकी प्रभुता और समुद्रतल की गवेषणा करने और प्राकृतिक साधनों का उपयोग करने के प्रयोजनार्थ प्रभुत्वसम्पन्न अधिकारों के प्रयोग करने के आधार पर स्वयमेव और आरम्भ से विद्यमान हैं। यह अधिकार इस बात पर निर्भर नहीं करता कि उसका प्रयोग किया जा रहा है या नहीं। यदि तटवर्ती राज्य इसका उपयोग नहीं करता तो यह उसका निजी मामला है, पर कोई दूसरा भी उसकी अनुमति के बिना उसका उपयोग नहीं कर सकता। जिस प्रकार की स्थिति उत्तरी सागर की है वैसी स्थिति में महाद्वीपीय तटमग्न भूमि के अधिकार की बात इस मौलिक विचारधारा के विपरीत है क्योंकि परिसीमन का कार्य मुख्य रूप से उस क्षेत्र में सीमारेखा निर्धारित करना होता है जो एक या दूसरे प्रभावित राज्य की सीमा में है। परिसीमन साम्यापूर्ण तरीके से प्रभावी किया जाना चाहिए किन्तु उसका उद्देश्य साम्यापूर्ण अंश प्रदान करना नहीं हो सकता। अतः यदि सीमा सम्बन्धी कोई विवाद हो तो उसमें यह बात अवश्य होनी चाहिए कि किसी ऐसे विवादग्रस्त क्षेत्र का, जिस पर दोनों पक्षकार दावा करते हैं, परिसीमन किया जाए जिससे सम्पूर्ण क्षेत्र किसी एक पक्षकार को न बांटकर अलग-अलग हिस्सों में बांट दिया जाए ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि परिसीमन की समदूरस्थ पद्धति बहुत सुविधाजनक है तथा उसका प्रयोग बहुत से मामलों में किया भी गया है। कदाचित यह कहना सही होगा कि परिसीमन की किसी भी अन्य पद्धति में इतनी व्यवहारिक सुविधा और उसके प्रयोग किए जाने की निश्चितता नहीं है। किन्तु इससे यह पद्धति विधि का नियम नहीं बन जाती कि इस पद्धति का प्रयोग करने से जो परिणाम निकलते हैं वे उन सभी मामलों में आबद्धकर होंगे जिनमें पक्षकार अन्यथा सहमत नहीं होते या जिनमें यह दर्शित नहीं किया जा सकता कि 'विशेष परिस्थितियां' विद्यमान हैं। यदि ऐसा कोई नियम है तो उसके विधिक बल का आधार ये सुविधाएं न होकर कोई अन्य बातें होंगी ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तत्पश्चात् न्यायालय ने इस बात पर विचार किया कि क्या जेनेवा अभिसमय (कन्वेन्शन) इस मामले के सभी पक्षकारों पर लागू होता है अर्थात् क्या अनुच्छेद 6 के परिसीमन सम्बन्धी उपबन्धों के आधार पर वर्तमान परिसीमन जर्मनी पर आबद्धकर है। जेनेवा अभिसमय (कन्वेन्शन) 10 जून, 1964 को प्रवृत्त हुआ था और वह उस समय प्रवृत्त था जब पक्षकारों के बीच महाद्वीपीय मग्नतट भूमि की सीमाओं के विभिन्न परिसीमन किए गए थे। किन्तु अभिसमय के उपबन्धों के अनुसार यह केवल उसी राज्य में प्रवृत्त होता है जिसने उसे निर्धारित समय के भीतर हस्ताक्षर करके अनुसमर्थित या स्वीकार किया है। डेन्मार्क और नीदरलैण्ड ने उस पर हस्ताक्षर किए हैं और उसका अनुसमर्थन किया है। जबकि जर्मनी ने उस पर हस्ताक्षर तो किए हैं किन्तु उसका अनुसमर्थन नहीं किया है। परिणामतः वह अभिसमय (कन्वेन्शन) का पक्षकार नहीं है तथा वह उस पर आबद्धकर नहीं है। किन्तु यह तर्क दिया गया है कि अभिसमय (कन्वेन्शन) का अनुच्छेद 6 जर्मनी पर एक अन्य प्रकार से आबद्धकर हो गया है कि उसने अपने आचरण, सार्वजनिक वक्तव्यों और उद्घोषणाओं द्वारा एकपक्षीय रूप से अभिसमय (कन्वेन्शन) की बाध्यताओं को स्वीकार कर लिया है तथा दूसरे देश उसके रुख से उसकी स्वीकृति समझने लगे हैं।

इस तर्क से तो स्पष्टतया यह लगता है कि न्यायालय को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। किन्तु यदि यह तर्क सही है तो फैडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी ने इस अभिसमय (कन्वेन्शन) का अनुसमर्थन क्यों नहीं किया। सिद्धान्ततः जब कई राज्यों ने, जिनमें वह राज्य भी शामिल हो जिसका आचरण विचार-विमर्श का विषय हो और वे राज्य भी शामिल हैं जिन्होंने उस पर विचार-विमर्श करने के लिए कहा हो, कोई अभिसमय (कन्वेन्शन) तैयार किया हो जिसमें स्पष्टतया एक ऐसी विशिष्ट पद्धति का उपबन्ध किया गया हो जिसके द्वारा अभिसमय (कन्वेन्शन) का आशय सब राज्यों पर आबद्धकर होगा, तब यह उपधारणा नहीं की जा सकती कि जिस राज्य ने ऐसी पद्धति नहीं अपनाई है, जबकि वह उसे अपनाने में समर्थ और हकदार था, वह किसी अन्य प्रकार से आबद्ध हो गया है। यदि यह प्रश्न दायित्व का न होकर अधिकारों का होता अर्थात् यदि किसी राज्य ने, जिसने अभिसमय (कन्वेन्शन) का अनुसमर्थन या उसे स्वीकार नहीं किया है, अभिसमय (कन्वेन्शन) द्वारा आबद्ध होने की अपनी रजामंदी की घोषणा या अभिसमय (कन्वेन्शन) के नियमों के स्वीकार कर लिए जाने के प्रमाणित आचरण के अधिकार पर अभिसमय (कन्वेन्शन) के अधीन अधिकारों का दावा नहीं किया है, यद्यपि वह ऐसा करने का हकदार था, तो उसे यह बता दिया जाएगा कि क्योंकि वह अभिसमय (कन्वेन्शन) का पक्षकार नहीं बना है इसलिए वह उसके अधीन अधिकारों का दावा नहीं कर सकता।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जहां तक फडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी की उद्घोषणाओं का सम्बन्ध है वह समदूरस्थ सिद्धान्त का विरोधी नहीं रहा है। किन्तु जब उत्तरी सागर महाद्वीपीय मग्नतट भूमि क्षेत्रों का परिसीमन किया जाने लगा तब फैडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी ने परिसीमनों के सम्बन्ध में अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाए रखने की दृष्टि से अभिसमय (कन्वेन्शन) का अनुसमर्थन नहीं किया ताकि कहीं उसके क्षेत्र का परिसीमन उसके हित के विपरीत न हो जाए।

आगे यह कहा गया कि जर्मनी समदूरस्थ विशेष-परिस्थिति सिद्धान्त के आधार पर परिसीमन स्वीकार करने के लिए आबद्ध है क्योंकि यह सिद्धान्त केवल अभिसमय में रखे जाने के कारण ही आबद्धकर नहीं है बल्कि अब वह सामान्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम के रूप में स्वीकार कर लिए जाने के कारण आबद्धकर हो गया है। यह तर्क इस तथ्य पर आधारित है कि उसे अन्तरराष्ट्रीय निकायों द्वारा इस क्षेत्र में किए गए कार्यों में, राज्यों की प्रथा में तथा जेनेवा अभिसमय (कन्वेन्शन) में अपनाया गया है और यह दावा किया गया है। इन विभिन्न तथ्यों के सामूहिक प्रभाव से यह साबित हो जाता है कि अन्तरराष्ट्रीय रूढ़िजन्य विधि के नए नियमों का निर्माण हुआ है।

न्यायालय ने 1945 की ट्रूमैन उद्घोषणा तथा अन्तरराष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा किए गए कार्यों का परीक्षण करके समदूरस्थ सिद्धान्त के उद्भव पर विचार-विमर्श किया और यह निष्कर्ष निकाला कि किसी भी समय समदूरस्थ की धारणा को महाद्वीपीय मग्नतट भूमि के सिद्धान्त की अन्तर्निहित आवश्यकता के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। प्रारम्भ से ही विधि की विचारधारा में यह सिद्धान्त दो विश्वासों पर लागू होता रहा है, एक तो यह कि परिसीमन का कोई एक तरीका सभी परिस्थितियों में सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हो सकता तथा परिसीमन करार के द्वारा ही किया जाना चाहिए तथा दूसरा यह कि उसे साम्यापूर्ण सिद्धान्तों के आधार पर प्रभावी किया जाना चाहिए। पहले विश्वास के आधार पर ही जेनेवा अभिसमय (कन्वेन्शन) में अनुच्छेद 6 को स्थान दिया गया तथा आयोग ने करार द्वारा परिसीमन को प्राथमिकता प्रदान की तथा दूसरे विश्वास के आधार पर ही उस अभिसमय (कन्वेन्शन) में 'विशेष परिस्थिति' को अपवाद स्वरूप रखा गया था। तथापि अभिलेखों से प्रकट होता है कि यह संदेह बना रहा है कि क्या समदूरस्थ सिद्धान्त सभी मामलों में साम्यापूर्ण सिद्ध होगा।

अभिसमय (कन्वेन्शन) के कुछ भागों के सम्बन्ध में इस तर्क की विधिमान्यता कुछ भी हो कि सम दूरस्थ सिद्धान्त अभिसमय (कन्वेन्शन) में स्पष्टतः व्यक्त रूढ़िजन्य विधि बनता जा रहा है किन्तु परिसीमन सम्बन्धी उपबन्ध

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(अनुच्छेद 6) के सम्बन्ध में न्यायालय इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकता। परिसीमन सम्बन्धी उपबन्ध के सुसंगत भाग अपरिवर्तित रूप में अन्तरराष्ट्रीय विधि आयोग के प्रारूप से अपनाए गए थे जो सम्मेलन में विचार-विमर्श का आधार था। अत: अभिसमय (कन्वेन्शन) में नियम की प्रास्थिति मुख्यत: उन प्रक्रियाओं पर निर्भर करती है जिनके आधार पर आयोग ने यह प्रस्थापना की थी। आयोग ने काफी हिचकिचाहट के साथ और किंचित प्रयोगात्मक आधार पर यह प्रास्थापना की थी कि इसे अधिक से अधिक de lege ferenda (अर्थात् नई विधि पर अ धारित) के रूप में न कि de lege lata के रूप में अथवा रूढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के विकसित नियम के रूप में स्वीकार किया जाए।

इस निष्कर्ष की पुष्टि इस बात से होती है कि अनुच्छेद 6 एक ऐसा उपबन्ध है जिसके बारे में कोई भी राज्य उस पर हस्ताक्षर करने, उसका अनुसमर्थन करने या उसे स्वीकार करने का अपना अधिकार आरक्षित रख सकता है क्योंकि यह केवल अभिसमयात्मक नियमों और बाध्यताओं की विशिष्टता है कि उनके सम्बन्ध में कुछ परिसीमाओं के अधीन एकतरफा आरक्षण करने की क्षमता होनी चाहिए जबकि सामान्य या रूढ़िजन्य विधि के नियमों की दशा में ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि वे अपनी प्रकृति के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय समुदाय के सभी सदस्यों पर समान रूप से लागू होते हैं तथा कोई पक्षकार स्वेच्छा से अपने प्रति अपना एकतरफा अधिकार आरक्षित नहीं कर सकता। अत: जब अभिसमय के उपबन्धों में इस प्रकार के नियमों को रखा जाता है तो उनके पालन किए जाने के सम्बन्ध में किसी राज्य को अपना अधिकार आरक्षित रखने की इजाजत तब नहीं दी जा सकती। अभिसमय के अनुच्छद 1 से 3 तक के उपबन्धों के प्रति कोई आरक्षण किया जाना, अनुच्छेद 12 द्वारा वर्जित है। अत: उन्हें रूढ़िजन्य विधि के विकसित नियम कहा जा सकता है। अत: तीनों अनुच्छेदों के उपबन्धों को छोड़कर किसी अन्य अनुच्छेद के, जिसमें अनुच्छेद 6 भी है, सम्बन्ध में अधिकार आरक्षित किए जा सकते हैं। अनुच्छेद 6 के प्रति अन्तरराष्ट्रीय विधि आयोग के रुख तथा अनुच्छेद 12 के उपबन्धों के अनुसार इसे सामान्य अन्तरराष्ट्रीय रूढ़िजन्य विधि के नियम के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि जेनेवा अभिसमय (कन्वेन्शन) में रूढ़िजन्य विधि का कोई ऐसा पूर्व स्थापित या विकसित नियम समाविष्ट या स्पष्टतया व्यक्त नहीं था जिसके अनुसार पार्श्वस्थ राज्यों के बीच महाद्वीपीय मग्नतट भूमि का परिसीमन, जब तक कि अन्यथा पक्षकार करार न करें समदूरस्थ विशेष परिस्थिति के आधार पर किया जाना चाहिए।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जहां तक डेन्मार्क तथा नीदरलैण्ड के इस तर्क का सम्बन्ध है कि ऐसा नियम अभिसमय (कन्वेन्शन) के अपनाए जाने के बाद रूढ़िजन्य विधि के नियम के रूप में विकसित हो गया हैं, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इससे अनुच्छेद 6 को मापदण्ड निर्धारक नियम मानना होगा, जो अपने उद्भव के समय केवल अभिसमयात्मक या संविदात्मक था, किन्तु बाद में अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम के रूप में विकसित हो गया है और राज्यों द्वारा अपने व्यवहार में अनिवार्य नियम होने के पारस्परिक विश्वास की पुनरावृति (ओपिनो ज्यूरिस) द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और वह उन देशों पर, जो अभिसमय के पक्षकार नहीं है, भी आबद्धकर है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह प्रक्रिया सम्भव है और समय-समय पर होती रहती है और वह एक मान्यताप्राप्त तरीका है जिससे अन्तरर्राष्ट्रीय रूढ़िजन्य विधि के नए नियम बनते है किन्तु इस परिणाम के बारे में आसानी से यह स्वीकार नहीं कर लिया जाना चाहिए कि इसकी पूर्ति हो गई है।

इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि सम्बन्धित उपबन्ध का मूलतः मानदण्ड निर्धारक स्वरूप का होना चाहिए जिससे कि उसे विधि के सामान्य नियम का आधार माना जा सके। संक्षेप में विचार करने से समदूरस्थ सिद्धान्त के बारे में यह कहा जा सकता है कि इससे इस अपेक्षा की पूर्ति होती है किन्तु जिस रूप में यह सिद्धान्त अनुच्छेद 6 में समाविष्ट है और अभिसमय (कन्वेन्शन) के अन्य उपबन्धों के साथ इसका जो सम्बन्ध है उसे ध्यान में रखा जाए तो इसके मानदण्ड निर्धारक होने में सन्देह होता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(1) अनुच्छेद 6 में समदूरस्थ सिद्धान्त को द्वितीय बाध्यता के रूप में रखा गया है जबकि करार द्वारा परिसीमन को प्राथमिक बाध्यता के रूप में।

(2) अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों का अल्पीकरण विशेष मामलों में अथवा विशेष पक्षकारों के बीच करार द्वारा किया जा सकता है किन्तु सामान्यतया यह किसी अभिव्यक्त उपबन्ध का विषय नहीं होता है, जैसा कि अनुच्छेद 6 में है।

(3) अनुच्छेद 6 में समाविष्ट समदूरस्थ सिद्धान्त से सम्बद्ध विशेष परिस्थिति की धारणा और इस धारणा के सही सही अर्थ और प्रविषय के बारे में अनिर्णीत संविवाद।

(4) अनुच्छेद 6 के उपबन्धों के प्रति आरक्षण किए जा सकने की क्षमता। जब तक यह क्षमता बनी रहेगी और जब तक अनुच्छेद 13 के अधीन किए गए अनुरोध के परिणामस्वरूप उसका पुनरीक्षण नहीं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया जाता तब तक स्वयं अभिसमय (कन्वेन्शन) अनुच्छेद 6 को मानदण्ड निर्धारक स्वरूप प्रदान नहीं करेगा जैसा कि अनुच्छेद 1 और 2 का है ।

सामान्यतया प्रथा को रूढ़िजन्य विधि के नियम का रूप धारण करने के लिए यह आवश्यक है कि उसका काफी लम्बे समय तक राज्यों द्वारा आबद्धकर निर्धारक नियम के रूप में पालन किया जाए। किन्तु अभिसमयात्मक नियम के सामान्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम के रूप में विकसित होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह आवश्यक नहीं है कि काफी लम्बे समय तक उसका पालन किया जाता रहे। उसके लिए तो राज्यों द्वारा जिनमें ऐसे राज्य भी शामिल हों जिनके हित विशेष रूप से उससे प्रभावित होते हैं, अभिसमय (कन्वेन्शन) में विस्तृत रूप से तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण ढंग से भाग लेना ही पर्याप्त समझा जा सकता है। किन्तु अनिवार्य अपेक्षा यह है कि उसके उपबन्धों को विस्तृत रूप में तथा एकरूपता के साथ राज्यों द्वारा इस प्रकार लागू किया जाए कि इस मान्यता का सामान्य ज्ञान हो सके कि वे विधि के नियम या विधिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए ऐसा कर रहे हैं ।

न्यायालय के समक्ष प्रथा के रूढ़िजन्य विधि माने जाने के प्रमाण के रूप में समदूरस्थ परिसीमन के 15 मामले प्रस्तुत किए गए। अनुसमर्थन एवं स्वीकृति प्रदान करने वाले राज्यों की संख्या तो काफी है किन्तु अन्तरराष्ट्रीय विधि के रूप में इसके विकास के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। इनमें से आधे मामले ऐसे राज्यों के हैं जो अभिसमय (कन्वेन्शन) के पक्षकार हैं। उनके सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उनके द्वारा अभिसमय (कन्वेन्शन) के उपबन्धों को लागू किया गया है। किन्तु इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता कि समदूरस्थ परिसीमन का कोई रूढ़िजन्य विधि नियम विद्यमान था और उसे लागू किया गया है। जहां तक ऐसे राज्यों का सम्बन्ध है, जो अभिसमय (कन्वेन्शन) के पक्षकार नहीं थे और उसके पक्षकार नहीं बने हैं, उनकी कार्यवाही का आधार क्या था यह केवल अनुमान पर आधारित होगा किन्तु यह स्पष्ट है कि वे अभिसमय (कन्वेन्शन) को लागू नहीं कर रहे थे। साथ ही न्यायोचित ढंग से यह निष्कर्ष भी नहीं निकाला जा सकता कि वे ऐसा इस विश्वास से कर रहे थे कि वे रूढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के आज्ञापक नियम को लागू कर रहे हैं। यदि इस प्रकार कार्यवाही करने वाले राज्यों की संख्या अधिक होती तो भी 'नियम निर्माणक' तत्व की पूर्ति के लिए यह पर्याप्त नहीं होता क्योंकि उसकी पूर्ति के लिए दो शर्तों का पूरा किया जाना आवश्यक होता है—एक तो यह कि जो कार्यवाहियां की गई हों उन्होंने सुस्थिर प्रथा का रूप धारण कर लिया हो और दूसरी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह कि इन्हें इस प्रकार क्रियान्वित किया गया हो कि उनसे इस विश्वास का साक्ष्य मिलता हो कि यह प्रथा विधि के नियम की विद्यमानता से आबद्धकर हो गई है। प्रथा का पालन करने वाले राज्यों के लिए यह अनुभव करना आवश्यक है कि वे ऐसा करके अपने विधिक कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। उन कार्यवाहियों का बार-बार या अभ्यासत: किया जाना स्वयं में पर्याप्त नहीं है।

कुछ मामलों में सम्पृक्त राज्यों ने समदूरस्थ सिद्धान्त के अनुसार सीमाएं निर्धारित करने के लिए करार किए थे या सीमाएं निर्धारित की थीं किन्तु इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि उन्होंने ऐसा अपने को रूढ़िजन्य विधि के नियम के दायित्वाधीन मानकर किया था। इसके अतिरिक्त जो मामले उद्धृत किए गए थे वे लगभग सभी आमने-सामने स्थित राज्यों के थे जिन्होंने मध्य रेखा के आधार पर परिसीमन स्वीकार किया था, न कि उन पार्श्वस्थ राज्यों के जिन्होंने प्रवृत्त परिसीमन स्वीकार किया था। उद्धृत सभी मामले प्रस्तुत मामले से भिन्न थे और उन्हें प्रमाण नहीं माना जा सकता तथा वे सुस्थिर प्रथा के प्रमाण के लिए अपर्याप्त तथा अनिश्चयात्मक हैं तथा यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि समदूरस्थ सिद्धान्त के आधार पर परिसीमन रूढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के आज्ञापक नियम के रूप में विकसित हो गया है।

प्रारम्भ से ही "ओपीनियो जूरिस" अर्थात् 'पुनरावृत्त पारस्परिक विश्वास' यह है कि राज्यों के बीच करार का उद्देश्य परिसीमन होना चाहिएं और ऐसे करार साम्यापूर्ण सिद्धान्तों के अनुसार किए गए होने चाहिऐं। कुछ भौगोलिक परिस्थितियों में उत्तरी सागर के परिसीमन के सम्बन्ध में समदूरस्थ पद्धति असाम्यापूर्ण हो सकती है क्योंकि वहां महाद्वीपीय मग्नतट भूमि की कोई बाह्य सीमा नहीं है, तट से दूर होने पर भी समुद्रतल के अन्तर्गत महाद्वीपीय मग्नतट भूमि आती है।

महाद्वीपीय मग्नतट भूमि की परिसीमन सम्बन्धी अन्तरराष्ट्रीय विधि कोई आबद्धकर कर्तव्य निर्धारक नियम प्रदान नहीं करती तथा ऐसे विभिन्न सिद्धान्तों और तरीकों को अपनाए जाने की अनुज्ञा प्रदान करती है जो उपयुक्त हों तथा जो लागू किए जाने पर साम्यापूर्ण सिद्धान्तों से निकलने वाले परिणामों के समान युक्तियुक्त हों।

साम्या का अर्थ आवश्यक रूप से समानता नहीं है तथा उसका व्यवहार अन्यायपूर्ण और भिन्नता स्थापित करने वाला नहीं होना चाहिए जैसे कि यदि उत्तरी सागर के राज्यों के साथ समदूरस्थ सिद्धान्त अपनाया जाता है तो व राज्य जिसका तट अन्दर की ओर धंसा हुआ है, के साथ होता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाद्वीपीय मग्नतट भूमि की स्थापना इस भौतिक तथ्य की मान्यता पर आधारित है कि एक निश्चित गहराई तक के समुद्र का तल तटीय भूमि का विस्तार है और तल का परिसीमन करते समय इस तथ्य पर ध्यान रखा जाए तथा पार्श्वस्थ राज्यों के तल का परिसीमन करते समय तल में निहित खनिज भण्डारों की समरूपता को भी ध्यान में रखा जाए और वह युक्तियुक्त अंश तक आनुपातिक समानता के आधार पर राज्य की तटीय सीमा की लम्बाई के अनुसार हो।

राज्यों द्वारा परिसीमन के लिए अपनाई गई पद्धतियों से हो सकता है कि एक राज्य के कुछ क्षेत्र दूसरे में आ जाएं और दूसरे का उसमें। न्यायालय के अनुसार इसे तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाना चाहिए और परिसीमन या तो करार द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए या परस्पर मिले हुए क्षेत्रों का बराबर-बराबर विभाजन करके किया जाना चाहिए अथवा संयुक्त रूप से विदोहन के लिए करार करके किया जाना चाहिए। यह पद्धति वहां विशेष रूप से उपयुक्त है जहां भण्डारों की समरूपता बनाए रखने का प्रश्न उठता है।

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि परिसीमन की समदूरस्थ पद्धति पक्षकारों के बीच आबद्ध कर नहीं है और चूंकि परिसीमन की कोई ऐसी एक पद्धति नहीं है जो सभी परिस्थितियों में आबद्धकर हो इसलिए परिसीमन के सम्बन्ध में लागू होने वाले अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्त और नियम इस प्रकार हैं :—

(1) परिसीमन साम्यापूर्ण सिद्धान्तों के अनुसार करार द्वारा इस प्रकार किया जाए कि प्रत्येक पक्षकार को, जहां तक सम्भव हो, महाद्वीपीय मग्नतट भूमि का वे सभी भाग, जो उसके भूक्षेत्र के रूप में समुद्र के भीतर प्राकृतिक रूप से फैले हुए हों और जो दूसरे राज्य के भूक्षेत्र के प्राकृतिक फैलाव का अतिक्रमण किए बिना प्राप्त हो सकें।

(2) यदि परिसीमन के बाद पक्षकारों के पास कोई ऐसे क्षेत्र बचे रह जाते हैं जो एक-दूसरे से मिले हुए हों तो जब तक वे पक्षकार संयुक्त अधिकारिता, उपयोग या विदोहन की प्रणाली अपनाने का विनिश्चय नहीं करते तब तक उनके बीच उनका विभाजन करार किए गए अनुपात के अनुसार और यदि करार सम्भव न हो तो समान रूप से किया जाना चाहिए।

(3) जब परिसीमन सम्बन्धी बात-चीत चल रही हो तब निम्नलिखित तत्वों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए :—

(i) तटों की सामान्य समाकृति तथा विशेष या विलक्षण रूपरेखा ;

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(ii) अन्तर्ग्रस्त महाद्वीपीय मग्नतट भूमिक्षेत्रों की भौतिक और भौगोलिक स्थिति तथा प्राकृतिक साधन; तथा

(iii) साम्यापूर्ण सिद्धान्तों के अनुसार परिसीमन करते समय युक्ति-युक्त अंश तक तटीय राज्य से संलग्न महाद्वीपीय मग्नतट भूमि और सामान्य दिशा के अनुसार नापी गई उसकी तटीय लम्बाई की आनुपातिकता तथा उस क्षेत्र के अन्य पार्श्वस्थ राज्यों के बीच हुए या होने वाले परिसीमन ।

* * * *

टिप्पणी :—1. न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कोई भी अभिसमय (कन्वेन्शन) किसी पक्षकार-राज्य पर तब तक आबद्धकर नहीं होता जब तक कि वह उसका अनुसमर्थन नहीं कर देता ।

2. किसी अभिसमयात्मक नियम का रूढ़िजन्य विधि के नियम के रूप में स्वीकार किया जाना प्रमाणित करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों का सिद्ध किया जाना आवश्यक है :—

(i) अन्तरराष्ट्रीय निकायों, अभिसमयों तथा राज्य की प्रथा में राज्यों द्वारा उसे आबद्धकर रूप में स्वीकार कर लिया जाना ।

(ii) उसे विवाद रहित ढंग से प्राथमिक दायित्व के रूप में अभिसमय (कन्वेन्शन) में रखा जाना ।

(iii) उसके सम्बन्ध में आरक्षण किया जाना सम्भव न हो ।

3. किसी अभिसमयात्मक नियम का रूढ़िजन्य विधि के नियम के रूप में विकसित होना प्रमाणित करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों का सिद्ध किया जाना आवश्यक है :—

(i) समाविष्ट सिद्धान्त का मानदण्ड निर्धारक होना, अर्थात उसका प्राथमिक दायित्व प्रदान करने वाला होना ।

(ii) उसका स्पष्ट तथा असंदिग्ध अर्थों का द्योतक होना ।

(iii) उसके सम्बन्ध में आरक्षण किया जाना सम्भव न होना ।

(iv) विस्तृत, प्रतिनिधिक तथा आबद्धकर रूप में प्रयोग ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

असाइलम केस
(Asylum Case)
कोलम्बिया/पीरू
(Columbia/Peru)

आई० सी० जे० रिपोर्ट्स 1950 पृष्ठ 266

इस मामले में न्यायालय के अवधारण के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के कौन-से सिद्धान्त शरण के सम्बन्ध में लागू होते हैं। किसी प्रथा का रूढ़िजन्य विधि के रूप में विकसित हो जाना किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है। शरण सम्बन्धी अमेरीका की साधारण अन्तरराष्ट्रीय विधि क्या है।

* * * *

3 अक्तूबर, 1948 को पीरू में सैनिक विद्रोह हो जाने पर पीरू के राष्ट्रपति (प्रेजीडेण्ट) ने आदेश द्वारा अमेरीकन पीपल्स रिवोल्यूशनरी एलाइन्स को विधि-विरुद्ध घोषित कर दिया तथा उसके नेता के विरुद्ध सैनिक विद्रोह के लिए न्यायालय में अभियोग चलाए जाने का आदेश दिया तथा 25 अक्तूबर को विद्रोही नेता हया डि ला टोरे के विरुद्ध वारण्ट जारी कर दिया। किन्तु 16 नवम्बर तक उसे पकड़ा नहीं जा सका, अतः उसे सैनिक विद्रोह के अपराध का बागी घोषित कर दिया गया। 2 जनवरी, 1949 को पीरू के राष्ट्रपति द्वारा अपने आधिपत्य की घोषणा किए जाने पर 3 जनवरी, 1949 को हया डि ला टोरे ने लीमा में कोलम्बिया के दूतावास में शरण मांगी।

कोलम्बिया के राजदूत ने पीरू की सरकार को सूचना दी कि सन् 1928 में हवाना नगर में दोनों देशों द्वारा हस्ताक्षरित शरण सम्बन्धी अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 2 के पैरा 2 तथा 26 दिसम्बर, 1933 को मोण्टेविडियो नगर में दोनों देशों द्वारा हस्ताक्षरित राजनैतिक शरण सम्बन्धी अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 2 द्वारा प्रदत्त अधिकार के अनुसार हया डि ला टोरे को राजनीतिक शरणार्थी मानकर राजनयिक शरण प्रदान कर दी गई है तथा हाया डि ला टोरे को यथाशीघ्र सुरक्षित रूप से तथा ऐसी सुविधाओं के साथ, जो राजनयिक शरण पाने वाले व्यक्ति को प्राप्त होती हैं, पीरू से बाहर भेजने के लिए कहा।

पीरू ने हया डि ला टोरे को राजनीतिक शरणार्थी मानने के कोलम्बिया के अधिकार को अस्वीकार करते हुए कोलम्बिया सरकार से राजनयिक स्तर पर पत्राचार किया कि हया डि ला टोरे एक विद्रोही है और वह शरण पाने के लिए हकदार नहीं है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मामला अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया ।

कोलम्बिया सरकार ने न्यायालय के समक्ष यह निवेदन किया कि न्यायालय यह न्यायनिर्णीत और घोषित करे कि कोलम्बिया गणराज्य, शरण प्रदान करने वाले राज्य के रूप में, उक्त शरण प्रदान करने के प्रयोजन के लिए अपराध की प्रकृति निर्धारित करने तथा पीरू पर एकतरफा, बाध्यात्मक और अन्तिम निर्णय लागू करने के लिए सक्षम है । कोलम्बिया सरकार ने अपने इस तर्क की पुष्टि में 1911 के बोलिवेरियन करार की धारा 18 का निर्देश किया जिसमें यह उपबन्धित है कि 'वर्तमान करार के अनुबन्धों के अतिरिक्त हस्ताक्षर करने वाले दोनों राज्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के अनुरूप शरण व्यवस्था को मान्यता प्रदान करते हैं' ।

* * * *

न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा कि शरण व्यवस्था को मान्यता प्रदान करते हुए इस अनुच्छेद में अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों का मात्र उल्लेख किया गया है किन्तु अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्त राजनयिक शरण प्रदान करने वाले राज्य द्वारा एकतरफा और अन्तिम रूप से अपराध की प्रकृति निर्धारित करने के नियम को मान्यता नहीं देते ।

कोलम्बिया सरकार ने 1911 के बोलिवेरियन करार के अनुच्छेद 4 का भी अवलम्ब लिया जो अपराधी-शरणार्थी के, उस देश से जिसमें उसने शरण मांगी है, प्रत्यर्पण के सम्बन्ध में है ।

न्यायालय ने कहा कि इस सम्बन्ध में दिए गए तर्कों में एक ओर क्षेत्रीय शरण (प्रत्यर्पण) तथा दूसरी ओर राजनयिक शरण में भ्रम प्रकट होता है। प्रत्यर्पण के मामले में शरणार्थी शरण देने वाले राज्य के क्षेत्र में रहता है। प्रत्यर्पण सम्बन्धी विनिश्चय में तो केवल क्षेत्रीय प्रभुता का प्रयोग ही विवक्षित होता है। शरणार्थी उस राज्य की सीमा से बाहर होता है जिसमें उसने अपराध किया होता है और उसे शरण प्रदान करने के विनिश्चय से किसी भी प्रकार से उन राज्य की प्रभुत्ता का अल्पीकरण नहीं होता ।

राजनयिक शरण की दशा में शरणार्थी उस राज्य की सीमा के भीतर होता है जहां उसने अपराध किया होता है। राजनयिक शरण प्रदान करने के विनिश्चय से उस राज्य की प्रभुत्ता का अल्पीकरण हो जाता है। उस विनिश्चय के अनुसार अपराधी को क्षेत्रीय राज्य की अधिकारिता से वापस ले लिया जाता है और इससे उन विषयों में हस्तक्षेप होता है जो उस राज्य की अनन्य सक्षमता में होते हैं ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्षेत्रीय प्रभुत्ता के इस प्रकार के अल्पीकरण को तब तक मान्यता नहीं दी जा सकती जब तक हर एक मामले में उसका विधिक आधार स्थापित नहीं हो जाता। अतः प्रत्यर्पण सम्बन्धी करारों के उपबन्धों से कोई ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता जिसे विचाराधीन मामले को लागू किया जा सके।

1928 के शरण सम्बन्धी हवाना अभिसमय (कन्वेंशन) में राजनयिक शरण से सम्बन्धित कुछ नियम अधिकथित किए गए हैं, किन्तु उसमें ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है जो शरण प्रदान करने वाले राज्य को एकतरफा सक्षमता प्रदान करता है कि वह क्षेत्रीय राज्य के लिए अन्तिम और आबद्धकर अपराध की प्रकृति निर्धारित करे।

इस प्रकार की क्षमता आपवादिक स्वरूप की क्षमता है। इससे अपराध की प्रकृति निर्धारित करने के समान अधिकार का, जो तत्प्रतिकूल किसी नियम के अभाव में, हर एक संपृक्त राज्य का होना चाहिए, अल्पीकरण होता है, अतः इससे शरण प्रदान किए जाने की क्षेत्रीय प्रभुता के अल्पीकरण को बढ़ावा मिलता है। ऐसी सक्षमता राजनयिक शरण व्यवस्था में अन्तर्निहित नहीं है। उसमें यदि एकतरफा और अन्तिम रूप से अपराध की प्रकृति निर्धारण का नियम लागू होता तो यह व्यवस्था कदाचित अधिक प्रभावकारी होती। किन्तु शरण प्रदान करने के लिए यह नियम अनिवार्य नहीं है। एकतरफा और अग्रिम रूप से अपराध की प्रकृति निर्धारित करने के अभिकथित अधिकार के बारे में यह नहीं माना जा सकता कि उसे हवाना अभिसमय में विवक्षा द्वारा मान्यता प्राप्त है।

कोलम्बिया सरकार ने आगे 1933 के शरण सम्बन्धी मोण्टेविडियो अभिसमय (कन्वेन्शन) का भी उल्लेख किया और यह तर्क दिया कि इस अभिसमय के अनुच्छेद 2 के अनुसार 1928 के हवाना अभिसमय (कन्वेन्शन) का इस अर्थ में निर्वचन किया जाता है कि राजनैतिक अपराध की प्रकृति का निर्धारण करना शरण देने वाला राज्य कार्य होता है।

मोण्टेविडियो अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 6 और 7 में यह उपबन्धित है कि उसका अनुसमर्थन किया जाएगा और वह अभिसमय (कन्वेन्शन) तभी प्रवृत्त होगा जब उसका अनुसमर्थन कर दिया जाएगा। मोण्टेविडियो अभिसमय (कन्वेन्शन) का पीरू द्वारा अनुसमर्थन नहीं किया गया है और इसलिए उसका इस राज्य के विरुद्ध अवलम्ब नहीं लिया जा सकता। इस तथ्य से कि उस अभिसमय (कन्वेन्शन) में अपराध की प्रकृति निर्धारित करने का एकतरफा अधिकार स्वीकार करने के लिए एक अनुच्छेद शामिल करना आवश्यक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समझा गया है, यह संकेत मिलता है कि इस उपाय को नया नियम माना गया था जिसे हवाना अभिसमय में मान्यता नहीं दी गई थी। इसके अतिरिक्त मोण्टे-विडियो अभिसमय (कन्वेन्शन) की उद्देशिका में भी यह कहा गया है कि उससे हवाना अभिसमय (कन्वेन्शन) उपान्तरित होता है। अतः यह नहीं माना जा सकता कि वह उस अभिसमय (कन्वेन्शन) का मात्र निर्वचन है।

कोलम्बिया सरकार ने अन्त में अमेरीका की साधारण अन्तरराष्ट्रीय विधि का अवलम्ब लिया है। करारों से उत्पन्न नियमों के, जिन पर पहले विचार किया जा चुका है, अतिरिक्त कोलम्बिया सरकार ने लेटिन अमेरीका के राज्यों की प्रादेशिक या स्थानीय रूढ़ि का भी अवलम्ब लिया है।

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जो पक्षकार इस प्रकार की रूढ़ि का अवलम्ब लेता है उसे यह साबित करना चाहिए कि वह रूढ़ि इस प्रकार स्थापित हो गई है कि वह दूसरे पक्षकार पर आबद्धकर हो गई है अर्थात् वह प्रश्नगत दोनों राज्यों द्वारा निरन्तर और एकरूपता से व्यवहृत प्रथा के अनुरूप है और यह प्रथा शरण देने वाले राज्य के अधिकार तथा क्षेत्रीय राज्य के कर्तव्य की अभिव्यक्ति करती है। अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के परिनियम के अनुच्छेद 38 का यही अभिप्राय है जिसमें अन्तरराष्ट्रीय रूढ़ि के बारे में कहा गया है कि वह "विधि के रूप में स्वीकृत सामान्य व्यवहार का साक्ष्य है"।

कोलम्बिया सरकार ने इस सिद्धान्त के लेटिन अमेरीका के देशों में रूढ़िजन्य विधि के रूप में स्वीकृत होने के सम्बन्ध में यह तर्क दिया कि मोण्टेविडियो अभिसमय (कन्वेन्शन); 1933 में तो केवल उन सिद्धान्तों को संहिताबद्ध किया था जिन्हें लेटिन अमेरीका की रूढ़ि द्वारा पहले ही मान्यता प्राप्त हो चुकी थी और यह कि वह पीरू के विरुद्ध रूढ़िजन्य विधि के सबूत के रूप में विधिमान्य है।

[न्यायालय ने कहा कि] इस तर्क की कमजोरी इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि उसका अनुसमर्थन बहुत ही कम राज्यों ने अर्थात् केवल 11 राज्यों ने किया है और इसके अतिरिक्त यह तर्क अभिसमय (कन्वेन्शन) की उद्देशिका से भी अविधि-मान्य हो जाता है जिसमें यह कहा गया है कि इस अभिसमय से हवाना अभिसमय (कन्वेन्शन) उपान्तरित हो जाती है।

अन्त में कोलम्बिया सरकार ने बहुत-से ऐसे मामलों के दृष्टांत प्रस्तुत किए हैं जिनमें राजनयिक शरण प्रदान की गई थी और उनका सत्कार किया गया था।

[लेकिन न्यायालय ने कहा कि] यह दर्शित नहीं किया गया है कि राज्यों ने एक तरफा और अन्तिम रूप से अपराध की प्रकृति निर्धारित करने के अभिकथित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नियम का भी अवलम्ब लिया था—या यदि कुछ मामलों में वस्तुतः उसका अवलम्ब लिया भी गया था तो ऐसा शरण प्रदान करने वाले राज्यों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले अभिसमयात्मक अनुबन्धों के अलावा अपना अधिकार मान कर किया गया था और क्षेत्रीय राज्यों द्वारा उसका सत्कार राजनीतिक समीचीनता के कारण नहीं बल्कि अपना कर्तव्य मान कर किया गया था।

न्यायालय के समक्ष जो तथ्य लाए गए थे उनसे बहुत अनिश्चितता और प्रतिकूलता तथा प्रस्तुत किए गए राजनयिक शरण के दृष्टांतों तथा राज्यों द्वारा विभिन्न अवसरों पर व्यक्त किए गए शासकीय विचारों में बहुत अस्थिरता और अन्तर प्रकट होता है। इसके साथ ही जल्दी जल्दी एक के बाद एक होने वाले शरण सम्बन्धी अभिसमयों में बहुत-सी असंगतियां हैं। ये अभिसमय कुछ राज्यों द्वारा अनुसमर्थित हैं किंतु अन्य राज्यों द्वारा अस्वीकृत कर दिए गए हैं और अनेक मामलों में राज्यों के व्यवहार राजनीतिक समीचीनता से इतने प्रभावित हैं कि उनमें से किसी ऐसी सतत और एकरूप प्रथा को अलग करना सम्भव नहीं है जिसे एकतरफा और अन्तिम रूप से अपराध की प्रकृति निर्धारित करने के अभिकथित नियम के सम्बन्ध में विधि माना जा सके।

न्यायालय के अनुसार कोलम्बिया सरकार ऐसी किसी रूढ़ि की विद्यमानता साबित नहीं कर पाई है। किन्तु यदि यह मान भी लिया जाए कि लेटिन अमेरीका के कुछ राज्यों के बीच ऐसी रूढ़ि विद्यमान थी तो भी उसे पीरू के विरुद्ध उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि उसने इसके पालन किए जाने के पक्ष में अपना रुख नहीं दिखाया है बल्कि इसके विपरित उसने 1933 और 1939 के मोण्टे-विडियो अभिसमयों का अनुसमर्थन न करके उनका निराकरण किया है जिनमें सबसे पहले राजनयिक शरण के मामलों में अपराध की प्रकृति निर्धारित करने सम्बन्धी नियम को रखा गया था।

इन कारणों से न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि शरण प्रदान करने वाले राज्य के रूप में कोलम्बिया अपराधी की प्रकृति निर्धारित करने के सम्बन्ध में कोई ऐसा एकतरफा और अन्तिम विनिश्चय करने में सक्षम नहीं है जो पीरू पर आबद्धकर हो।

शरणार्थी के सुरक्षात्मक ढंग से पीरू से बाहर ले जाए जाने के सम्बन्ध में न्यायालय ने कहा कि कोलम्बिया सरकार कुछ शर्तों के आधार पर शरणार्थी के सुरक्षात्मक ढंग से पीरू से बाहर ले जाने की मांग करने की हकदार है।

पहली शर्त यह है कि शरण नियमित रूप से प्रदान की गई हो और कायम रही हो। शरण साधारण अपराधों के लिए और अति आवश्यक तथा ऐसे मामलों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में जहां शरणार्थी की सुरक्षा के लिए समय की दृष्टि से तुरन्त कार्यवाही आवश्यक हो, दी जा सकती है ।

हवाना अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 2 के अनुसार दूसरी शर्त यह है कि उस देश की, जिस देश का व्यक्ति शरण प्राप्त करने का प्रयास करता है, सरकार शरणार्थी को कम-से-कम समय में राज्यक्षेत्र से बाहर ले जाने की प्रार्थना करे और जिस देश ने शरण प्रदान की है उसका राजनयिक अभिकर्ता उस देश से शरणार्थी के सुरक्षात्मक प्रस्थान के लिए आवश्यक प्रत्याभूतियों की मांग कर सकता है ।

इस मामले में पीरू की सरकार ने हया डि ला टोरे के प्रत्यर्पण की मांग नहीं की है बल्कि उसने तो शरण की वैधता का प्रतिवाद किया है और बाहर ले जाने के लिए सुरक्षा प्रदान करने से इन्कार किया है। इन परिस्थितियों में कोलम्बिया सरकार यह मांग करने की हकदार नहीं है कि पीरू सरकार शरणार्थी को सुरक्षात्मक ढंग से बाहर ले जाने के लिए प्रतिभूति प्रदान करे ।

पीरू की सरकार ने अपने प्रतिदावे में न्यायालय से यह कहा है कि न्यायालय यह न्यायनिर्णीत और घोषित करे कि विक्टर राउल हया डि ला टोरे को लीमा में कोलम्बिया के राजदूत द्वारा जो शरण प्रदान की गई थी वह 1928 में हस्ताक्षरित शरण सम्बन्धी अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 1, पैरा 1 और अनुच्छेद 2, पैरा 2, मद 1 का अतिक्रमण करते हुए प्रदान की गई थी और बहरहाल अभी तक शरण के कायम रखे जाने से उस संधि का अतिक्रमण होता है ।

हवाना अभिसमय के अनुच्छेद 1, पैरा 1 के अनुसार राज्य ऐसे व्यक्तियों को शरण प्रदान नहीं कर सकते जो सामान्य अपराधों के लिए अभियुक्त या सिद्ध-दोष हों। पीरू सरकार यह प्रमाणित करने में असफल रही है कि सैनिक विद्रोह सामान्य अपराध के अन्तर्गत आता है ।

अभिसमय (कन्वेन्शन) का अनुच्छेद 2 राजनीतिक अपराधियों को शरण प्रदान करने के सम्बन्ध में है और उसमें सुनिश्चित शब्दों में वे शर्तें बताई गई हैं जिनके अधीन ऐसे अपराधियों को प्रदान की गई शरण के विनिश्चय को क्षेत्रीय राज्य को मानना पड़ेगा । इनमें सबसे अनिवार्य शर्त है कि शरणार्थी के जीवन को निरन्तर तथा आसन्न खतरा हो । कोलम्बिया सरकार के लिए यह आवश्यक था कि वह इस शर्त के पूरा होने के तथ्यों के प्रमाण प्रस्तुत करती ।

राजनीतिक अपराधी को मानवता के आधार पर जनता के हिंसात्मक एवं अनुत्तरदायी उच्छृंखल कार्य के विरुद्ध रक्षा प्रदान किए जाने के लिए शरण प्रदान की जा सकती है। किन्तु यह प्रमाणित नहीं किया गया था कि हया डि ला टोरे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को जिस समय शरण प्रदान की गई थी उस समय वह ऐसी अवस्था में था। इसके विपरीत वह तीन मास तक दूतावास में रहा। इन परिस्थितियों से ऐसा प्रतीत होता है कि कार्यवाही के लिए अति आवश्यकता की स्थिति नहीं थी। यह अविश्वसनीय है कि हवाना अभिसमय में अति आवश्यक मामलों में "नियमित अभियोग का भय" अर्थात् उसके अन्तर्गत नियमित कानूनी कार्यवाही से सुरक्षा प्रदान करना भी आता है।

सिद्धान्ततः न्यायिक कार्यवाही से बचाव के लिए शरण नहीं दी जा सकती। किन्तु इस नियम का एक अपवाद उस स्थिति में हो सकता है जब न्याय की आड़ में विधिसम्मत कार्यवाही की बजाए मनमानी कार्यवाही की जाए। ऐसा तब होता है जब न्याय प्रशासन राजनीतिक उद्देश्यों के लिए संचालित किया जाता है। शरण राजनीतिक अपराधी को ऐसी कार्यवाही के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करती है जो स्पष्टतया विधिक कार्यवाही से भिन्न प्रकृति की हो और जिसे कोई सरकार अपने राजनीतिक विरोधियों के प्रति करती है या करना चाहती है। किन्तु यह सुरक्षा विधि के नियमित प्रयोग या वैध रूप से गठित अधिकरणों की अधिकारिता के विपरीत प्रदान नहीं की जा सकती।

न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि हवाना अभिसमय (कन्वेन्शन) का आशय राजनीतिक अपराधों के लिए अभियोजित किसी भी व्यक्ति को "शरण सिद्धान्त के अधीन" सुरक्षा प्रदान करना है। यह स्वीकार करना कि विद्रोहात्मक घटनाओं से न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप होता है, राज्यों के आन्तरिक कार्यों में विशेष प्रकार के आक्रामक विदेशी हस्तक्षेप को अनुमति प्रदान करने के समान है तथा इस कसौटी की पुष्टि लेटिन अमेरीका के राज्यों की प्रथा से नहीं होती है।

न्यायालय के मतानुसार 3/4 जनवरी, 1949 को हया डि ला टोरे के लिए कोई ऐसा खतरा विद्यमान नहीं था जिससे उसे हवाना अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 2, पैरा 2 के अर्थान्तर्गत अति आवश्यकता की सीमा के अन्तर्गत लाया जा सके।

न्यायालय ने कोलम्बिया सरकार के इस तर्क को कि शरण प्रदान करने वाले राज्य के रूप में कोलम्बिया को यह अधिकार प्राप्त है कि वह पीरू सरकार पर आबद्धकर अपराध की प्रकृति निर्धारित करने का एकतरफा और अन्तिम विनिश्चय कर सकती है, अस्वीकार कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि कोलम्बिया सरकार द्वारा विक्टर राउल हया डि ला टोरे को जो शरण प्रदान की गई थी वह हवाना अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 2, पैरा 2 के अनुरूप प्रदान की गई थी।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

टिप्पणी :-- इस मामले का महत्व विशेषकर शरण की व्याख्या और शरण तथा प्रत्यर्पण में अन्तर स्थापित किए जाने के लिए है । इसका विशेष महत्व इस तथ्य को स्पष्ट करने में है कि किस प्रकार किसी प्रथा को रूढ़ि विधि के स्वरूप का प्राप्त होना प्रमाणित किया जा सकता है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रथा का रूढ़ि विधि के रूप में पुष्ट होना प्रमाणित करने के लिए न केवल यह आवश्यक है कि राज्यों ने उसे व्यवहार में अपनाया है बल्कि उनका यह व्यवहार इस मानसिक तत्व से प्रमाणित है कि ऐसा करना उनका कर्तव्य है । कर्तव्य भावना से प्रेरित व्यवहार ही प्रथा को रूढ़ि विधि का स्तर प्रदान करता है ।

* * * *

इस निर्णय के फलस्वरूप 1954 में राजनयिक शरण सम्बन्धी करकस अभिसमय (कन्वेन्शन) स्थापित किया गया । पीरू ने भी इसे अनुसमर्थित कर दिया है। इस अभिसमय के अनुच्छेद 2 में यह उपबन्धित है कि प्रत्येक राज्य को राजनयिक शरण प्रदान करने का तथा अनुच्छेद 4 के अनुसार अपराधी की प्रकृति या अभियोजन के उद्देश्यों को निश्चित करने का अधिकार दिया गया है । अभिसमय के अनुच्छेद 5 और 7 में यह उपबन्धित है कि शरण अति आवश्यकता की अवस्था में ही दी जाएगी तथा प्रत्येक मामले में शरणदाता आवश्यकता की सीमा निर्धारित कर सकेगा ।

* * * *

पठनीय सामग्री

प्रिन्स, कोलम्बियन पीरू असाइलम केस एण्ड प्रूफ ऑफ कस्टमरी इन्टरनैशनल लॉ, 45 ए० जे० आई० एल० 728 (1951).

ओपन हाइम—इन्टरनैशनल लॉ, भाग 1, पृष्ठ 327–40.

हाइड—इन्टरनैशनल लॉ, भाग 2, पृष्ठ 310–46.

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एस० एस० लोटस का मामला
(The S. S. Lotus)

पी० सी० आई० जे० 1927 सीरीज ए०, नंबर 10 (2 डब्ल्यू० सी० आर०)

यह निर्णय स्थायी अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय का एक महत्वपूर्ण निर्णय है, जो अन्तरराष्ट्रीय विधि के कई सिद्धांतों और नियमों को प्रभावित करता है । जैसे राज्यक्षत्रीय अधिकारिता (टेरिटोरियल जुरिसडिक्शन) का सिद्धांत राज्य सीमा के अन्तर्गत अन्तरराष्ट्रीय विधि के निर्बन्धनों के अधीन पूर्ण है, तथा विशेष स्थितियों में विदेशियों पर भी लागू हो सकता है । अन्तरराष्ट्रीय विधि का निर्माण कैसे होता है, प्रथा को रूढ़ीजन्य विधि का स्वरूप प्रदान करने के लिए किस प्रकार और किन-किन तत्वों के आधार पर सिद्ध किया जाता है तथा खुले समद्र में दो विभिन्न देशों के पोतों के बीच टक्कर होने पर किस राज्य को अपराधी पर अभियोग चलाने की अधिकारिता प्राप्त है, आदि ।

2 अगस्त, 1926 की रात को बारह बजे के लगभग कान्सटेन्टिनोपोल जा रहे फ्रान्सीसी डाक स्टीमर, लोटस तथा तुर्की के कोयला वाहक जहाज, बुजकोर्ट के बीच केप सिगरा (मिताई लेन) के उत्तर में 5-6 मील पर टक्कर हो गई । परिणामस्वरूप बुजकोर्ट के दो टुकड़े हो गए और वह डूब गया तथा उस पर सवार 8 तुर्की राष्ट्रिकों की मृत्यु हो गई ।

टक्कर के समय लोटस का प्रमुख अधिकारी, फ्रान्सीसी नागरिक लेफ्टिनेण्ट डेमन्स था तथा बुजकोर्ट का तुर्की नागरिक कैप्टन हसन बे था । कैप्टन हसन बे को डूबते जहाज से बचा लिया गया था ।

3 अगस्त को लोटस कान्सटेन्टिनोपोल पहुंचा वहां पर टक्कर की जांच तुर्की अधिकारियों ने लोटस पर जा कर की । 4 अगस्त को लोटस के अधिकारी डेमन्स ने मास्टर्स रिपोर्ट फ्रान्सीसी काउन्सलेट जनरल को तथा उसकी प्रति हार्बर मास्टर को भेज दी ।

5 अगस्त को तुर्की अधिकारियों ने डेमन्स को साक्ष्य देने के लिए बन्दरगाह पर बुलाया । इसी परीक्षण के मध्य डेमन्स तथा हसन बे को बन्दी बना लिया गया तथा इस्तम्बुल के न्यायालय में उनके विरुद्ध अभियोग चलाया गया । डेमन्स के बन्दी बनाए जाने की सूचना फ्रान्स के वाणिज्य दूत को नहीं दी गई ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

28 अगस्त को इस्तम्बुल के दाण्डिक न्यायालय ने अभियोग की सुनवाई की। डमन्स ने यह दलील दी कि तुर्की को उस पर अभियोग चलाने की अधिकारिता नहीं है किन्तु न्यायालय ने इस दलील को स्वीकार नहीं किया। 11 सितम्बर को जब सुनवाई प्रारम्भ हुई तो डेमन्स ने जमानत पर रिहाई के लिए आवेदन दिया जो 13 सितम्बर को स्वीकार कर लिया गया और जमानत की राशि 6,000 तुर्की पौण्ड रखी गई।

15 सितम्बर को न्यायालय ने निर्णय दिया जिसमें डेमन्स को 80 दिन के कारावास तथा 22 पौण्ड जुर्माने का दण्ड दिया गया तथा हसन बे को अधिक कठोर दण्ड दिया गया। इस निर्णय की सूचना पक्षकारों को नहीं दी गई तथा इस निर्णय के विरुद्ध तुर्की के लोक अभियोजक (पब्लिक प्रॉसीक्यूटर) ने अपील कर दी तथा अपील की सुनवाई तक दण्ड के निष्पादन को रोके जाने की मांग की।

तुर्की अधिकारियों द्वारा डेमन्स पर अभियोग चलाए जाने के विरुद्ध फ्रान्स सरकार तथा तुर्की स्थित उसके प्रतिनिधि ने राजनयिक व्यपदेशन किए तथा अन्य कदम उठाए जिनमें डेमन्स को बन्दी बनाए जाने का विरोध किया गया और उसकी निर्मुक्ति अथवा उसके विरुद्ध अभियोग को तुर्की न्यायालय से फ्रान्सीसी न्यायालय को अन्तरित करने की मांग की गई थी।

फ्रान्स सरकार द्वारा किए गए व्यपदेशनों के परिणामस्वरूप तुर्की सरकार ने 2 सितम्बर, 1926 को यह घोषणा की कि उसे इस मामले को हेग स्थित अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता में अन्तरित करने में आपत्ति नहीं होगी। 6 सितम्बर को फ्रान्स ने भी इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति व्यक्त कर दी। परिणामस्वरूप 12 अक्तूबर को जनेवा में एक विशेष करार पर हस्ताक्षर हुए तथा 27 दिसम्बर को उसका अनुसमर्थन किया गया। इसी करार के अधीन यह मामला स्थायी अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष पहुंचा। इस करार में यह उपबन्धित किया गया था कि तुर्की के दण्ड न्यायालय में जो कार्यवाही चल रही थी उस पर इसका यह प्रभाव नहीं पड़ेगा कि वह कार्यवाही निलम्बित हो जाए।

इस विशेष करार के आधार पर न्यायालय को निम्नलिखित प्रश्न विनिश्चित करने थे—

(1) क्या तुर्की ने 24 जुलाई, 1923 के लाउसेना अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 15 की निवास, कारबार और अधिकारिता सम्बन्धी शर्तों के प्रतिकूल कार्य करके अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों का उल्लंघन किया है? यदि ऐसा है तो तुर्की ने लोटस और बुजकोर्ट की समुद्र में टक्कर होने के बाद जिसमें बुजकोर्ट डूब गया और आठ व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी तथा लोटस के कान्स्टेन्टिनोपोल पहुंचने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर लोटस के अधिकारी डेमन्स तथा तुर्की जहाज के कैप्टन के विरुद्ध तुर्की विधि के अनुसार सम्मिलित अभियोग चलाकर अन्तरराष्ट्रीय विधि के किन सिद्धांतों के विरुद्ध कार्य किया है ।

(2) यदि उत्तर सकारात्मक हो तो अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों के अनुसार इसी प्रकार के अन्य मामलों में क्षतिपूर्ति के आधार पर धन के रूप में डेमन्स को कितनी क्षतिपूर्ति देय होगी ।

विशेष करार की शर्तों के आधार पर स्थिति अवधारित करने के पश्चात् न्यायालय यह अभिनिश्चित करेगा कि डेमन्स पर चलाया गया अभियोग अन्तरराष्ट्रीय विधि के किन सिद्धांतों के विरुद्ध है ।

24 जुलाई, 1923 का लाउसेन अभिसमय (कन्वेन्शन) का अनच्छेद 15 जो निवास, कारबार और अधिकारिता की शर्तों के संबंध में है संविदाकारी पक्षकारों को अपनी-अपनी अधिकारिता को परिसीमित करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों के प्रति निर्देश करता है ।

अभिसमय (कन्वेन्शन) का अनुच्छेद 15 इस प्रकार है :—

अनुच्छेद 16 के उपबन्धों के अध्यधीन अधिकारिता के सभी प्रश्न तुर्की और अन्य संविदाकारी शक्तियों के बीच अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों के अनुसार विनिश्चित किए जाएंगे ।

न्यायालय की यह मान्यता है कि "अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांत" अभिव्यक्ति का अर्थ उस अन्तरराष्ट्रीय विधि से ही है जो राज्यों के समुदायों (कम्युनिटी ऑफ स्टेट्स) के बीच साधारण रूप से लागू होती हैं । इस अभिव्यक्ति का इससे भिन्न अर्थ लगाना असम्भव है जब तक कि निश्चित अनुबन्धों में ऐसा न दिया गया हो । अत: यहां इन परिस्थितियों में इस अभिव्यक्ति का अर्थ उन सिद्धांतों से है जो सभी स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच प्रवृत्त हैं और वे ही सभी संविदाकारी पक्षकारों को समानत: लागू होते हैं ।

फ्रान्स सरकार ने यह दलील दी कि तुर्की न्यायालयों को अपनी अधिकारिता सिद्ध करने के लिए यह दर्शित करना चाहिए कि उन्हें अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा मान्यताप्राप्त सिद्धांतों के अधीन अधिकारिता का हक प्राप्त है । दूसरी ओर तुर्की सरकार ने यह दलील दी कि लाउसेन अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 15 के अधीन उसे यह अधिकारिता तब तक प्राप्त है जब तक कि ऐसी अधिकारिता अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों के विरुद्ध न हो ।

पश्चात्कथित मत विशेष करार की मद संख्या 1 के अनुरूप है जिसमें न्यायालय से यह दर्शित करने के लिए कहा गया है कि क्या तुर्की ने अन्तरराष्ट्रीय विधि के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिद्धांतों के प्रतिकूल कार्य किया है और यदि हां, तो किन सिद्धांतों के प्रतिकूल। अतः विशेष करार के अनुसार प्रश्न ऐसे सिद्धांत कथित करने का नहीं है जिनके अनुसार तुर्की दाण्डिक कार्यवाही कर सकता है अपितु वे सिद्धांत सूचित करना है जिनका ऐसी कार्यवाहियों से उल्लंघन हुआ हो।

अन्तरराष्ट्रीय विधि स्वतंत्र राज्यों के बीच संबंधों का विनियमन करती है। विधि के आबद्धकर नियम उनकी उस स्वतंत्र इच्छा से उत्पन्न होते हैं जो अभिसमयों में या ऐसी प्रथाओं में अभिव्यक्त होती है जिनके बारे में साधारणतया यह माना जाता है कि वे विधि के सिद्धांतों को अभिव्यक्त करने वाली हैं तथा सह-अस्तित्वशील स्वतंत्र समुदायों के बीच, सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सम्बन्धों को विनियमित करने के लिए सुस्थापित है। अतः स्वतंत्र राज्यों पर निर्बन्धनों की उपधारणा नहीं की जा सकती।

अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा किसी राज्य पर अधिरोपित प्रथम एवं महत्वपूर्ण निर्बन्धन यह है कि जब तक किसी अनुज्ञेय नियम में अभिप्रेत न हो, वह किसी दूसरे राज्य की सीमा में किसी भी प्रकार से अपनी शक्ति या अधिकारों का प्रयोग नहीं करेगा। इस अर्थ में अधिकारिता निश्चित रूप से क्षेत्रीय है तथा उसका प्रयोग उस राज्य के क्षेत्र के बाहर नहीं किया जा सकता जब तक कि अन्तरराष्ट्रीय प्रथा या अभिसमय में कोई अनुज्ञेय नियम उपलब्ध न हो।

इन परिस्थितियों में एक राज्य से यह अपेक्षित है कि वह अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा अधिकारिता के आधार पर निर्धारित सीमा का अतिक्रमण नहीं करेगा। इन सीमाओं के भीतर अधिकारिता के प्रयोग का हक उसके प्रभुत्व में निहित है।

अब यह देखना है कि क्या उपरोक्त बातें दाण्डिक अधिकारिता के सम्बन्ध में लागू होती हैं या इस अधिकारिता के सम्बन्ध में कोई भिन्न सिद्धान्त लागू होता है जो सर्वोच्च दाण्डिक अधिकारिता या राज्य की धारणा के बीच काफी लम्बे समय से विद्यमान घनिष्ठ संबंधों का परिणाम हो और व्यष्टि के दृष्टिकोण से दाण्डिक अधिकारिता के विशेष महत्व के कारण हों।

यद्यपि यह सत्य है कि विधि की सभी पद्धतियों में दाण्डिक विधि के प्रादेशिक स्वरूप का सिद्धान्त मूलभूत सिद्धान्त है तथापि यह भी समान रूप से सत्य है कि विधि की इन सभी पद्धतियों के अधीन राज्य उन सभी अपराधों के सम्बन्ध में जो उस राज्य के जो उन पद्धतियों को अपनाता है, क्षेत्र के बाहर किए गए हों, अपने कार्यक्षेत्र का कई प्रकार से विस्तार कर लेते हैं जो एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होते हैं। अतः दाण्डिक विधि की क्षेत्रीयता का सिद्धान्त अन्तरराष्ट्रीय विधि का आत्यन्तिक सिद्धान्त नहीं है और किसी भी प्रकार से क्षेत्रीय प्रभुत्व से मेल नहीं खाता।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो दलीलें दी गई हैं उनमें से एक दलील के अनुसार स्वतंत्रता का सिद्धान्त, जिसके आधार पर हर एक राज्य अपने विवेकानुसार अपना-अपना विधान बना सकता है बशर्ते कि वह विधान अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा अधिरोपित किसी निर्बन्धन के विरुद्ध न हो, दाण्डिक मामलों में अधिकारिता की परिधि को लागू होने वाली विधि के सम्बन्ध में भी लागू होगा । एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार इस कार्यक्षेत्र से सम्बद्ध विधि के अनन्य क्षेत्रीय स्वरूप से एक ऐसा सिद्धान्त गठित होता है जो, अभिव्यक्ततः उपबन्धित के सिवाय, स्वयमेव ही राज्यों को अपनी सीमाओं के बाहर अपने न्यायालयों की दाण्डिक अधिकारिता का विस्तार करने से रोकेगा । इसके अपवाद, जिनमें उदाहरणार्थ राष्ट्रिकों तथा लोक क्षेम के विरुद्ध किए गए अपराधों के सम्बन्ध में राज्यक्षेत्रातीत अधिकारिता शामिल है, उन विशेष अनुज्ञेय नियमों पर निर्भर करते हैं जो अन्तरराष्ट्रीय विधि का भाग हों ।

यदि तर्क के रूप में पश्चात्वर्ती दृष्टिकोण स्वीकार कर भी लिया जाए तो यह अवश्य मानना पड़ेगा कि किसी संधि के अभाव में, उसकी शुद्धता इस बात पर निर्भर करती है कि क्या कोई ऐसी रूढ़ि विद्यमान है जिसे विधि का बल प्राप्त हो । इस पद्धति के लागू किए जाने के बारे में भी यही बात सत्य है । अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि इस दृष्टिकोण से भी, यह अभिनिश्चित करने से पूर्व कि क्या अन्तरराष्ट्रीय विधि का कोई ऐसा नियम विद्यमान है जिसके अनुसार तुर्की को किसी ऐसे विदेशी के विरुद्ध अभियोग चलाने के लिए अभिव्यक्त रूप से अनुज्ञात किया गया है जिसने तुर्की के बाहर कोई अपराध किया हो, यह सिद्ध करना आवश्यक है कि यह पद्धति सुआधारित है और यह विशिष्ट मामले में लागू होती है । इन दृष्टिकोणों में प्रथम दृष्टिकोण स्थापित करने के लिए यह साबित करना आवश्यक है कि दाण्डिक विधान के बारे में राज्यों के विवकाधिकार को निर्बन्धित करने वाली अन्तरराष्ट्रीय विधि का कोई सिद्धान्त विद्यमान है ।

परिणामतः ऊपर वर्णित पद्धतियों में से किसी भी पद्धति को स्वीकार किया जाए, इस विशिष्ट मामले में एक ही परिणाम निकलता है कि यह अभिनिश्चित करना आवश्यक है कि क्या अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन कोई ऐसा सिद्धान्त है जो तुर्की को लेफ्टीनेण्ट डेमन्स को अभियोजित करने से रोकता हो ।

अब यह अभिनिश्चित किया जाएगा कि क्या साधारण अन्तरराष्ट्रीय विधि में, जिसका लाउसेन अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 15 में निदेश किया गया है, कोई ऐसा नियम है जो तुर्की को डेमन्स पर अभियोग चलाने से रोकता हो । इसके लिए सबसे पहले फ्रान्स द्वारा दिए गए तर्कों तथा जांच के अन्य संबंधित पहलुओं, जिनसे इस मामले में लागू किए जाने योग्य निर्बन्धक नियम की उपलब्धि का ज्ञान हो सके, पर विचार किया जाएगा ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ्रान्स ने मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन तर्क दिए :—

1. अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार किसी राज्य को किसी विदेशी द्वारा विदेश में किए गए अपराध के लिए, आहत व्यक्ति की राष्ट्रीयता के आधार पर, अभियोग चलाने का अधिकार प्राप्त नहीं है और वर्तमान मामले में ऐसी ही स्थिति है क्योंकि अपराध फ्रांस के पोत पर किया गया माना जाना चाहिए ।

2. अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार समुद्र में पोत पर किए गए सभी कार्यों पर ध्वज-राज्य (वह राज्य जिसका ध्वज जहाज पर लहराता है) की एकमात्र अधिकारिता को मान्यता प्रदान की जाती है ।

3. यह सिद्धान्त विशेष रूप से समुद्र में दो राज्यों के पोतों में टक्कर हो जाने के मामलों में लागू होता है ।

प्रथम तर्क के सम्बन्ध में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उसका विचारण प्रस्तुत मामले की विशेष स्थिति तक ही सीमित रहेगा जिसके संबंध में निर्णय मांगा गया है ।

जैसा कि पहले वर्णित किया जा चुका है स्थिति की विशिष्ट बातें इस प्रकार हैं—भिन्न-भिन्न राज्यों के दो जलयानों में समुद्र में टक्कर हुई जिनमें से एक पर वह व्यक्ति था जिसके बारे में यह अभिकथित किया गया है कि वह अपराध का दोषी है जबकि पीड़ित व्यक्ति दूसरे जलयान पर थे ।

अतः न्यायालय इस तर्क पर विचार करना आवश्यक नहीं समझता कि कोई राज्य किसी विदेशी द्वारा किसी जलयान पर किए गए अपराधों के लिए केवल आहत व्यक्ति की राष्ट्रीयता के आधार पर ही दण्ड नहीं दे सकता । क्योंकि यह तर्क केवल उस मामले से संबंधित है जहां आहत व्यक्ति की राष्ट्रीयता ही एकमात्र कसौटी है जिस पर राज्य की दाण्डिक अधिकारिता आधारित है । न्यायालय की जानकारी में ऐसा कोई तर्क नहीं है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि राज्य केवल उस स्थान के, जहां अपराधी अपराध के समय हो, आधार पर अपने आपको एक-दूसरे के प्रति किसी बाध्यता के अधीन मानते हैं । इसके विपरीत यह निश्चित है कि बहुत से देशों के न्यायालय यहां तक कि उन देशों के न्यायालय भी जिनका दाण्डिक विधान क्षेत्रीय स्वरूप का है, दण्ड विधि का निर्वचन इस अर्थ में करते हैं कि उन अपराधों के, जिन्हें करने वाले व्यक्ति अपराध के किए जाने के समय दूसरे राज्य के क्षेत्र में हैं, बारे में यह समझा जाता है कि वे राष्ट्रीय क्षेत्र में किए गए थे यदि अपराध गठित करने वाली बातों में से एक भी बात उसकी सीमा में की गई है । फ्रान्सीसी न्यायालयों ने भी विभिन्न स्थितियों में अपने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्णयों में इस प्रकार के क्षेत्रीय सिद्धान्त के इस प्रकार निर्वचन करने की स्वीकृति प्रदान की है । इसके अतिरिक्त न्यायालय की जानकारी में ऐसे कोई मामले नहीं हैं जिनमें सरकारों ने इस तथ्य के विरुद्ध कोई आपत्ति की हो कि किसी देश की दाण्डिक विधि में इस प्रकार का कोई नियम है या किसी देश के न्यायालयों ने उनकी दाण्डिक विधि का इस प्रकार निर्वचन किया है । परिणामतः यदि एक बार यह स्वीकार कर लिया जाता है कि अपराध का प्रभाव तुर्की के जलयान पर हुआ है तो यह अभिनिर्धारित करना असम्भव हो जाता है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि का कोई ऐसा नियम है जो तुर्की को, इस तथ्य के कारण कि अपराध करने वाला फ्रान्सीसी जहाज पर था, लेफ्टिनेन्ट डेमन्स को अभियोजित करने से रोकता है। चूंकि विशेष करार केवल इस प्रश्न से सम्बन्धित है कि क्या अभियोजन के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के विपरीत है, इसलिए ऐसा कोई कारण नहीं है जो न्यायालय को अपना संप्रेक्षण यहां तक सीमित रखने से रोकता हो कि इस मामले में तथाकथित क्षेत्रीय सिद्धान्त के दृष्टिकोण से भी अभियोजन न्यायोचित हो सकता है ।

फ्रान्स सरकार द्वारा दिया गया दूसरा तर्क यह था कि खुले समुद्र में वाणिज्यिक पोत पर किए गए कार्यों पर ध्वज राज्य की पूर्ण अधिकारिता होती है । यह निश्चित रूप से सत्य है कि कुछ विशिष्ट मामलों को छोड़कर, जो अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा परिभाषित हैं, खुले समुद्र में जलयान ध्वज राज्य के सिवाए किसी अन्य राज्य के प्राधिकार के अध्यधीन नहीं होते । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कोई राज्य कभी भी खुले समुद्र में किसी विदेशी जलयान पर हुए कार्यों पर अपनी क्षेत्रीय अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर सकते । सामुद्रिक स्वतंत्रता के सिद्धान्त का एक सह-सिद्धान्त यह है कि खुले समुद्र में पोत उस राज्य के क्षेत्र में समाहित होता है जिसका ध्वज उस पर लहरा रहा होता है और वह राज्य उस पर अपनी अधिकारिता का प्रयोग उसी प्रकार कर सकता है जैसे वह अपने राज्य-क्षेत्र पर करता है। कोई अन्य राज्य उस पर अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर सकता। अतः सामुद्रिक स्वतंत्रता के सिद्धान्त के आधार पर पोत को राज्य के क्षेत्र के समान स्थिति का माना जाता है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि खुले समुद्र में किसी जलयान पर जो कुछ होता है उसके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह उस ध्वज राज्य के क्षेत्र के भीतर हुआ हो । अतः यदि खुले समुद्र में किसी जलयान पर किए गए किसी दोषपूर्ण कार्य से किसी दूसरे ध्वज राज्य के जलयान पर या विदेशी राज्यक्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है तो उन्हीं सिद्धान्तों को लागू किया जाना चाहिए जो दो राज्यों के क्षेत्रों के सम्बन्ध में लागू होता है और यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि उस राज्य को, जिसके पोत पर अपराध का प्रभाव होता

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, अपराधी को उसी प्रकार अभियोजित करने का अधिकार है जैसे कि वह अपराध उसके ही राज्यक्षेत्र में किया गया हो और अन्तरराष्ट्रीय विधि का कोई नियम उसे ऐसा करने से नहीं रोकता ।

इस निष्कर्ष को निष्प्रभावी तभी किया जा सकता है जब यह दर्शित किया जा सके कि रूढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि का कोई ऐसा नियम है जो उस राज्य की अनन्य अधिकारिता स्थापित करता है जिसका ध्वज उस जलयान पर लहरा रहा हो । फ्रान्सीसी सरकार ने ऐसे नियम की विद्यमानता साबित करने का प्रयास किया है, उसने इस प्रयोजन के लिए विद्वानों के कथनों राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय अधिकरणों के विनिश्चयों तथा विशेष रूप से ऐसे अभिसमयों (कन्वेन्शनों) का आश्रय लिया है जो यद्यपि किसी राज्य के युद्ध और पुलिस जलयानों को दूसरे राज्य के तथा वाणिज्यिक जलयानों पर न्यूनाधिक नियंत्रण रखने की इजाज़त देकर सामुद्रिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के अपवादों का सृजन करते हैं तथापि उस देश के न्यायालयों को अधिकारिता प्रदान करते हैं जिसका ध्वज उस जलयान पर लहराता है जिसके विरुद्ध कार्यवाही की गई हो ।

किन्तु न्यायालय के मतानुसार ऐसे नियम की विद्यमानता निश्चायक रूप से साबित नहीं की गई है । प्रथमतया जहां तक विद्वानों के कथनों का संबंध है रूढ़ीजन्य विधि के नियम की विद्यमानता स्थापित करने की दृष्टि से उनका मूल्य क्या होगा इस प्रश्न के अलावा यह निःसन्देह सत्य है कि लगभग सभी लेखक यह बताते हैं कि खुले समुद्र में पोत उस राज्य की अनन्य अधिकारिता के अध्यधीन होते हैं जिसका ध्वज उन पर लहरा रहा होता है । किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि वे इस सिद्धांत को कितना महत्व देते हैं । अब ऐसा प्रतीत नहीं होता कि साधारणतया लेखक इस सिद्धांत का भिन्न या अधिक व्यापक अर्थ नहीं लगाते, अतएव सबके कथनों का सार यह है कि खुले समुद्र में जलयानों पर किसी राज्य की उतनी ही अधिकारिता होती है जितनी कि उसे अपने राज्यक्षेत्र पर अधिकारिता होती है । दूसरी ओर ऐसे विद्वानों की भी कमी नहीं है जो इस विशेष प्रश्न के, कि क्या कोई राज्य किसी खुले समुद्र में किसी विदेशी पोत पर किए गए अपराधों के लिए (जिसका प्रभाव उसके जहाज पर पड़ता है) अभियोजन चला सकता है, गहन अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस प्रकार के अपराधों के बारे में यह समझा जाना चाहिए मानो वे उस राज्य के क्षेत्र में किए गए थे जिस राज्य का ध्वज उस पोत पर लहरा रहा था और यह कि परिणामतः पोत पर किए गए अपराधों के लिए प्रत्येक विधि पद्धति द्वारा मान्य साधारण नियम लागू होते हैं ।

दूसरी ओर ऐसे मामलों का अभाव नही है जिनमें किसी एक राज्य ने किसी विदेशी जलयान पर किए गए ऐसे अपराध के अभियोजन के लिए अपने अधिकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का दावा किया हो जिसे वह अपने विधान के अनुसार दण्डनीय समझता है। यथा ब्रिटेन ने अमेरीकी पोत पर हत्या के अपराध के लिए ब्रिटिश नाविक पर अभियोग चलाने के अधिकार का दावा किया था जिससे ज्ञात होता है कि ध्वज राज्य की उसके जहाज पर किए गए कार्य के लिए एकमात्र अधिकारिता नहीं होती है।

जहां तक नजीरों का सम्बन्ध है, टक्कर के मामलों को छोड़कर, कोई भी नजीर भिन्न-भिन्न देशों के ध्वज लहराने वाले दो पोतों को प्रभावित करने वाले अपराधों से सम्बद्ध नहीं है और परिणामतः प्रस्तुत मामले में उनका कोई महत्व नहीं है।

ऐसे दृष्टान्त जहां ध्वज-राज्य ने अधिकारिता का प्रयोग किया है, केवल आहत व्यक्तियों की राष्ट्रीयता पर आधारित हैं और विदेशियों के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रभाव स्थापित नहीं करते।

जहां तक उन अभिसमयों (कन्वेन्शनों) का सम्बन्ध है, जिनके अधीन अभिव्यक्त रूप से ध्वज राज्य की अनन्य अधिकारिता आरक्षित होती है, यह पूर्णतया निश्चित नहीं है कि इस अनुबन्ध को उस असाधरण अधिकारिता के, जो इन अभिसमयों (कन्वेन्शनों) के अधीन खुले समुद्र में किसी अन्य देश के पोतों के सम्बन्ध में किसी विशिष्ट देश के राज्य स्वामित्व पोतों को प्रदत्त की जाती है, तदरूप माने जाने की बजाए विधि का साधारण सिद्धान्त अभिव्यक्त करने वाला माना जाए। इसके अलावा ये अभिसमय (कन्वेन्शन) समुद्र की नीतियों से सम्बद्ध विशिष्ट मामलों से; जैसे कि गुलाम व्यापार, पनडुबियों के तारों को नुकसान, मत्स्य आदि, न कि सामान्य विधि के अपराधों के मामलों से सम्बन्धित हैं। प्रश्नास्पद अभिसमयों (कन्वेन्शनों) द्वारा अनुध्यात अपराध केवल एक ही पोत से सम्बन्धित है, अतः उनसे दो पोतों से सम्बन्धित विषयों और परिणामतः दो भिन्न राज्यों की अधिकारिता के बारे में कोई निष्कर्ष निकालना असम्भव है। अतः न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि फ्रांस सरकार यह स्थापित करने में असफल रही है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि का ऐसा कोई नियम विद्यमान है जो तुर्की को डेमन्स का अभियोजन करने से रोकता हो।

फ्रान्स सरकार ने न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया कि टक्कर के मामले प्रायः सिविल न्यायालयों में और यदा-कदा दाण्डिक न्यायालयों में चलाए जाते रहे हैं। इससे फ्रांस सरकार ने यह निष्कर्ष निकाला है कि व्यवहारतः अभियोजन केवल ध्वज राज्य के न्यायालयों में ही चलाया जा सकता है और यह राज्यों की मौन स्वीकृति का प्रतीक है और इससे यह दर्शित होता है कि टक्कर के मामलों में निश्चित अन्तरराष्ट्रीय विधि विद्यमान है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय के मतानुसार यह निष्कर्ष नहीं निकलता। । यद्यपि रिपोर्ट किए गए मामलों में न्यायालयों के निर्णय की कमी इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है जैसा कि फ्रान्स ने अभिकथन किया है किन्तु उनसे केवल यह दर्शित होता है कि व्यवहारतः राज्यों ने दाण्डिक कार्यवाहियां चलाने से प्रायः अपने आपको प्रविरत रखा है। यदि यह सिद्ध किया जा सके कि वे ऐसे प्रविरत रहने से अपने को कर्त्तव्यबद्ध समझते थे तो उसे अन्तरराष्ट्रीय रूढ़ि समझा जा सकता है। अभिकथित तथ्यों से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि राज्यों ने ऐसा अपना कर्तव्य समझ कर किया ।

अतः न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि खुले समुद्र में दो पोतों के बीच टक्कर के मामलों के संबंध में इस प्रभाव की कोई अन्तरराष्ट्रीय विधि नहीं है कि दाण्डिक कार्यवाहियां करने की अधिकारिता केवल ध्वज-राज्य की है।

24 जुलाई, 1923 के लाउसेन अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 15 के अर्थान्तर्गत अन्तरराष्ट्रीय विधि का कोई ऐसा सिद्धांत नहीं है जो विचाराधीन दाण्डिक कार्यवाहियां संस्थित करने से रोकता हो। परिणामतः तुर्की ने, अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा हर एक प्रभुत्वसम्पन्न राज्य को प्रदत्त विवेकाधिकार के आधार पर, प्रश्नगत दाण्डिक कार्यवाहियां संस्थित करके विशेष करार के अर्थान्तर्गत अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों के प्रतिकूल कार्य नहीं किया है।

अतः डेमन्स की आर्थिक हानिपूर्ति करने के संबंध में निर्णय देने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

टिप्पणी:--1. सामन्य रूप से आधुनिक अन्तरराष्ट्रीय विधिवेत्ता एक मत हैं कि अन्तरराष्ट्रीय प्रथा को रूढ़िजन्य विधि की शक्ति प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित दो परीक्षणों में उत्तीर्ण होना आवश्यक है--(1) तात्विक परख (मैटीरियल टेस्ट) तथा (2) मानसिक तत्व परख (अर्थात् बाध्यात्मकता के प्रति पारस्परिक विश्वास की पुनरावृत्ति अनिवार्य नियम का परिणाम है)। तात्विक परख के अधीन किसी रूढ़ि का सुस्पष्ट होना और उसका काफी समय से निरन्तर प्रयोग किया जाना आवश्यक है। जबकि मानसिक तत्व के अधीन उसका प्रयोग करने वाले को यह विश्वास होना चाहिए कि वैसा करना उसका विधिगत कर्तव्य है और ऐसा करने में वह अपने दायित्व का निर्वाह कर रहा है। प्रथम परख को सिद्ध करना कठिन नहीं है। वह आसानी से दृष्टान्तों से जानी जा सकती है किन्तु द्वितीय परख के अधीन रूढ़ि की वैधता सिद्ध करना अत्यन्त कठिन है। इस मामले में न्यायालय ने समुद्र में ध्वज-राज्य के पोत पर किए जाने वाले कार्यों के संबंध में तथा दाण्डिक कार्यवाही की अनन्य अधिकारिता को इसी आधार पर अस्वीकार कर दिया था कि उनकी पुष्टि के लिए जो दृष्टांत फ्रांस ने प्रस्तुत किए थे उनसे यह सिद्ध नहीं होता था कि कार्यवाही कर्तव्य या दायित्व की भावना के अधीन की गई थी। अतः जब तक कर्तव्य

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या दायित्व के अधीन कार्य किया जाना सिद्ध नहीं होता तब तक किसी प्रथा का रूढ़िजन्य विधि का स्वरूप स्वीकार नही किया जा सकता । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि मानसिक तत्व एक अनुमानात्मक तत्व है जो सभी सम्मिलित परिस्थितियों के आधार पर निकाला जा सकता है केवल विस्तृत कार्यवाहियों या प्रयोगों के प्रस्तुतीकरण से नहीं क्योंकि वे केवल तात्विक तत्व हैं। न्यायालय के अनुसार जब तक मानसिक तत्व सिद्ध नहीं होता तब तक कोई प्रथा रूढ़िजन्य विधि का स्वरूप प्राप्त नही करती । इस निर्णय ने अन्तरराष्ट्रीय विधि के स्रोतों की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2. इस मामले में न्यायालय ने प्रथा का रूढ़िजन्य विधि का स्वरूप धारण करना सिद्ध करने के लिए राष्ट्रीय विधियों, व्यवहार, संधियों, विद्वानों के कथनों तथा रूढ़ि के साक्ष्यों अर्थात् तात्विक तत्वों का परीक्षण किया और यह अभिनिर्धारित किया कि खुले समुद्र में जलयानों के बीच टक्कर होने के मामलों में ध्वज राज्य को अनन्य दाण्डिक अधिकारिता प्राप्त है। इस सिद्धान्त को रूढ़िजन्य विधि की प्रास्थिति प्राप्त नही हुई है क्योंकि तात्विक तत्वों और राज्य की विधियों में संगति नहीं है, राज्यों के निर्णय विरोधाभासी हैं और संधियों तथा विद्वानों के कथनों में एकरूपता का अभाव है। न्यायालय द्वारा इस मामले में दिए गए निर्णय को 10 मई, 1952 के ब्रुसेल्स अभिसमय (कन्वेन्शन) में स्वीकार नहीं किया गया और विधि को संहिताबद्ध करते हुए अन्तरराष्ट्रीय विधि आयोग ने खुला समुद्र अभिसमय, 1958 (कन्वेन्शन आन दि हाई सीज, 1958) जिसे संयुक्त राष्ट्रीय समुद्र विधि सम्मेलन ने स्वीकार किया, में भी इस निर्णय को स्वीकार नहीं किया तथा अनुच्छेद 11 में विधि को स्पष्टतः प्रदान करने के उद्देश्य से निम्नलिखित उपबन्ध किए हैं:—

(i) समुद्र में जलयानों में टक्कर होने अथवा जो संचालन संबंधी अन्य दुर्घटना से जलयान के मास्टर या जलयान की सेवा में लगे अन्य व्यक्ति पर आपराधिक या अनुशासनात्मक दायित्व होने पर कोई आपराधिक या अनुशासनात्मक कार्यवाही न्यायिक या प्रशासनिक अधिकारी के समक्ष या तो ध्वज-राज्य या उस राज्य के, जिसका वह नागरिक है, द्वारा नहीं चलाई जाएगी ।

(ii) अनुशासनात्मक मामलों में केवल वह राज्य, जिसने मास्टर का प्रमाणपत्र दिया है या सक्षमता का प्रमाणपत्र दिया है या अनुज्ञप्ति जारी की है, यथा विधि प्रक्रिया के पश्चात् ऐसे प्रमाणपत्रों के प्रत्याहरण के लिए सक्षम होगा चाहे धारक उस राज्य का राष्ट्रिक न हो जिसने प्रमाणपत्र जारी किया है ।

(iii) जलयान की गिरफ्तारी या निरोध, चाहे अन्वेषण के परिणामस्वरूप हो, ध्वज-राज्य के किसी प्राधिकारी के आदेश से नहीं होगा ।

1967 तक इस अभिसमय को 40 राज्यो का अनुसमर्थन प्राप्त हो गया है और उन राज्यों के बीच लागू है तथा वर्तमान विधि का द्योतक है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

3. न्यायालय ने अन्तरराष्ट्रीय विधि के संबंध में यह भी उद्घोषित किया कि वह स्वतंत्र राष्ट्रों द्वारा अभिसमयों और पारस्परिक व्यवहार के लिए स्वीकृत प्रथा द्वारा निर्मित होती है और जब तक कि विशेष अनुबन्धों से राज्यों के संबंध शासित न हों, सभी राज्यों पर समान रूप से लागू होती है ।

4. न्यायालय ने अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधिकारिता संबंधी इस सिद्धान्त को स्वीकृति प्रदान की कि अन्तरराष्ट्रीय विधिद्वारा लगाए गए निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए प्रत्येक राज्य को अपनी क्षेत्रीय सीमा के अन्तर्गत पूर्ण अधिकारिता प्राप्त है और वह उसकी प्रभुता में निहित है ।

5. न्यायालय ने अन्तरराष्ट्रीय विधि के इस सिद्धान्त की भी पुष्टि की कि सामान्य अवस्थाओं में खुले समुद्र में जलयान-ध्वज-राज्य की क्षेत्रीय सीमा का समानार्थक होता है और उस पर उसे वही अधिकारिता प्राप्त होती है जो उस राज्य को अपनी क्षेत्रीय सीमा के भीतर प्राप्त होती है ।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारतीय राज्यक्षेत्र पर रास्ते के अधिकार स सम्बन्धित मामला
(Right of passage over Indian Territory)
पुर्तगाल बनाम भारत
(Portugal *vs.* India)

आई० सी० जे० रिपोर्टस् 1960 पृष्ठ 6.

इस निर्णय में विचारणीय प्रश्न यह था कि क्या दो राज्यों के बीच स्थापित प्रथा से अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों का निर्माण हो सकता है। क्या वह प्रथा जिसे दो राज्य पारस्परिक संबंधों में आबद्धकर मानते हैं, अन्तरराष्ट्रीय रूढ़ि विधि का स्वरूप प्राप्त करके दोनों राज्यों के अधिकारों और दायित्वों को लागू होगी। सामान्यतया दो राज्यों के संबंध संधि के नियमों से शासित होते हैं।

* * * *

भारत के गोवा, दमण, दीव के प्रदेश पुर्तगाली अधिकार में थे। इनमें दादर और नागर हवेली की दो ऐसी बस्तियां थीं जो भारतीय सीमा से घिरी हुई थीं। दमण से इन बस्तियों में व्यक्तियों, सामग्रियों तथा सैनिकों के निर्बाध पारगमन के संबंन्ध में पुर्तगाल तथा भारत के बीच विवाद उत्पन्न हुआ था। 1953 में इन बस्तियों में स्वतंत्रता आंदोलन प्रारंभ हो जाने पर भारत ने पुर्तगाल के पारगमन पर निर्बंधन लगा दिए थे। अतः पुर्तगाल ने भारत की इस कार्यवाही के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में मामला प्रस्तुत किया। पुर्तगाल का तर्क था कि भारत ने पारगमन पर निर्बंधन लगा कर पुर्तगाल द्वारा लंबे समय से प्रयुक्त पारगमन के अधिकार का हनन किया है जो अंतरराष्ट्रीय विधि के विरुद्ध है।

पुर्तगाल का कहना है कि 1779 की पूना संधि और मराठा राजाओं द्वारा जारी की गई 1783 और 1785 की सनदों द्वारा उन्हें उन बस्तियों पर पारगमन के अधिकार के साथ प्रभुत्व प्रदान किया गया था। भारत ने इस तर्क पर अनेक आधारों पर आक्षेप किए और कहा कि 1779 की संधि विधिमान्य ढंग से की गई संधि नहीं थी और वह कभी भी मराठों पर आबद्धकर नहीं थी। न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा कि यह जांचने की आवश्यकता नहीं है कि संधि उस समय भारत में प्रचलित पद्धतियों और प्रक्रियाओं के बनसार की गई थी या नहीं। मराठा 1779 की संधि को विधिमान्य

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और अपने पर आबद्धकर मानते थे क्योंकि उन्होंने कभी भी उसकी वैधता अथवा आबद्धकर प्रकृति पर संदेह नहीं किया।

इस प्रश्न के संबंध में भारत ने दूसरा तर्क यह दिया कि 1779 की संधि तथा 1783 और 1785 की सनदें पुर्तगाल को उक्त ग्रामों पर प्रभुत्व प्रदान नहीं करतीं। उसे इन ग्रामों के संबंध में केवल 12,000 रुपये वार्षिक का राजस्व अनुदान प्रदान किया गया था जिसे जागीर का सरंजाम कहा जाता था। जबकि पुर्तगाल का कहना था कि संधि के अनुच्छेद 17 द्वारा उसे प्रभुत्व प्रदान किया गया था।

न्यायालय ने उक्त अनुच्छेद के विभिन्न पाठों का परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला कि उनमें प्रयुक्त भाषा से यह आशयित नहीं है कि पुर्तगाल को उन ग्रामों का प्रभुत्व अंतरित कर दिया गया था। क्योंकि मराठों द्वारा की गई ऐसी बहुत-सी संधियां हैं जिनसे यह दर्शित होता है कि जहां प्रभुत्व का अंतरण आशयित था वहां समुचित तथा पर्याप्त अभिव्यक्तियों जैसे "शास्वतिक" अध्यर्पण या "शाश्वत प्रभुत्व' का प्रयोग किया गया है। उक्त दोनों सनदों तथा सम्बन्धित सुसंगत दस्तावेजों में प्रयुक्त अभिव्यक्तियों से यह स्थापित होता है कि पुर्तगाल को केवल 12,000 रुपये वार्षिक का राजस्व अनुदान दिया गया था जिसे जागीर या सरंजाम कहा जाता था। भारत में अनुदान प्रदान करने का यह सामान्य तरीका था। न्यायालय के समक्ष ऐसा एक भी उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया गया जिसमें इस प्रकार के अनुदान का अर्थ यह लगाया गया हो कि वह प्रभुत्व के रूप में राज्यक्षेत्र का अभ्यर्पण है।

इस संबंध में पुर्तगाल ने दूसरा तर्क यह दिया कि उसे उक्त ग्रामों में विद्रोह या बगावत समाप्त करने के लिए प्राधिकार दिया गया था और इससे यह उपदर्शित होता है कि उसे उन ग्रामों का प्रभुत्व प्रदान किया गया था। न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा कि यह निष्कर्ष ठोस तथ्यों पर आधारित नहीं है। जिस संदर्भ में यह प्राधिकार प्रदान किया गया था उससे यह प्रतीत होता है कि इसका आशय पुर्तगालियों को मराठा शासकों की ओर से विद्रोह या बगावत समाप्त करने का प्राधिकार प्रदान करना था। मराठा काल में अनुदान में समाविष्ट ग्रामों तथा तटीय दमण और ग्रामों के मध्यवर्ती राज्यक्षेत्र पर मराठों का प्रभुत्व था। अतः यह प्रश्न ही नहीं उठता कि पुर्तगाल का उक्त ग्रामों पर प्रभुत्व था या उन ग्रामों पर प्रभुत्व के प्रयोग के लिए पारगमन का अधिकार था। उन्हें केवल राजस्व संग्रह करने तथा मराठों के लिए अधिकार प्रयोग करने के लिए उक्त ग्रामों में जाने के लिए मार्ग प्रदान किया गया था

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिसे प्रभुत्व के प्रयोग के लिए पारगमन के अधिकार के तुल्य नहीं माना जा सकता।

मराठों के पश्चात् ब्रिटिश प्रभुत्व की स्थापना से परिस्थितियों में परिवर्तन आया। अंग्रेजों ने यह पाया कि पुर्तगालियों का उक्त ग्रामों पर अधिभोग है और वे उन पर पूर्ण एवं अनन्य प्रशासनिक प्राधिकारों का प्रयोग कर रहे हैं। उन्होंने परिस्थितियों को स्वीकार करते हुए उक्त ग्रामों पर पुर्तगाल के अधिभोग एवं अनन्य प्राधिकार के प्रयोग में कोई हस्तक्षेप नहीं किया और इस प्रकार पुर्तगाली यह मानने लगे कि उनका उन ग्रामों पर प्रभुत्व है। अंग्रेजों ने मराठों के उत्तराधिकारियों के रूप में न तो स्वयं ही प्रभुत्व का दावा किया और न ही पुर्तगाल के प्रभुत्व को स्पष्ट मान्यता प्रदान की और ही न उक्त ग्रामों पर उनके अनन्य प्राधिकार को ही कभी चुनौती दी। इस प्रकार तथ्यतः और विवक्षा द्वारा अंग्रेजों ने उन ग्रामों पर पुर्तगालियों के प्रभुत्व को मान्यता प्रदान की और स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने भी मूक भाव से उसे मान्यता प्रदान की। परिणामस्वरूप मराठों के अनुदान में समादिष्ट ग्रामों ने भारतीय क्षेत्र के भीतर पुर्तगाली बस्तियों का रूप धारण कर लिया।

ब्रिटिशकाल तथा उसके बाद राज्यक्षेत्रीय प्रभुत्व तथा पुर्तगाल के बीच उक्त बस्तियों में पारगमन के संबंध में प्रथा विकसित हो गई जिसका अवलंब लेकर पुर्तगाल ने पारगमन के अधिकार की मांग की है। भारत ने इस तर्क का विरोध इस आधार पर किया कि केवल दो राज्यों के बीच कोई स्थानीय रूढ़ि स्थापित नहीं हो सकती। न्यायालय ने भारत के तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा कि यह स्वीकार करने में कठिनाई प्रतीत होती है कि काफी समय से अपनाई गई प्रथा के आधार पर स्थापित स्थानीय रूढ़ि के लिए राज्यों की संख्या दो से अधिक क्यों होनी चाहिए। न्यायालय को ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता कि दो राज्यों के बीच लंबी अवधि से निरंतर लागू प्रथा, जिसे वे अपने संबंधों का विनियमन करने वाली मानते रहे हैं, उन राज्यों के बीच पारस्परिक अधिकार और दायित्व स्थापित करने का आधार क्यों नहीं हो सकता।

यह दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं कि प्राइवेट व्यक्तियों तथा सिविल पदाधिकारियों का पारगमन भी निर्बंधनों के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के अन्य निर्बंधन के अधीन नहीं था।

आयुधों तथा गोला-बारूद को छोड़कर सभी सामान्य सामग्रियों तथा व्यापारिक वस्तुओं का दमण तथा अन्य बस्तियों के बीच निर्बाध रूप से पारगमन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया जाता था। इसके लिए अनुज्ञा या प्राधिकार की आवश्यकता नहीं होती थी। किंतु विशिष्ट समयों में यथा युद्धकाल में उनका पारगमन सुरक्षा अथवा राजस्व की दृष्टि से आवश्यक विनियमों और नियंत्रणों के अध्यधीन होता था। किंतु उनकी सीमा और उद्देश्य स्पष्ट और परिनिश्चित होता था।

इन तथ्यों के आधार पर न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि ब्रिटिशकाल में तथा उसके बाद दमण तथा अन्य बस्तियों के बीच प्राइवेट व्यक्तियों, सिविल पदाधिकारियों तथा सामान्य सामग्रियों के निर्बाध पारगमन की सतत और एकरूपात्मक प्रथा विद्यमान थी। यह प्रथा सवा सौ वर्षों से अधिक समय से मध्यवर्ती राज्यक्षेत्र के शासन में हुए परिवर्तन से, जो कि भारत की स्वतंत्रता के बाद हुआ, प्रभावित हुए बिना चली आ रही है, अतः यह स्पष्ट है कि उक्त प्रथा को पक्षकारों ने विधि के रूप में स्वीकार कर लिया था और उससे (पारगमन के अधिकार) संबंधित दायित्व का जन्म हुआ है। न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 1954 में पुर्तगाल को तटीय दमण और उक्त बस्तियों के बीच तथा उन बस्तियों के मध्यवर्ती भारतीय क्षेत्र पर से पारगमन का अधिकार था जो प्राइवेट व्यक्तियों, सिविल पदाधिकारियों तथा सामान्य सामग्रियों के पारगमन तक सीमित था।

सन् 1878 तक ब्रिटेन और पुर्तगाल के बीच सशस्त्र सेनाओं तथा सशस्त्र पुलिस का पारगमन पारस्परिकता पर आधारित था। दमण और उक्त बस्तियों के बीच पारगमन के सम्बन्ध में कोई विभेद नहीं किया जाता था। ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि दमण और बस्तियों के बीच तथा अन्य बस्तियों के बीच सशस्त्र बलों या सशस्त्र पुलिस का पारगमन अनुज्ञात किया जाता था या उसका अधिकार के रूप में प्रयोग किया जाता था।

ब्रिटेन और पुर्तगाल के बीच हुई ट्रीटी ऑफ कामर्स एंड एक्सट्राडीशन, 1878 के अनुच्छेद 18 के पैरा 3 में यह उपबन्धित है कि दोनों सरकारों के सशस्त्र बल एक-दूसरे के भारतीय अधिक्षेत्र में प्रवेश नहीं करेंगे किन्तु यह बात पूर्व संधियों में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों अथवा इस सन्धि के अधीन पारस्परिक सहायता करने के लिए अथवा प्रवेश चाहने वाले पक्षकार द्वारा किए गए औपचारिक अनुरोध के परिणामस्वरूप प्रवेश करने पर लागू नहीं होगी। यह उपबंध दमण और अन्य बस्तियों के बीच पारगमन पर लागू था।

पुर्तगाल ने सन् 1880-1889 के दौरान ऐसे तेईस अवसरों का हवाला दिया है जब कि पुर्तगाली सशस्त्र बलों ने दमण और बस्तियों के बीच ब्रिटिश राज्यक्षेत्र पर अनुज्ञा लिए बिना पारगमन किया था। किन्तु भारत ने 1890 की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अध्यापत्ति का दृष्टान्त दिया है जिसके फलस्वरूप पुर्तगाल सरकार ने आश्वासन दिया था कि सशस्त्र बलों का पारगमन पूर्व औपचारिक प्रार्थना पर ही किया जा सकता है। इसकी पुष्टि 1913 के करार में की गई थी।

1940 के करार के अनुसार पूर्व सूचना के बिना सशस्त्र पुलिस के केवल दस व्यक्ति ही पारगमन कर सकते थे और इसकी सूचना बाद में 24 घंटे के अन्दर दी जानी होती थी और यदि सशस्त्र बल के दस से अधिक व्यक्तियों का पारगमन करना होता था तो पूर्व सूचना देकर मंजूरी लेना आवश्यक था।

ब्रिटिशकाल के बाद भारत के स्वतंत्र होने पर भी इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इससे यह स्पष्ट है कि ब्रिटिशकाल या उसके बाद पुर्तगाली सशस्त्र बल और सशस्त्र पुलिस दमण और अन्य बस्तियों के बीच अधिकार के रूप में पारगमन नहीं करती थी तथा 1878 के बाद इस प्रकार का पारगमन ब्रिटिश और बाद में भारत से पूर्व प्राधिकार प्राप्त करके ही किया जा सकता था और ऐसा प्राधिकार या तो पहले ही तय किए गए पारस्परिक ठहराव के अधीन दिया जाता था या किसी विशिष्ट मामले में प्रदान किया जाता था। इस प्रकार पारगमन के लिए पूर्व प्राधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता अधिकार के रूप में पारगमन का प्रतिवाद है। इस प्रथा से यह ज्ञात होता है कि यह राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्वसंपन्नता पर निर्भर करता था कि वह अनुज्ञा वापस ले ले या अनुज्ञा देने से इन्कार कर दे। यह दलील दी गई थी कि अनुज्ञा सदा दी जाती रही है किन्तु इससे विधिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि अभिलेख पर ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि ब्रिटेन या भारत के लिए ऐसी अनुज्ञा देना आवश्यक था। अतः न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि सशस्त्र बलों, सशस्त्र पुलिस तथा आयुधों और गोला-बारूद के पारगमन के संबंध में पुर्तगाल को कोई अधिकार नहीं था।

पुर्तगाल ने यह शिकायत की है कि पारगमन के उसके अधिकार पर अक्तूबर, 1853 और जुलाई, 1854 के बीच भारत द्वारा काफी निर्बन्धन लगाए गए थे लेकिन उसने यह नहीं कहा है कि भारत ने उस अवधि के दौरान पुर्तगाल के पारगमन के अधिकार से उत्पन्न होने वाले अपने दायित्व के विपरीत कार्य किया है। किन्तु पुर्तगाल ने यह शिकायत की है कि भारत ने यूरोपीय मूल के पुर्तगाली नागरिकों, सिविल पदाधिकारियों या पुर्तगाल सरकार की सेवा में भारतीय मूल के पुर्तगालियों तथा दमण के राज्यपाल द्वारा नागर हवेली और दादरा भेजे जाने वाले प्रतिनिधिमंडल का पारगमन अस्वीकार कर दिया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

21 और 22 जुलाई को दादरा में जो घटनाएं हुई उनसे उस बस्ती से पुर्तगाली प्राधिकार को हटा दिया गया। इससे आसपास के भारतीय राज्यक्षेत्र में तनाव पैदा हो गया। इसके बाद भारत ने सभी पारगमन रोक दिया।

पुर्तगाली सरकार ने दमण के राज्यपाल के प्रतिनिधिमंडल के नागर हवेली जाने और वहां की स्थिति की जांच करने के लिए अनुज्ञा चाही जिसे भारत सरकार ने अस्वीकार कर दिया। भारत सरकार ने अपने उत्तर में कहा कि यदि पुर्तगाली अधिकारियों को भारतीय राज्यक्षेत्र को पार करने की अनुज्ञा दी जाती है तो इससे भारतीय राज्यक्षेत्र में तनाव बढ़ता और पुर्तगाली अधिकारियों की दमनकारी कार्यवाहियों के फलस्वरूप भारतीयों में उत्पन्न प्रतिक्रिया के कारण अवांछनीय परिणाम हो सकते थे।

मध्यवर्ती भारतीय राज्यक्षेत्र में उस समय जो तनाव फैला हुआ था उसको देखते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में असमर्थता प्रकट की कि भारत ने पारगमन की अनुज्ञा न देकर अपने दायित्वों का उल्लंघन किया है। पुर्तगाल का पारगमन के अधिकार का दावा इस बात पर निर्भर करता है कि मध्यवर्ती राज्यक्षेत्र पर भारतीय प्रभुत्व उसे पूर्ण रूप से मान्यता प्रदान करता है या नहीं और पुर्तगाल को इससे कोई उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है। न्यायालय का मत है कि उन मामलों में भारत द्वारा पारगमन की अस्वीकृति इन परिस्थितियों में पुर्तगाल के पारगमन के अधिकार को विनियमित और नियंत्रित करने की उसकी शक्ति के अन्तर्गत है।

* * * *

टिप्पणी:—ऐसे क्षेत्र में जहां राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का विनियमन निर्धारित नियमों से नहीं होता बल्कि स्थानीय प्रथा से होता है वहां वह प्रथा उन राज्यों के बीच पारस्परिक अधिकार और दायित्व स्थापित करने का आधार बन जाती है। अतः दो राज्यों के बीच लम्बी अवधि से निरन्तर चली आ रही प्रथा से, जिसे वे दोनों राज्य अपने सम्बधों का विनियमन करने वाली मानते रहे हैं, उन राज्यों के बीच पारस्परिक अधिकार और दायित्व स्थापित हो जाते हैं। ऐसी प्रथा सामान्य नियमों पर अभिभावी होगी। अतः दो राज्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों से विकसित प्रथा जब उनके द्वारा आबद्धकर स्वीकार कर ली जाती है तब वह अन्तरराष्ट्रीय रूढ़िजन्य विधि का स्वरूप प्राप्त कर लेती है। अतः क्षेत्रीय अन्तरराष्ट्रीय रूढ़िजन्य विधि के सिद्धान्त दो या अधिक राज्यों के बीच स्थापित हो सकते हैं और वे उनके सम्बन्धों को लागू हो सकते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

2. अन्तरराष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि का सम्बन्ध

एक राज्य की आन्तरिक नीतियां अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों से अर्थात् अन्तरराष्ट्रीय राजनीति से अप्रभावित नहीं रह सकतीं। इसी प्रकार उसी अन्तरराष्ट्रीय नीतियों से उसकी आन्तरिक नीतियां प्रभावित होती हैं। अतः दोनों का अन्योनाश्रित सम्बन्ध है और वे एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र नहीं होती। दोनों ही विधियों का उद्देश्य समाज की सुव्यवस्था को बनाए रखना है। इस उद्देश्य की पूर्ति में राज्य की राष्ट्रीय विधि प्रत्यक्ष रूप से और अन्तरराष्ट्रीय विधि अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेती है। मान लीजिए यदि एक राज्य अन्तरराष्ट्रीय विधि की उपेक्षा करता है तो उससे अन्तरराष्ट्रीय प्रभाव उत्पन्न होते हैं और उस राज्य का समाज उन प्रभावों से अछूता रह जाए यह बात व्यवहार में सही प्रतीत नहीं होती। फिर भी कभी-कभी ऐसी परिस्थितियां आ जाती हैं यथा किसी प्रश्न के सम्बन्ध में दोनों के उपबन्ध परस्पर विरोधी हैं तो न्यायालयों के समक्ष यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि किस विधि के उपबन्धों को लागू किया जाए। सामान्यतया राष्ट्रीय न्यायालय यह जानते हुए भी कि वे अन्तरराष्ट्रीय विधि की उपेक्षा कर रहे हैं राष्ट्रीय विधि के उपबन्धों के आधार पर निर्णय देते हैं। किन्तु जब यही प्रश्न अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय में उठाया जाता है तो राज्य की राष्ट्रीय विधि के उपबंधों के आधार पर उसे अन्तरराष्ट्रीय दायित्वों की उपेक्षा करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाएगा और न्यायालय अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार ही निर्णय देगा। अतः परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अन्तरराष्ट्रीय विधि-शास्त्रियों ने इन दोनों के सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए दो भिन्न-भिन्न विचार-धाराओं का प्रतिपादन किया है जिन्हें एकत्ववाद और द्वैतवाद कहा जाता है।

एकत्ववाद विचारधारा के मानने वालों में ड्यूगिट, केलसन, राइट आदि के नाम आते हैं। उनका मत है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि दोनों ही संपूर्ण विधिशास्त्रीय ज्ञान के विषय हैं और उसी के दो रूप हैं। यथा सुराज का मत था कि दोनों विधियां सद्विवेक और न्याय पर आधारित हैं अतः उसने विधि की आन्तरिक रचना के वैज्ञानिक विश्लेषण पर जोर दिया है और उसने संपूर्ण विधि को एक ही इकाई माना है, चाहे उसके नियम राज्यों, व्यक्तियों या दूसरी इकाइयों पर अलग-अलग क्यों न लागू होते हों। दोनों का उद्देश्य व्यक्तियों के आचरण को नियंत्रित कर सामाजिक सुव्यवस्था स्थापित करना है। देखने में अन्तरराष्ट्रीय विधि राज्यों के आचरणों को नियंत्रित करती है

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किंतु यथार्थतः राज्य व्यक्तियों के समूहों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतः वह परोक्ष रूप में वहां रहने वालों और उसे संचालित करने वालों के आचरण को नियंत्रित करती है। यह उन लोगों की विचारधारा से अधिक सम्मत है जो अन्तरराष्ट्रीय विधि को यथार्थ विधि मानते हैं।

तवाद विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक ट्रीपल और ऐंजीलाटी हैं। इसका विकास राज्य की प्रभुसत्तात्मकता और हीगल की राज्यों की इच्छा की विचार-धारा से हुआ है। इनके अनुसार अन्तरराष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि दो अलग-अलग तथा एक दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र पद्धतियां हैं। ट्रीपल ने दोनों में निम्नलिखित अन्तर बताए हैं--

1. **विषय संबंधी** :—अन्तरराष्ट्रीय विधि का विषय राज्य हैं जबकि राष्ट्रीय विधि का विषय व्यक्ति होते हैं।

2. **स्रोत संबंधी** :—राष्ट्रीय विधि का स्रोत प्रभुत्वसम्पन्न राज्य की इच्छा होती है जो विधायिका द्वारा निर्मित विधि में अभिव्यक्त होती है अथवा राज्य के अंतर्गत विकसित रूढ़ियां होती हैं। राष्ट्रीय विधि राज्य के नागरिकों तथा राज्य और नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों को नियंत्रित करती है। इसके विपरीत अन्तरराष्ट्रीय विधि के स्रोत राज्यों के पारस्परिक व्यवहार से विकसित रूढ़ियां तथा संधियां हैं।

ऐंजीलाटी ने एक भिन्न आधार पर दोनों में अन्तर स्थापित किया है। उसका कथन है कि राष्ट्रीय विधि का पालन कराए जाने के पीछे राज्य की शक्ति निहित होती है जबकि अन्तरराष्ट्रीय विधि का पालन "पैक्टा सण्ट सर्वण्डा" अर्थात् "राज्यों के बीच हुए करारों का पालन किया जाएगा" के सिद्धान्त पर आधारित है अर्थात् उनका पालन कराने के लिए कोई शक्ति नहीं है; वह केवल नैतिकता पर आधारित है। अतः दोनों ही भिन्न-भिन्न प्रणालियां हैं।

इस सम्बन्ध में राज्यों के व्यवहार से यह प्रतीत होता है कि दोनों विधियों के सम्बन्धों को पूर्ण रूप से स्थापित करने के लिए कोई भी विचारधारा पूर्ण नहीं। कहीं पर किसी एक विचारधारा को किसी सीमा तक मान्यता प्राप्त होती है तो कहीं दूसरी को, किन्तु अधिकतर दोनों का समन्वित रूप ही देखने को मिलता है। उदाहरणस्वरूप ब्रिटेन, अमरीका तथा भारत में कुछ सीमा तक एकत्ववादी विचारधारा को मान्यता प्राप्त है और अन्तरराष्ट्रीय विधि को राज्य की विधि का अंग या उसमें समाहित माना जाता है किन्तु इसके साथ ही अनेकानेक अपवाद

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी मिलते हैं जो द्वतवादी विचारधारा का पोषण करते हैं। इसी प्रकार रूस तथा अन्य समाजवादी देशों में, जहां राज्य प्रभुसत्ता को प्रधानता दी जाती है, द्वैतवादी विचारधारा की प्रधानता है किन्तु वहां उसके अपवाद हैं जो एकत्ववाद के पोषक हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में अन्तरराष्ट्रीय विधि को राष्ट्रीय क्षेत्र में लागू किए जाने के सम्बन्ध में कुछ विशेष विचारधाराओं का जन्म हुआ है जिनमें "रूपान्तरणवादी" तथा "प्रदायनवादी" मुख्य हैं। रूपान्तरणवादी विचारधारा के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों का राष्ट्रीय विधि में रूपान्तरण किए जाने के बाद ही राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा उनको किसी विवाद में लागू किया जाता है। प्रदायनवादी विचारकों का मत है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के मौलिक नियमों द्वारा प्रत्येक राज्य के संविधान को यह अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि वह स्वयं निर्धारित करे कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम राज्यों में किस प्रकार लागू किए जाएंगे तथा इसके लिए किसी प्रकार की विधायी या अन्य प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होती।

आगे दिए हुए कुछ निर्णयों में राज्यों द्वारा अन्तरराष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के सम्बन्धों के बारे में अपनाए गए दृष्टिकोणों का ज्ञान होता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चुंग ची चियुंग बनाम किंग
(Chung Chi Cheung *V.* The King)
(1939) ए० सी० 160.

यह मामला किसी देश के राज्यक्षेत्रीय समुद्र में किसी विदेशी पोत पर किए गए अपराध के लिए उस देश के न्यायालय को अपराधी को दंडित करने की अधिकारिता से संबंधित है। इसमें इस सिद्धांत पर भी विचार किया गया है कि क्या विदेशी समुद्र में कोई पोत उस राज्य का क्षेत्र होता है जिस पर उसका ध्वज फहरा रहा है ? इसमें यह भी विचार किया गया है कि क्या विदेश में स्थित स्थानीय अधिकारिता के अधिकार अपने कर्मचारियों के लिए प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्तियों का अधित्यजन कर सकता है जब कि उसने स्वयं अपराधी को स्थानीय पुलिस के हवाले किया हो तथा उस राज्य के शासक ने न्यायालय के समक्ष अभियोजन सिद्ध करने में सहयोग दिया हो और उन्मुक्ति की मांग न की हो ?

* * * *

चुंग ची चियुंग नामक एक ब्रिटिश प्रजाजन चीनी युद्ध पोत चियुंग किंग में केबिन ब्वाय था। 11 जनवरी, 1937 को जब वह पोत हांग-कांग के राज्य क्षेत्रीय समुद्र में था तब उसने जहाज के कप्तान की (वह भी ब्रिटिश प्रजाजन था) गोली मार कर हत्या कर दी तथा पोत के कार्यकारी मुख्य अधिकारी को भी गोली से घायल कर दिया और अपने आप को भी घायल कर लिया। जैसे ही कार्यकारी मुख्य अधिकारी घायल हुआ उसने तुरंत पोत को हांग-कांग की ओर बढ़ने और अपराधी के गिरफ्तार करने के लिए हांग-कांग की पुलिस की सहायता प्राप्त करने का आदेश दिया। पोत के हांग-कांग पहुंचने पर पुलिस ने कार्यकारी मुख्य अधिकारी तथा अपराधी को चिकित्सालय में भर्ती करा दिया। 25 फरवरी, 1937 को चीन सरकार ने अपराधी के प्रत्यर्पण के लिए कार्यवाहियां आरम्भ कर दीं। किन्तु वे कार्यवाहियां असफल हो गईं क्योंकि चुंग ची चियुंग ब्रिटेन का राष्ट्रिक पाया गया था। अतः उस पर हांग-कांग के न्यायालय में हत्या का अभियोग चलाया गया। सिद्धदोष ठहराए जाने पर उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया। विचारण के समय चीन की सरकार की सेवा में के चार व्यक्तियों ने अभियोजन पक्ष की सहायता करते हुए ब्रिटिश न्यायालय में साक्ष्य दिया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपीलार्थी ने न्यायालय की अधिकारिता को इस आधार पर चुनौती दी कि अपराध चीनी पोत पर किया गया था और वह पोत चीन का तैरता हुआ राज्य क्षेत्र था और चीन सरकार ने अपनी प्रभुत्वसम्पन्न उन्मुक्तियों का अधित्यजन नहीं किया था। अतः वह पोत के कर्मचारी के रूप में उन्मुक्तियों का हकदार है क्योंकि उन उन्मुक्तियों का अधित्यजन उच्चाधिकार के बिना नहीं किया जा सकता था। अतः कार्यकारी मुख्य अधिकारी द्वारा उनका अधित्यजन अवैध था तथा हांग-कांग के न्यायालय को उसके मामले में अधिकारिता नहीं थी।

यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि जहां तक ब्रिटेन के न्यायालयों का सम्बन्ध है उनके लिए अन्तरराष्ट्रीय विधि की कोई वैधता नहीं है जब तक कि उसके सिद्धान्त ब्रिटेन की राष्ट्रीय विधि में स्वीकार और समाविष्ट नहीं कर लिए जाते हैं। ऐसी कोई बाह्य शक्ति नहीं है जो अपने नियमों को ब्रिटेन पर अधिरोपित करे। न्यायालय राष्ट्रों द्वारा अपने पारस्परिक सम्बन्धों के लिए स्थापित नियमों को स्वीकार करते हैं और जब तत्सम्बन्धी कोई प्रश्न उनके समक्ष उपस्थित होता है तो वे उसके नियमों को अभिनिश्चित करने के बाद उसको अपनी राष्ट्रीय विधि में समाविष्ट हुआ मान लेते हैं अर्थात् जब वे यह निश्चित कर लेते हैं कि नियम क्या हैं तब वे उसे अपनी राष्ट्रीय विधि में अपना लिया गया मान कर इस प्रकार लागू करते हैं जैसे राज्य की राष्ट्रीय विधि का ही एक भाग हो किन्तु वे अधिनियमित नियमों या न्यायालय द्वारा निर्धारित नियमों से असंगत नहीं होने चाहिएं।

किसी देश का सार्वजनिक पोत दूसरे राज्य की जल सीमा में अपने देश का क्षेत्र नहीं होता। स्थानीय न्यायालय अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के अनुसार उस पोत और उसके कर्मीदल को कुछ उन्मुक्तियां प्रदान करते हैं जिनमें से कुछ सुस्थापित हैं और कुछ विवादग्रस्त हैं। ये उन्मुक्तियां राज्यक्षेत्राधिमुक्तिता पर आधारित न होकर राष्ट्रीय विधि की विवक्षा पर निर्भर करती हैं। वे सशर्त होती हैं और सार्वजनिक पोत का स्वामी देश उनका अधित्यजन कर सकता है। न्यायालय ने ओपेनहाइम के राज्यक्षेत्रीयता के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया जो सार्वजनिक पोत को ध्वजराष्ट्र का तैरता हुआ राज्यक्षेत्र मानता है। न्यायालय के अनुसार यह केवल एक विधिक कल्पना है। पोत के नाविकों को पारस्परिकता के आधार पर उन्मुक्तियां प्रदान की जा सकती हैं। क्या यह सोचा जा सकता है कि देश का एक निवासी किनारे पर खड़े जहाज पर जा कर चोरी करे और पकड़े जाने पर स्थानीय न्यायालय को उस पर अभियोग चलाने की अधिकारिता न हो।

स्थानीय न्यायालय द्वारा मान्यताप्राप्त उन्मुक्तियां क्षेत्रीय अधिकारिता के स्थानीय प्रभुत्वसम्पन्न द्वारा अधित्यजित की जा सकती हैं। इस मामले में स्थानीय

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रभुत्व सम्पन्न चीन सरकार ने मामले की रिपोर्ट हांग-कांग पुलिस में देकर स्पष्ट रूप से ब्रिटिश सरकार को अधिकारिता के प्रयोग के लिए सहमति प्रदान की है तथा कार्यवाही की पूरी जानकारी होने के बावजूद उसने उन्मुक्ति की अपनी अधिकारिता का दावा नहीं किया बल्कि अपनी सेवा के चार सदस्यों को अभियोजकों के पक्ष में साक्ष्य देने के लिए प्रस्तुत किया जिससे यह स्पष्ट होता है कि चीन सरकार ने ब्रिटिश अधिकारिता को सहमति प्रदान कर दी है। अतः हांग-कांग के न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त थी।

* * * *

टिप्पणी :—इस निर्णय में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि ब्रिटिश न्यायालय के लिए अन्तरराष्ट्रीय विधि की कोई बैधता नहीं है जब तक कि उसके नियम राष्ट्रीय विधि में अधिनियम या न्यायालय के निर्णय द्वारा अपना नहीं लिए जाते हैं। अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों को इस प्रकार राष्ट्रीय विधि में अपना लिए जाने पर ही उन्हें न्यायालयों द्वारा लागू किया जाता है।

राजनैतिक उन्मुक्तियों और विशेषाधिकारों के अधित्यजन के सम्बन्ध में न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि उनका अधित्यजन क्षेत्रीय अधिकारिता के अधिकारियों द्वारा किया जा सकता है।

खुले समुद्र में पोत के ध्वज-राष्ट्र का तैरता क्षेत्र होने के सिद्धांत को **आर बनाम एण्डरसन**[1] तथा **एस० एस० लोटस**[2] में स्वीकार किया गया था तथा 1958 के जनेवा अभिसमय के अनुच्छेद 8 और 9 में अपनाया गया है। किन्तु, **आर० बनाम गोडान फिन्लोसन**[3], तथा **कुर्नाड एस० एस० कम्पनी बनाम मिलान**[4], के मामलों में इस सिद्धान्त की आलोचना की गई थी।

1. (1868) 11 कॉक्स सी० सी० 198.
2. पी० सी० आई० जे० (1927), सीरीज, ए, संख्या 10 (2 डब्ल्यू० सी० आर० 20).
3. (1941) 1 के० बी० 171.
4. (1923) 262 यू० एस० 100.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आर० बनाम केन
(R. *V.* Keyn)

कोर्ट ऑफ क्राउन केसिज रिज़र्व्ड (1876) 2 एक्स० डी० 63.

यह निर्णय अन्तरराष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि के सम्बन्धों के बारे में तथा राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा अन्तरराष्ट्रीय विधि को अपने निर्णय में प्रवर्तित किए जाने के सम्बन्ध में ब्रिटिश प्रथा का उत्कृष्ठ प्रमाण है।

* * * *

फरवरी, 1876 को ब्रिटिश स्टीमर स्ट्रथक्लाइड, जब डोवर पावर हेड से 1.9/10 मील दूर तथा डोवर बीच से लगभग 2.1/7 मील दूर था, तब उसकी एक जर्मन जलयान फ्रेन्कोनिया से टक्कर हो गई। इस टक्कर में ब्रिटिश स्टीमर तथा उसके साथ कई अन्य लोग डूब गए। जब फ्रेन्कोनिया ब्रिटिश पत्तन पर पहुंचा तो उसके मास्टर फडीनेण्डकेन को, जो जर्मन था बंदी बना लिया गया और इस टक्कर के लिए दोषी पाए जाने पर उस पर हत्या का अभियोग चलाया गया। केन की ओर से अभियोजन की वैधता को चुनौती देते हुए यह दलील दी गई कि दोषी एक विदेशी है और वह विदेशी जलयान का संचालन कर रहा था तथा अपराध खुले समुद्र में हुआ था अतः दोषी अंग्रेजी न्यायालय की अधिकारिता के अधीन नहीं है? अभियोजकों का तर्क यह था कि मूल रूप से अभियोजन का अधिकार नावधिकरण को था और 4 और 5 विलियम 4 सी० 36 तथा 7 और 8 विक्टोरिया सीर द्वारा यह अधिकारिता केंद्रीय दांडिक न्यायालय में निहित कर दी गई थी जिससे विदेशियों द्वारा अंग्रेजी तट से तीन मील की सीमा के भीतर पोत पर किए गए अपराध भी शामिल हो गए हैं। न्यायालय ने मामले को क्राउन केसिज रिज़र्व्ड न्यायालय के विचारण के लिए भेज दिया। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इंग्लैण्ड की विधि के अंतर्गत ऐसी अधिकारिता न्यायालय में विद्यमान नहीं है अतः इस अभियोजन को स्वीकार नहीं किया जा सकता। मुख्य न्यायाधिपति कॉकबर्न के मतानुसार—

कोई भी विदेशी राज्यक्षेत्र से बाहर किए गए अपराध के लिए राष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता के अधीन नहीं लाया जा सकता है जब तक कि ऐसा उपबन्ध राष्ट्रीय विधि में नहीं कर दिया जाता है। अन्तरराष्ट्रीय विधि का सामान्य नियम है कि खुले समुद्र में पोत अपनी राष्ट्रीयता का धारक होता है और अपने देश की विधि से शासित होता है क्योंकि उसे अपने राज्य

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का तैरता हुआ क्षेत्र माना जाता है। अतः उस पोत पर स्थित सभी व्यक्ति, चाहे वे विदेशी ही क्यों न हों, उस देश की विधि से शासित होते हैं जिसका वह पोत है। वे उस पर किए गए अपराधों के लिए उसी प्रकार दायित्वाधीन होते हैं जिस प्रकार वे उस देश की भूमि सीमा पर किए गए अपराधों के लिए होते हैं और उसके लिए अभियोजित और दंडित किए जा सकते हैं। किंतु जब वह पोत विदेशी राज्य के पत्तन या क्षेत्रीय जल में होता है तब वह उस राज्य की स्थानीय विधि के अधीन आ जाता है। ये अन्तरराष्ट्रीय विधि के सामान्य नियम हैं जिन्हें हमारे राज्य की राष्ट्रीय विधि में अंगीकृत करके उसका अंग बना लिया गया है।

28 हेनरी VIII सी 15 से पूर्व नौसेनापति को इंग्लैंड के तट से तीन मील की समुद्री सीमा के भीतर या बाहर विदेशियों द्वारा विदेशी पोतों पर किए गए अपराधों का विचारण करने की अधिकारिता नहीं थी और उसके बाद के परिनियमों द्वारा केवल वही अधिकारिता नौसेनापति द्वारा अन्य न्यायालयों को अन्तरित की गई थी जो उसमें निहित थी। न्यायाधिपति कैली तथा फिलीमोर ने भी कुछ भिन्न आधारों पर यही निष्कर्ष निकाला है। उनका मत है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत राज्यों को अपने तट से तीन मील की सीमा के भीतर केवल कुछ निश्चित प्रयोजनों यथा तटवर्ती सीमा की प्रतिरक्षा तथा सुरक्षा के लिए, अधिकार प्राप्त होते हैं।

सुस्पष्ट अधिनियम के अभाव में साधारण नियम के रूप में किसी व्यक्ति को इंग्लैंड की दंड विधि के अधीन नहीं लाया जा सकता जब तक कि वह अपराध ब्रिटिश राज्यक्षेत्र के अंतर्गत या ब्रिटिश पोत पर न किया गया हो। अतः प्रस्तुत मामले में अपराध ब्रिटिश न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत नहीं आता जब तक कि यह नहीं मान लिया जाता कि वह ब्रिटिश राज्यक्षेत्र की तीन मील की सीमा के अंतर्गत किया गया है या ब्रिटिश पोत पर लोगों के मारे जाने के कारण उसका ब्रिटिश पोत पर होना नहीं मान लिया जाता।

जहां तक तीन मील की सीमा का ब्रिटिश राज्यक्षेत्र होने का प्रश्न है वह मूल रूप से सम्राट द्वारा उथले समुद्रों के संबंध में माना जाता था किंतु बाद में उसका परित्याग कर दिया गया। यह प्रमाणों के अभाव में स्थापित नहीं होता। जहां तक दूसरे सिद्धांत का संबंध है वह पाठ्य पुस्तक लेखकों द्वारा प्रतिपादित किया गया है किंतु ब्रिटिश, अमरीकन तथा कांटीनेन्टल देशों के पाठ्य पुस्तक लेखकों की कृतियों के परीक्षणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे इस सिद्धांत के स्थानीय विस्तार और उसकी अधिकारिता की प्रकृति के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संबंध में एकमत नहीं हैं। कुछ लेखक तीन मील के नियम का अभिकथन करते हैं तो दूसरे बंदूक की गोली जाने तक के क्षेत्र का। कुछ इस क्षेत्र पर क्षेत्रीय प्रभुत्वसंपन्न एकात्मक अधिकार मानते हैं दूसरे उसे विदेशियों की अधिकारिता के अधीन मानते हैं। कुछ उस क्षेत्र पर राज्यों के यात्रा संबंधी अधिकार के अतिरिक्त किसी प्रकार का प्रभुत्व स्वीकार नहीं करते तो कुछ राजस्व नियमों के लागू करने के संबंध में विस्तृत अधिकारिता को स्वीकार करते हैं। यदि इन सब लेखकों के विचार भिन्न-भिन्न होने की बजाए एकमत होते तो भी वे सभ्य राज्यों की सहमति के अभाव में विधि का निर्माण नहीं कर सकते थे। यदि ऐसी सहमति प्राप्त होना सिद्ध भी हो जाए और इस प्रकार की नई विधि की स्थापना को स्वीकार भी कर लिया जाए तो भी संसदीय अधिनियमात्मक स्वीकृति के बिना न्यायालयों द्वारा उसे प्रवर्तित नहीं किया जा सकता।

निश्चित रूप से ऐसी कोई संधि नहीं है जो प्रादेशिक समुद्र क्षेत्र से गुजरने-वाले पोतों पर तटीय राज्य को अधिकारिता प्रदान करती हो। यद्यपि ऐसी संधियां हैं जो तटस्थता के नियमों और एकात्मक अधिकारों को प्रवर्तित किए जाने के लिए कुछ सीमा तक इस प्रकार को अधिकारिता को मानती हैं। किंतु यह केवल पारस्परिक अनुदान और लोकमत पर आधारित है। इसी प्रकार नौवहन, मत्स्य तथा तटस्थता के नियमों के संबंध में कुछ स्थापित प्रथा विद्यमान है किंतु ऐसी कोई प्रथा विद्यमान नहीं है जिससे तटीय समुद्र पर स्थानीय राज्य की सामान्य विधि विदेशियों पर लागू की जा सके। यह बहुत संभव था कि उस प्रकार की विधि के स्पष्ट रूप से ग्रहण कर लिए जाने पर दूसरे राज्य भी उसे स्वीकार कर सकते थे और अपने राष्ट्रीय न्यायालयों द्वारा प्रवर्तित कर सकते थे।

तीन मील के सीमा क्षेत्र के भीतर विदेशियों-संबंधी परिनियमों का परीक्षण करने से ज्ञात होता है कि जब संसद् का आशय उन्हें अपनी विधि का विषय बनाना रहा है तब उसने ऐसा अभिव्यक्त निर्धारण द्वारा किया है। किंतु प्रस्तुत प्रयोजन के संबंध में ऐसा कोई अधिनियम नहीं है और उसके अभाव में तीन मील के सीमाक्षेत्र के अंतर्गत स्थानीय दंड विधि को लागू करने के लिए न्यायालय स्वतंत्र नहीं है। अतः अभियोजन अवैध है। न्यायाधिपति कोलरिज की विसम्मति के अनुसार—

तीन मील तक की तटवर्ती समुद्रीय जल सीमा इंग्लैंड की क्षेत्रीय सीमा का अंग है और अंग्रेजी दंड विधि उस सीमा तक विस्तृत है। इस सीमा में किए

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गए अपराधों के, चाहे वे किसी विदेशी द्वारा किसी विदेशी पोत पर किए गए हों, विचारण की अधिकारिता पहले नौसेनापति में निहित थी। अतः बंदी के अभियोजन पर विचारण की अधिकारिता न्यायालय को है। विसम्मति प्रकट करने वाले अन्य न्यायाधिपतियों ने भी इस मत का समर्थन किया कि फ्रांकोनिया की टक्कर से ब्रिटिश पोत तथा उस पर बैठे व्यक्ति डूब गए अतः यह अपराध ब्रिटिश पोत पर किया गया माना जाना चाहिए। यह सही है कि विदेशी राज्यों के बीच कोई अधिनियामक सत्ता नहीं है और न ही कोई अधिकरण है जो अपनी डिक्रियों से उन्हें बाध्य कर सके या यदि वे उसका अतिक्रमण करते हैं तो उन पर दबाव डाल सके। किंतु अन्तरराष्ट्रीय विधि प्रथाओं का संग्रह है जिनका पालन करना सभ्य राज्य स्वीकार करते हैं। क्या कोई विशिष्ट प्रथा स्वीकृत हुई है या नहीं यह साक्ष्य का विषय है। संधियां और राज्य के कार्य राष्ट्रों के करार के साक्ष्य हैं और वे कम-से-कम इस देश के अधिकरणों पर स्वतः आबद्धकर नहीं हो जाते हैं। इसी प्रकार विधिवेत्ताओं का मतैक्य अंतरराष्ट्रीय प्रश्नों पर राष्ट्रों के करार का साक्ष्य है। किंतु जब वे प्रश्न इंग्लैंड में उत्पन्न होते हैं तब इंग्लैंड के न्यायालय ऐसे करार को इंग्लैंड की विधि के रूप में प्रभावी करते हैं और उसे इंग्लैंड की विधि का अंग मान लिया जाता है। अनेक देशों के विद्वान्, जो प्रश्नगत विषय के संबंध में कोई विशेष विचारधारा बनाए रखने में रुचि नहीं रखते हैं, लगभग 300 वर्षों से इस मत की पुष्टि करते आ रहे हैं कि समुद्री देश के राज्यक्षेत्र का विस्तार निम्न जल-स्तरांक से आगे नहीं होता है। ऐसा कोई दृढ़ साक्ष्य दिखाई नहीं देता है जिससे यह दर्शित होता हो कि समुद्री देशों के राज्यक्षेत्र का विस्तार, जहां तक वह राष्ट्रों के करार पर निर्भर करता है, इस प्रकार का है। यदि इस विषय पर प्रथम बार विचार किया जा रहा होता तो यह अभिनिर्धारित किया जा सकता था कि सभ्य राष्ट्रों ने इन विद्वानों के प्राधिकार पर समुद्री देशों के राज्यक्षेत्रों के इस प्रकार के विस्तार के बारे में करार किया था।

इंग्लैंड के न्यायाधीशों ने बार-बार यह अभिनिर्धारित किया है कि ये तटीय जल साम्राज्य के भाग हैं। यह सही है कि सुभिन्न रूप से यह विशिष्ट प्रश्न कभी भी नहीं उठा है किंतु इन न्यायाधीशों ने जिस भाषा का प्रयोग किया है उससे कोई और अर्थ नहीं निकाला जा सकता सिवाए इसके कि निश्चित रूप से उसका यह अर्थ है कि इंग्लैंड के साम्राज्य, इंग्लैण्ड के राज्यक्षेत्र, इंग्लैंड का राज्य और क्राउन के जल और उसके नीचे भूमि पर साम्पत्तिक अधिकार का विस्तार इंग्लैंड के तट पर निम्न जल-स्तरांक से कम-से-कम इतना आगे तो है कि उसके अंतर्गत वह स्थान आ जाता है जहां यह अपराध किया गया था।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्रिटेन की संसद् ने इसी को विधि के रूप में घोषित किया है और अधिनियमित भी किया है। अतः इस प्रस्थापना के लिए अभिव्यक्त और निश्चित प्राधिकार है कि इंग्लैंड के साम्राज्य का अंत निम्न जल-स्तरांक पर नहीं होता है।

अतः इंग्लैंड के राज्यक्षेत्र का विस्तार निम्न जल-स्तरांक से आगे वहां तक है जहां अपराध किया गया था और इंग्लैंड के न्यायालयों को अधिकारिता प्राप्त है।

टिप्पणी :—इस निर्णय के परिणामस्वरूप ब्रिटेन ने 1878 का टेरिटोरियल वाटर्स ऐक्ट पारित किया। जिसकी प्रस्तावना में यह घोषित किया गया है कि सम्राट् की अधिकारिता ब्रिटेन के तट से लगे हुए खुले समुद्र तक और उसके प्रभुत्व के परिरक्षण और संरक्षण के लिए आवश्यकता की सीमा तक अन्य भागों तक विस्तृत है और सर्वदा विस्तृत रहती है।

यह निर्णय इंग्लिश न्यायालय के इस दृष्टिकोण का द्योतक है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि वह है जिसे पाठ्य पुस्तक लेखकों ने प्रथा के आधार पर सामान्य रूप से विधि के रूप में घोषित किया है चाहे उस की पुष्टि संधियों, परिनियमों और न्यायनिर्णयों से नहीं होती।

इस निर्णय से यह भी परिलक्षित होता है कि न्यायालय अन्तरराष्ट्रीय विधि के बजाए राष्ट्रीय विधि लागू करते है तथा अन्तरराष्ट्रीय विधि को, जब तक संधि, परिनियमों या राज्य के कार्यों द्वारा इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय विधि में समाहित नहीं कर लिया जाता है तब तक न्यायालय उसे प्रवर्तित नहीं करेंगे।

2. खुले समुद्र में पोत अपनी राष्ट्रीयता का धारक होता है और उस राज्य की विधि से शासित होता है क्योंकि यह उस राज्य का तैरता हुआ क्षेत्र माना जाता है। उस पोत पर स्थित सभी व्यक्ति चाहे वे विदेशी ही क्यों न हों उस देश की विधि से शासित होते हैं जिसका वह पोत है। वे उस पर किए गए अपराधों के लिए उसी प्रकार उत्तरदायी होते जैसे वह अपराध उस देश की भूमि सीमा पर किया गया हो और उसके लिए अभियोजित और दण्डित किए जा सकते हैं।

3. अन्तरराष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत राष्ट्रों को अपने तट से तीन मील की सीमा के भीतर केवल कुछ निश्चित प्रयोजनों यथा तटवर्ती सीमा की प्रतिरक्षा तथा सुरक्षा के लिए ही अधिकारिता होती है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलबामा माध्यस्थम्

(The Alabama Arbitration)

यूनाइटेड स्टेट्स—ग्रेट ब्रिटेन क्लेम्स आरबिट्रेशन (1872),
मूर, इण्टरनेशनल आरबिट्रेशन्स, खण्ड 1, पृष्ठ 653.

यह मामला अन्तरराष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि के बीच संबंध स्थापक सिद्धांत का महत्वपूर्ण निर्णय है तथा इससे तटस्थ राज्यों के कर्त्तव्यों का निर्धारण भी किया गया है।

* * * *

अमरीकन गृह युद्ध के समय कन्फेडरेड नेवी (परिसंघीय नौसेना) के प्रयोग के लिए इंग्लैंड की पोत निर्माणशालाओं में अनेक जलयानों का निर्माण किया गया था। जब वे जलयान ब्रिटेन के पत्तनों से चले थे उस समय वे शस्त्रों से सुसज्जित नहीं थे किंतु उन पर भारी तोपें लगाई जा सकती थीं। यह सर्वविदित था कि वे जलयान अमरीका के व्यापार पर आक्रमण के प्रयोजन से परिसंघीय नौसेना द्वारा बनवाए गए थे। जिस प्रयोजन के लिए उन जलयानों का निर्माण किया गया था उसकी ओर अमरीका की सरकार ने ब्रिटेन की सरकार का ध्यान आकृष्ट किया था। अमरीका की सरकार का कहना था कि इन जलयानों के प्रस्थान से तटस्थ राज्य के रूप में ग्रेट ब्रिटेन के कर्त्तव्यों का अतिक्रमण होगा।

अमरीका की सरकार द्वारा इस प्रकार आपत्ति किए जाने के बावजूद भी, जलयानों को ब्रिटेन के पत्तनों से प्रस्थान करने दिया गया था। ब्रिटेन की सरकार का कहना था कि इंग्लैंड की राष्ट्रीय विधि के अनुसार प्राइवेट संविदाओं में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

ब्रिटेन में निर्मित पोतों में से एक पोत अलबामा भी था। ब्रिटेन के विधि अधिकारियों की सलाह के विपरीत इसे ब्रिटिश पत्तन छोड़ने की अनुज्ञा दी गई थी। युद्ध के दौरान यह सबसे अधिक खतरनाक सिद्ध हुआ था क्योंकि इसने अमरीका के 70 जलयान पकड़ लिए थे।

अमरीका ने इंग्लैंड की पोत निर्माणशालाओं में निर्मित परिसंघीय नौसेना के युद्धपोतों द्वारा की गई लूटपाट के लिए प्रतिकर वसूल करने का प्रयास किया किंतु ब्रिटेन की सरकार ने इस बात से इन्कार कर दिया कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन उसका कोई उत्तरदायित्व है, और आरंभ में मध्यस्थता करने से

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन्कार कर दिया। वाशिंगटन संधि, 1871 के अनुसार यह करार किया गया कि मामला माध्यस्थम् अधिकरण को सौंपा जाए। इस संधि के अनुच्छेद VI के अनुसार मध्यस्थों को यह निदेश दिया गया कि वे मामले के निपटारे के लिए वाशिंगटन संधि के तीन नियम और अन्तरराष्ट्रीय विधि के ऐसे नियम लागू करें जो उन नियमों से असंगत न हों जिनके बारे में मध्यस्थ यह अवधारित करेंगे कि वे इस मामले को लागू होंगे। यद्यपि ब्रिटेन ने इन नियमों को तत्समय विद्यमान अन्तरराष्ट्रीय विधि के घोषणात्मक नियम होने को मान्यता देने से इंकार कर दिया था तथापि इस बात पर सहमति प्रकट की थी कि मध्यस्थों को यह उपधारणा करके कार्यवाही करनी चाहिए कि ग्रेट ब्रिटेन ने यह वचन दिया है कि वह इन नियमों के अनुसार कार्य करेगा। दोनों पक्षकारों ने यह वचन दिया कि वे भविष्य में इन नियमों का विधि के रूप में पालन करेंगे और यह भी वचन दिया कि वे अन्य समुद्री शक्तियों को आमंत्रित करेंगे कि वे उन्हें स्वीकार करें।

इन नियमों के अनुसार तटस्थ सरकार इस बात के लिए आबद्ध होती है कि —

(i) वह किसी ऐसे जलयान को, जिसके संबंध में ऐसा विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार हो कि उसका आशय युद्ध अभियान करना है या ऐसी शक्ति के जिसके साथ उसके शांति संबंध हैं, विरुद्ध युद्ध करना है, अपनी अधिकारिता में पूर्ण या आंशिक रूप से युद्ध के योग्य बनाने, आयुधों से लैस करने या सुसज्जित करने अथवा प्रस्थान करने से रोकने के लिए सम्यक् तत्परता का प्रयोग करें।

(ii) वह किसी युद्धमान देश को अपनी पत्तन या तटीय जल को किसी दूसरे देश के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही का अड्डा बनाने, सैनिक रसद, आयुधों अथवा पुरुषों की भर्ती के नवीकरण या संवर्धन के प्रयोजन के लिए, प्रयोग नहीं करने देगी।

(iii) वह अपनी अधिकारिता में निवास करने वाले सभी व्यक्तियों को अपने पत्तनों तथा तटीय जल में पूर्ववर्ती बाध्यताओं एवं कर्त्तव्यों का उल्लंघन करने से रोकने के लिए सम्यक् तत्परता का प्रयोग करें।

अधिकरण ने ग्रेट ब्रिटेन को उत्तरदायी ठहराया किंतु अमरीका के अप्रत्यक्ष नुकसानी के दावे को अस्वीकार कर दिया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिकरण के निर्णयानुसार—

तटस्थ सरकारों द्वारा तटस्थता की बाध्यताओं का पालन करने में असफल रहने के कारण युद्धमान देशों में से किसी भी देश को जिस खतरे का सामना करना पड़े उसी के अनुपात के अनुसार ही वाशिंगटन संधि के प्रथम और तृतीय नियम में निर्दिष्ट सम्यक् तत्परता का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस मामले में जिन परिस्थितियों के आधार पर यह विवाद उत्पन्न हुआ है वे ये थीं कि ब्रिटिश सरकार से यह मांग की गई है कि वह 13 मई, 1861 की उद्घोषणा में अंतर्निहित अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का यथा संभव पालन करे।

* * * *

युद्ध-जलयानों को राज्यक्षेत्राधिमुक्तता का जो विशेषाधिकार दिया गया है उसे अन्तरराष्ट्रीय विधि में स्वीकार किया गया है किंतु उसे आत्यंतिक अधिकार के रूप में नहीं बल्कि विभिन्न राज्यों के बीच सौजन्यता तथा पारस्परिक आदर के सिद्धांत पर आधारित कार्रवाई के रूप में स्वीकार किया गया है और इसीलिए तटस्थता का अतिक्रमण करते हुए किए गए कार्यों से संरक्षण के लिए उसके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती।

* * * *

जहां तक अलबामा का संबंध है, लीवरपूल पत्तन में पोत के निर्माण तथा उसकी साज-सज्जा और आयुद्धों से लैस होने तथा ग्रेट ब्रिटेन से विशेष प्रयोजन के लिए उसके प्रस्थान से संबद्ध तथ्यों से स्पष्ट है कि ब्रिटेन ने अपनी तटस्थता की बाध्यताओं का सम्यक् तत्परता से पालन नहीं किया है। तथा उसके निर्माण काल में अमरीका के राजनयिक अभिकर्ताओं द्वारा दी गई चेतावनी और शासकीय अभ्यावेदनों के बावजूद पोत के प्रस्थान को रोकने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की तथा पोत को पकड़ने के आदेश भी उस समय दिए जब उनका निष्पादन असंभव था। उस जलयान के बच-कर निकल भागने पर उसका पीछा करने और उसे गिरफ्तार करने के लिए जो उपाय किए गए थे वे इतने अपूर्ण थे कि उनका कोई परिणाम नहीं निकला। इसलिए उनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे ग्रेट ब्रिटेन को अपने उत्तरदायित्व से मुक्त करने के लिए पर्याप्त थे।

अलबामा जलयान द्वारा ग्रेट ब्रिटेन की तटस्थता का अतिक्रमण किए जाने के बावजूद भी इस जलयान को कई बार ग्रेट ब्रिटेन के पत्तनों और उपनिवेशों में निर्बाध आने दिया गया था और उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं की गई थी जबकि ग्रेट ब्रिटेन को उसके विरुद्ध कार्यवाही करनी चाहिए थी।

अतः अधिकरण ने ग्रेट ब्रिटेन को वाशिंगटन संधि के नियमों के प्रथम और तृतीय नियम में निर्दिष्ट "सम्यक् तत्परता" से अपने कर्त्तव्यों का पालन न करने का दोषी पाया।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले में अमरीका के दावे को स्वीकार करके अन्तरराष्ट्रीय विधि की श्रेष्ठता अथवा प्रधानता को मान्यता प्रदान की गई है तथा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि तटस्थ राष्ट्र अपनी बाध्यताओं का सम्यक् तत्परता से पालन करें और उन्हें अपनी बाध्यताओं से इस आधार पर मुक्त नहीं किया जा सकता कि ऐसा करने से उनकी राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन होगा। तटस्थ राष्ट्रों पर यह भी दायित्व स्थापित किया गया है कि वे अपनी राष्ट्रीय विधि के अधीन इस प्रकार कार्य करें जिससे कि तटस्थता की अन्तरराष्ट्रीय विधि की बाध्यताओं का उल्लंघन न हो। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी राज्य द्वारा अन्तरराष्ट्रीय विधि या संधि के अधीन बाध्यताओं की उपेक्षा के लिए, अपनी राष्ट्रीय विधि के उपबन्धों का आश्रय लेना न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।

* * * *

प्रस्तुत मामले में निर्धारित सिद्धांत की पुष्टि डेन्जिग के पोलिश राष्ट्रकों के साथ व्यवहार के मामले में निर्णय देते हुए स्थायी अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा (1932 पी० सी० आई० जे० रिपोर्ट सीरीज ए/बी 44, पृष्ठ 243) तथा अंतरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा नार्वेयन लोन के (फ्रांस बनाम नार्वे के) मामले में (आई० सी० जे० रिपोर्ट्स 1957 पृष्ठ 9) की गई है तथा न्यूरेम्बर्ग निर्णय (41 ए० जे० आई० एल० 1947 पृष्ठ 172) ने भी इस सिद्धांत को स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय बाध्यताओं पर अन्तरराष्ट्रीय बाध्यताएं प्रभावी होंगी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

3. विधि के विषय

अन्तरराष्ट्रीय विधि के विषय से तात्पर्य उन इकाइयों से है जिन पर अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम लागू होते हैं या जिन पर प्रत्यक्षतः अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम आबद्धकर हैं। अन्तरराष्ट्रीय विधि के विषय विधि के अधीन अधिकारों और कर्त्तव्यों से युक्त होते हैं तथा अधिकारों को अन्तरराष्ट्रीय अधिकरण द्वारा प्रवर्तित राज्य करा सकते हैं।

कट्टरपंथी विद्वानों का मत रहा है कि केवल राज्य ही अन्तरराष्ट्रीय विधि के विषय बन सकते हैं। अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना के बाद विद्वानों के इस मत में परिवर्तन आया है। विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में व्यक्तियों का वैध अस्तित्व स्वीकार किया गया है। व्यक्तियों के आधारभूत अधिकारों को स्वीकार करके तथा न्यूरेम्बर्ग अधिकरण के निर्णयों में तथा अन्य नवप्रणीत अन्तरराष्ट्रीय अभिसमयों में यथा मानववध अभिसमय या डाइजेकिंग अभिसमयों में उसकी बाध्यताओं का निर्धारण करके उसे अधिकार और दायित्व प्रदान करके और इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को या सिविल एवं राजनैतिक अधिकार अभिसमय, 1966 के अधीन इन अधिकारों के अतिक्रमण के विरुद्ध मानव अधिकार समिति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के अधिकारों को सीधे अन्तरराष्ट्रीय विधि का विषय बना दिया गया है।

मांटोविडो अभिसमय, जो 1933 में राज्यों के अधिकारों और कर्त्तव्यों का निर्धारण करने हेतु अमरीका और लेटिन अमरीका के देशों ने अपनाया था, के अनुच्छेद 9 में राज्य के निम्नलिखित लक्षणों का निर्धारण किया है :—(1) स्थायी समुदाय, (2) स्थिर सीमा का प्रदेश, (3) सरकार की स्थापना, (4) अन्य राज्यों से संबंध स्थापित करने की क्षमता का होना। विद्वानों द्वारा भी प्रायः इन्हीं लक्षणों को स्वीकार किया गया है। जो समुदाय उक्त लक्षणों से परिपूर्ण होता है उसे राज्य के रूप में अन्तरराष्ट्रीय विधि का विषय माना जाता है। इन राज्यों की अपनी प्रभुत्व संपन्न स्थिति होती है जो संसार के अन्य प्रभाव के अधीन नहीं होती।

राज्यों की भांति संयुक्त राष्ट्र जैसे अन्तरराष्ट्रीय संस्थानों को अधिकारों और कर्त्तव्यों से तथा तत्सम्बन्धी बाध्यताओं के संपादन की क्षमता प्रदान

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर अन्तरराष्ट्रीय विधि का विलय स्वीकार कर लिया गया है। अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय ने अपनी सलाहकारी अधिकारिता के अधीन संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के अनुरोध पर रिपेरेशन फॉर इन्जरीज सफ्फर्ड इन दि सर्विस ऑफ दी यूनाइटिड नेशन्स के मामले में अपना मत व्यक्त करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ को अन्तरराष्ट्रीय विधि का विषय और अन्य राज्यों के विरुद्ध दावे प्रस्तुत करने का अधिकार स्वीकार किया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रिपेरेशन फॉर इन्जुरीज सफर्ड इन दि सर्विस ऑफ दि यूनाइटेड नेशन्स

(Reparation for injuries suffered in the service of the United Nations).

आई०सी०जे० रिपोर्ट्स 1949 पृष्ठ 174.

इस मामले में संयुक्त राष्ट्र संघ का अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व स्वीकार करके उसे अन्तरराष्ट्रीय विधि का विषय स्वीकार किया गया है।

* * * *

1947 और 1948 के दौरान संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्थापित आयोगों में सेवारत अनेक व्यक्ति विश्व के अनेक भागों में अपने शासकीय कर्त्तव्यों का पालन करते हुए मारे गए थे या क्षतिग्रस्त हो गए थे। इन व्यक्तियों में से एक महत्वपूर्ण व्यक्ति काउण्ट बरनेडोट्ट था जिसकी फिलस्तीन में संयुक्त राष्ट्र संघ के मध्यस्थ के रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए हत्या कर दी गई थी। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में यह विनिश्चय किया गया कि इस मामले में अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की सलाहकारी राय ली जाए कि उस दशा में जब कि संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई अभिकर्ता अपने कर्त्तव्यों का पालन करते समय ऐसी परिस्थितियों में क्षतिग्रस्त हो जाता है जिनके लिए कोई राज्य उत्तरदायी हो, संयुक्त राष्ट्र को, एक संगठन के रूप में उत्तरदायी विधितः या वस्तुतः सरकार के विरुद्ध (क) संयुक्त राष्ट्र संगठन को और, (ख) आहत व्यक्ति या उसकी मार्फत हकदार व्यक्तियों को हुए नुकसान की हानिपूर्ति के लिए अन्तरराष्ट्रीय दावा करने की हैसियत प्राप्त है।

न्यायाधिपति कुरियम के मतानुसार—अन्तरराष्ट्रीय दावा करने की क्षमता दावे स्थापित करने, प्रस्तुत करने और उनका निपटारा करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य रूढ़िजन्य साधनों का अवलम्ब लेने की हैसियत है।

यह हैसियत निश्चित रूप से राज्य की हैसियत है, कोई एक राज्य दूसरे राज्य के विरुद्ध अन्तरराष्ट्रीय दावा कर सकता है। ऐसा दावा उन दो राजनैतिक सत्ताओं के बीच दावे का रूप धारण कर लेता है, जो विधि की दृष्टि से समान हों, जिनका स्वरूप एक जैसा हो और वे दोनों अन्तरराष्ट्रीय विधि के अध्यधीन हों। उसका निपटान आपसी बातचीत से किया जाता है और अन्तरराष्ट्रीय अधिकारिता से सम्बन्धित वर्तमान विधि के अनुसार अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जब तक कि सम्पृक्त राज्य इस बात के लिए अपनी सम्मति प्रकट न कर दें।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जब संगठन अपने सदस्यों में से किसी सदस्य के विरुद्ध दावा करता है तो वह दावा भी उसी प्रकार प्रस्तुत किया जाएगा और उसी प्रक्रिया के अनुसार विनियमित किया जाएगा। संगठन दावे के समर्थन में ऐसे राजनैतिक साधनों का अवलम्ब ले सकता है जो उसे उपलभ्य हों। इस प्रकार संगठन उस सदस्य द्वारा अपने अधिकारों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए रास्ता निकाल सकता है जिसके विरुद्ध उसने दावा किया है।

किन्तु अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में, क्या संगठन का ऐसा स्वरूप होता है कि उसे अन्तरराष्ट्रीय दावे करने की हैसियत प्राप्त हो? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए न्यायालय को सबसे पहले यह जांच करनी होगी कि क्या चार्टर द्वारा संगठन को ऐसी स्थिति में रखा गया है कि उसे अपने सदस्यों के सम्बन्ध में ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जिनके बारे में वह उनसे यह कह सके कि वे उनका अनुपालन करें। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि क्या संगठन का कोई अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व है? यहां इस अभिव्यक्ति का प्रयोग इस अर्थ में किया जाएगा कि यदि संगठन के बारे में यह माना जाता है कि उसका ऐसा व्यक्तित्व है तो वह ऐसी सत्ता है जो ऐसी बाध्यताओं का लाभ उठा सकती है जो उसके सदस्यों के लिए आबद्धकर हों।

यह आवश्यक नहीं है कि किसी विधिक पद्धति में विधि के विषयों का स्वरूप या उनके अधिकारों की परिधि समान हो, उनका स्वरूप समुदाय की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। अन्तरराष्ट्रीय विधि के विकास पर अन्तरराष्ट्रीय जीवन की आवश्यकताओं का प्रभाव पड़ता रहा है और राज्यों के सामूहिक क्रियाकलापों में उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण अन्तरराष्ट्रीय धरातल पर कुछ ऐसी सत्ताओं की कार्यवाही के उदाहरण सामने आए हैं जो राज्य नहीं हैं। इस प्रकार के विकास के कारण एक अन्तरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना की गई जिसके उद्देश्य और सिद्धान्त संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में विनिर्दिष्ट किए गए हैं। किन्तु इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व प्रदान करना अत्यावश्यक है।

चार्टर द्वारा संगठन को इन सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राष्ट्रों की कार्यवाहियों को समन्वित करने का केन्द्र ही नहीं बनाया गया है बल्कि चार्टर द्वारा इस केन्द्र को अंग प्रदान किए गए हैं और इसे विशेष कार्य सौंपे गए हैं। संगठन के साथ सदस्यों की क्या स्थिति होगी, यह बात चार्टर में सदस्यों से यह अपेक्षा करके कि वे संगठन द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही में उसको सब प्रकार सहायता करें और सुरक्षा परिषद् के विनिश्चयों को स्वीकार करें और उनका अनुपालन करें; महा सभा को यह प्राधिकार देकर कि वह सदस्यों से सिफारिश करे, संगठन को अपने सदस्यों के राज्यक्षेत्रों में विधिक हैसियत, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रदान करके तथा संगठन और उसके सदस्यों के बीच करारों के किए जाने का उपबन्ध करके स्पष्ट की गई है । व्यवहार से—विशेषतया उन अभिसमयों की निष्पत्ति से जिसका संगठन पक्षकार है—संगठन के इस स्वरूप की पुष्टि हो गई है कि कतिपय विषयों में उसकी हैसियत इसके सदस्यों से भिन्न है और यदि आवश्यक हो तो उसका यह कर्तव्य है कि वह उनको उनकी बाध्यताओं की याद दिलाए । यहां यह भी बता देना जरूरी है कि संगठन एक राजनैतिक निकाय है जिसे बहुत ही महत्वपूर्ण और विस्तृत राजनैतिक कार्य सौंपे गए हैं—उदाहरणार्थ अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखना, राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना तथा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या मानवतावादी प्रकृति की समस्याओं को हल करने में अन्तरराष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना; और वह अपने सदस्यों के साथ व्यवहार करते समय राजनैतिक साधनों का प्रयोग करता है । संयुक्त राष्ट्र के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों से सम्बन्धित अभिसमय द्वारा अभिसमय के प्रत्येक हस्ताक्षरकर्ता राज्य और संगठन के बीच अधिकार और कर्तव्य स्थापित किए गए हैं । यह समझना कठिन है कि ऐसा अभिसमय अन्तरराष्ट्रीय स्तर तथा अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व रखने वाले पक्षकारों के सिवाय और किन पर प्रवर्तित होगा ।

न्यायालय के मतानुसार आशय यह है कि संगठन ऐसे कार्य करे और ऐसे अधिकारों का उपभोग करे जिन्हें अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व के अत्यधिक साधन प्राप्त होने और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रवर्तित करने की हैसियत के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है । वर्तमान स्थिति में यह एक सर्वोच्च प्रकार का अन्तरराष्ट्रीय संगठन है और वह संगठन के संस्थापकों के आशयों को कार्यान्वित नहीं कर सकता था यदि उसे अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व प्रदान न किया जाता । यह अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए कि उसके सदस्यों ने उसे कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों से समन्वित कतिपय कार्य सौंप कर ऐसी क्षमता प्रदान की है जो उन कार्यों के प्रभावपूर्ण निर्वहन के लिए अपेक्षित है ।

तदनुसार न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि संगठन अन्तरराष्ट्रीय व्यक्ति है । इसका मतलब यह नहीं है कि संगठन एक राज्य है और उसका विधिक व्यक्तित्व तथा उसके अधिकार और कर्तव्य नहीं हैं जो एक राज्य के होते हैं । साथ ही यह कहना भी सही नहीं है कि वह 'सर्वोपरि राज्य' है । इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि उसके सभी अधिकार और कर्तव्य अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ही हों । इससे तो यह अभिप्रेत है कि वह अन्तरराष्ट्रीय विधि का विषय है और वह अन्तरराष्ट्रीय अधिकारों और कर्तव्यों को धारण करने में समर्थ है और उसे अन्तरराष्ट्रीय दावे करके अपने अधिकारों को कायम रखने की हैसियत है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अगला प्रश्न यह है कि क्या संगठन के अन्तरराष्ट्रीय अधिकारों में संगठन के किसी अभिकर्ता को अपने कर्तव्यों का पालन करते समय हुई क्षति के कारण नुकसान की हानिपूर्ति के लिए किसी राज्य के विरुद्ध दावा करने का अधिकार समाविष्ट है। जबकि राज्य को अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य सम्पूर्ण अन्तरराष्ट्रीय अधिकार और कर्तव्य प्राप्त होते हैं किन्तु संगठन जैसी सत्ता के अधिकार और कर्तव्य उन उद्देश्यों और कार्यों पर निर्भर करते हैं जैसे कि उसके संवैधानिक दस्तावेजों द्वारा विनिर्दिष्ट किए गए हों या विवक्षित हों और व्यवहारतः विकसित हुए हों। संगठन के कार्य ऐसी प्रकृति के होते हैं कि उनका प्रभावपूर्ण ढंग से निष्पादन नहीं किया जा सकता यदि उनमें अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अठावन या अधिक विदेशी कार्यालयों की समवर्ती कार्रवाइयां शामिल हों। अतः न्यायालय के निष्कर्ष के अनुसार सदस्यों ने संगठन को अपने कार्यों के निष्पादन की आवश्यकतानुसार अन्तरराष्ट्रीय दावे करने की हैसियत प्रदान की है।

इस पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि संगठन को अपने सदस्यों में से एक सदस्य के, जिसने उसे उसके प्रति अपनी अन्तरराष्ट्रीय बाध्यताओं का भंग करके क्षति पहुंचाई है, विरुद्ध अन्तरराष्ट्रीय दावा करने की हैसियत प्राप्त है। यह स्पष्ट है कि स्वयं संगठन के हितों को, उसके प्रशासनिक तन्त्र को, उसकी सम्पत्ति या आस्तियों को और उन हितों को, जिनका वह संरक्षक है, पहुंचाए गए नुकसान के लिए संगठन को अन्तरराष्ट्रीय दावा करने की हैसियत प्राप्त है। क्योंकि यह दावा संगठन द्वारा उत्तरदायी ठहराए गए सदस्य द्वारा अन्तरराष्ट्रीय बाध्यता के भंग किए जाने पर आधारित है इसलिए वह सदस्य यह नहीं कह सकता कि उसकी बाध्यता राष्ट्रीय विधि द्वारा शासित होती है। अतः संगठन द्वारा अपने दावे को अन्तरराष्ट्रीय दावे की प्रकृति प्रदान करना न्यायोचित है।

जब संगठन को किसी सदस्य द्वारा अपनी अन्तरराष्ट्रीय बाध्यताओं के भंग करने के परिणामस्वरूप कोई नुकसान उठाना पड़ा हो तो वह हानिपूर्ति नहीं करा सकता जब तक कि उसे अन्तरराष्ट्रीय दावा करने की हैसियत प्राप्त न हो। यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि ऐसी स्थिति में प्रतिवादी राज्य के सिवाय, संगठन के सभी सदस्यों को संगठन द्वारा उठाए गए नुकसान के लिए प्रतिवादी के विरुद्ध दावा करने के लिए एक जुट हो जाना चाहिए।

अब एक मात्र विधिक प्रश्न, जिस पर विचार किया जाना है, यह रह जाता है कि क्या संगठन आहत व्यक्ति को हुए नुकसान की हानि पूर्ति करा सकता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यदि पारम्परिक नियम को देखें कि राज्य अपने राष्ट्रिकों को राजनयिक संरक्षण प्रदान करते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका उत्तर नकारात्मक है ।

प्रथमतः यह नियम किसी राज्य द्वारा किए गए दावे को लागू होता है । जबकि यहां दावे का भिन्न और नया मामला है जो संगठन द्वारा किया गया है ।

द्वितीयतः अन्तरराज्यीय सम्बन्धों में भी इस नियम के कई महत्वपूर्ण अपवाद हैं क्योंकि ऐसे कई मामले हैं जिनमें किसी राज्य द्वारा ऐसे व्यक्तियों को भी संरक्षण प्रदान किया जा सकता है जो इस राज्य के राष्ट्रिक नहीं हैं ।

तृतीयतः यह नियम दो आधारों पर आश्रित है । प्रथम आधार यह है कि प्रतिवादी राज्य ने उसके राष्ट्रिकों के सम्बन्ध में उस राज्य के प्रति बाध्यता का भंग किया है । दूसरा आधार यह है कि केवल वही पक्षकार, जिसके प्रति अन्तरराष्ट्रीय बाध्यता का निर्वहन किया जाना है, उसके भंग किए जाने के लिए दावा कर सकता है । यथार्थतः यही होता है जब संगठन अपने अभिकर्ता को हुए नुकसान के लिए दावा करता है तब वह स्वयं अपने प्रति किसी बाध्यता के भंग किए जाने के आधार पर ऐसा करता है । अतः दावों की राष्ट्रीयता के नियम के आधार पर संगठन द्वारा उठाए गए नुकसान के लिए दावा करने के अधिकार को मान्यता न देने का कोई कारण नहीं है । इसके विपरीत, इस नियम में अन्तर्निहित सिद्धांत इस बात को मान्यता प्रदान करता है कि संगठन को ऐसी हैसियत प्राप्त है जब कि संगठन अपने प्रति किसी बाध्यता के भंग किए जाने के आधार पर दावा करता है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस क्षति के लिए हानिपूर्ति की मांग की गई है क्या ऐसी बाध्यता के भंग होने के कारण हुई है जो संगठन के अभिकर्ता के अपने कर्तव्यों के पालन में सहायता करने के लिए परिकल्पित थी । यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें सदोष कार्य या लोप से अन्य देशों से सम्बन्ध राज्य की साधारण बाध्यताओं का भंग होगा; इस शीर्ष के अधीन किए गए दावे इस राज्य की सक्षमता के भीतर होंगे न कि साधारण नियम के रूप में संगठन की सक्षमता के भीतर ।

चार्टर में अभिव्यक्त रूप से संगठन को ऐसी हैसियत प्रदान नहीं की गई है जिसमें वह हानिपूर्ति के अपने दावे में आहत व्यक्ति को या उसके माध्यम से हकदार व्यक्तियों को हुआ नुकसान शामिल कर सके । अतः न्यायालय को यह जांच करनी होगी कि क्या संगठन के कार्यों से सम्बद्ध चार्टर के उपबन्धों में संगठन को ऐसी शक्ति दी गई है कि वह अपने अभिकर्ताओं को सीमित संरक्षण प्रदान करे जिसमें ऐसी परिस्थितियों में उठाए गए नुकसान के लिए उनकी ओर से

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हानि पूर्ति का दावा किया जाना शामिल है । अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन, संगठन के बारे में समझा जाना चाहिए कि उसे वे शक्तियां प्राप्त हैं, यद्यपि चार्टर में उनका अभिव्यक्त रूप से उपबन्ध नहीं होता तथापि वे उसे आवश्यक विवक्षा द्वारा प्रदान की जाती हैं क्योंकि वे उसके कर्तव्यों के पालन के लिए आवश्यक होती हैं । विधि का यह सिद्धान्त स्थायी अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा अन्तर-राष्ट्रीय श्रम संगठन को लागू किया गया था और यह संयुक्त राष्ट्र को भी लागू किया जाना चाहिए

संगठन को अपने उद्देश्यों और कार्यों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक प्रतीत हो सकता है और वस्तुतः उसे यह आवश्यक प्रतीत हुआ भी है, कि वह अपने अभिकर्ताओं को विश्व के अशान्त भागों में महत्वपूर्ण कार्य करने का भार सौंपे । बहुत से कार्य ऐसे भी होते हैं जो अपनी प्रकृति के कारण अभिकर्ताओं को असाधारण खतरे में डाल देते हैं जिनका सामना साधारण व्यक्तियों को नहीं करना पड़ता । इसी कारण इन परिस्थितियों में उसके अभिकर्ताओं को हुई क्षतियां कभी-कभी ऐसी रीति से हुई होंगी कि उनके राज्य के लिए राजनयिक संरक्षण के आधार पर हानि पूर्ति के लिए दावा करना न्यायोचित नहीं होगा या वह ऐसा दावा नहीं करना चाहता होगा । इन कार्यों का दक्ष और स्वतन्त्र रूप से निर्वहन सुनिश्चित करने के लिए और अपने अभिकर्ताओं का प्रभावपूर्ण समर्थन करने के लिए संगठन को चाहिए कि वह उन्हें पर्याप्त संरक्षण प्रदान करे ।

अभिकर्ता अपने कर्तव्यों का सन्तोषप्रद रूप से पालन कर सके इसके लिए उसे यह महसूस होना चाहिए कि संगठन द्वारा यह संरक्षण उसे निश्चित रूप से प्राप्त होगा और वह इस पर भरोसा कर सकता है । अभिकर्ता की स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने के लिए और परिणामतः स्वयं संगठन की स्वतंत्र कार्रवाई के लिए यह आवश्यक है कि उसे अपने कर्तव्यों का पालन करते समय संगठन के संरक्षण के सिवाए किसी अन्य संरक्षण पर निर्भर न होना पड़े । विशेष रूप से उसे अपने राज्य के संरक्षण पर निर्भर न होना पड़े । यदि उसे अपने राज्य के संरक्षण पर निर्भर होना पड़े तो उसकी स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़ेगा ।

राज्यों द्वारा संगठन के अभिकर्ताओं को अपने कर्तव्यों का पालन करने देने के लिए जिन बाध्यताओं को स्वीकार किया जाता है वे बाध्यताएं अभिकर्ताओं के हित के लिए नहीं होती बल्कि संगठन के हित के लिए होती हैं । जब संगठन इन बाध्यताओं के भंग किए जाने के लिए प्रतितोष का दावा करता है तब वह अपने इस अधिकार का प्रयोग करता है । इस आधार पर वह क्षति की हानि पूर्ति की मांग करता है क्योंकि 'अन्तरराष्ट्रीय विधि' का यह सिद्धान्त है कि किसी वचनबद्धता

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के भंग में यह बाध्यता शामिल है कि वह यथोचित रूप में हानि पूर्ति करे। संगठन के अभिकर्ता को हुई क्षति के लिए हानि पूर्ति का दावा करते समय संगठन अभिकर्ता का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि वह अपने अधिकार का प्राख्यान करता है।

अतः न्यायालय की यह राय है कि बाध्यताओं के भंग किए जाने की दशा में संगठन को यथोचित हानि पूर्ति का दावा करने की हैसियत प्राप्त है और इस हानि पूर्ति का निर्धारण करते समय वह आहत व्यक्ति को या उसके माध्यम से हकदार व्यक्तियों को हुए नुकसान को शामिल करने के लिए प्राधिकृत है।

अब यह स्थापित हो गया है कि संगठन को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर दावे करने की हैसियत प्राप्त है और उसे अपने अभिकर्ताओं के संबंध में व्यवसायिक संरक्षण का अधिकार भी प्राप्त है। अब प्रश्न यह है कि क्या संगठन को प्रतिवादी राज्य के, जो संगठन का सदस्य नहीं है, विरुद्ध नुकसान की हानि पूर्ति के लिए दावा करने की हैसियत प्राप्त है अथवा इसके विपरीत क्या प्रतिवादी राज्य जो कि संगठन का सदस्य नहीं है, के लिए यह आक्षेप करना उचित है कि संगठन को अन्तरराष्ट्रीय दावा करने की हैसियत प्राप्त नहीं है। इस प्रश्न पर न्यायालय की राय यह है कि अन्तरराष्ट्रीय समुदाय के अधिकांश सदस्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले पचास राज्यों को अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुरूप यह शक्ति प्राप्त थी कि वे ऐसी सत्ता अस्तित्व में लाएं जिसका वस्तुपरक अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व हो न कि ऐसा व्यक्तित्व जिसे केवल वे ही मान्यता प्रदान करते हों तथा उसे अन्तरराष्ट्रीय दावे करने की हैसियत प्राप्त हो।

अतः न्यायालय की यह राय है कि संयुक्त राष्ट्र को, एक संगठन के रूप में, उत्तरदायी विधितः या वस्तुतः सरकार के विरुद्ध अन्तरराष्ट्रीय दावे करने की हैसियत प्राप्त है जिससे कि संयुक्त राष्ट्र को हुए नुकसान की हानि पूर्ति की जा सके। इसी प्रकार उसे किसी राज्य के विरुद्ध, चाहे वह संगठन का सदस्य हो या न हो, आहत व्यक्ति को या उसके माध्यम से हकदार व्यक्तियों को हुए नुकसान की क्षति पूर्ति के लिए अन्तरराष्ट्रीय दावे प्राप्त करने की हैसियत प्राप्त है।

* * * *

टिप्पणी :—स्थायी अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की इस सलाहकारी राय के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि संयुक्त राष्ट्र जैसे अन्तरराष्ट्रीय संगठन अन्तरराष्ट्रीय विधि के विषय हैं और उन्हें अपने सदस्य देशों तथा अन्तरराष्ट्रीय समुदाय के अन्य देशों के, जो उसके सदस्य नहीं हैं, विरुद्ध न केवल संस्थागत क्षति के लिए बल्कि उसके अभिकर्ताओं को अपने कार्यों के निष्पादन में हुई क्षति की हानि पूर्ति के लिए अन्तरराष्ट्रीय दावा करने की हैसियत प्राप्त है।

पी लॉ (इण्टरनेशनल आर्गेनाइजेशन्स, भाग 1, द्वितीय संस्करण, 1961 पृष्ठ 34-39) के अनुसार लगभग 100 ऐसे अन्तरराष्ट्रीय संगठन इस समय विद्यमान हैं और वे भी अन्तरराष्ट्रीय विधि के विषय हैं और उन्हें भी अन्तरराष्ट्रीय दावा प्राप्त करने की हैसियत प्राप्त है।

—:O:—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

4. मान्यता

मान्यता वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नया राज्य अंतरराष्ट्रीय समुदाय का सदस्य बन जाता है । इसके अधीन एक स्थापित राज्य घोषित करता है कि उसने अंतरराष्ट्रीय विधि में निर्दिष्ट राष्ट्रत्व के तत्व प्राप्त कर लिए हैं और वह अंतरराष्ट्रीय अधिकारों और बाध्यताओं के लिए हकदार हो गया है तथा वह उसके साथ पारस्परिक संबंध स्थापित करने को तैयार है। इंस्टिट्यूट ऑफ इंटरनेशनल लॉ की परिभाषा के अनुसार मान्यता प्रदान करना राज्य का स्वतंत्र कार्य है जिसके द्वारा वह स्वीकार करता है कि किसी निश्चित भूमि पर राजनीतिक रूप से संगठित मानव समुदाय का एक स्वतंत्र राज्य है तथा अंतरराष्ट्रीय विधि की बाध्यताओं को पालन करने में समर्थ है। और इस प्रकार नव-गठित राज्य को अन्तरराष्ट्रीय समुदाय का सदस्य स्वीकार कर लेने पर अन्य राज्य उसके साथ पारस्परिक संबंध स्थापित करने की इच्छा व्यक्त करते हैं। राज्यों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे स्वयं यह निश्चित करें कि नव-गठित इकाई ने राज्य के आवश्यक तत्व प्राप्त कर लिए हैं या नहीं क्योंकि वे किसी विधि के अधीन किसी प्रकार के उत्तरदायित्व के बिना अपनी स्वतंत्र इच्छा से उससे व्यवहार स्थापित करने के लिए तैयार होते हैं। उनका यह स्वतंत्र कार्य उनके हितों पर आधारित होता है अतः वह प्रत्येक मामले में विधि के सिद्धांतों पर आधारित न होकर राजनीति की आवश्यकताओं से प्रेरित होता है।

मान्यता के संबंध में दो मुख्य विचारधाराएं हैं :--

1. निर्माणात्मक
2. घोषणात्मक अथवा प्रमाणात्मक

निर्माणात्मक--इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक पोलक, हीगेल, एंजीलाटी, ओपेनहाइम, हालैण्ड तथा लाटरपैट आदि विधिवेत्ता माने जाते हैं। इसके अनुसार मान्यता द्वारा ही नई इकाई राजत्व प्राप्त करती है। मान्यता द्वारा ही वह अन्तरराष्ट्रीय समुदायों का सदस्य बनता है और अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन अधिकारों और बाध्यताओं का हकदार होता है। लाटरपैट ने इस सिद्धान्त को विधि पर आधारित मानकर यहां तक प्रतिपादित कर दिया है कि प्रत्येक राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह किसी नई इकाई को, जो राज्य तत्वों से समन्वित है, मान्यता प्रदान करे। किन्तु इस मत को अधिकतर विद्वानों तथा बड़ी शक्तियों ने अपने व्यवहार में स्वीकार नहीं किया है। इसको स्वीकार करने का अर्थ है किसी ऐसी विधि को देखा जाए जो राज्यों पर ऐसा करने का उत्तरदायित्व

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डालती हो किन्तु राज्यों के व्यवहार से ऐसी विधि का स्थापित होना प्रमाणित नहीं होता। इसमें एक कठिनाई यह भी है कि विधिशास्त्रीय दृष्टि से यदि स्थापित राज्य का यह कर्त्तव्य मान भी लिया जाए तो इसके विपरीत इस कर्त्तव्य के प्रवर्तन का अधिकार भी स्थापित होना चाहिए और इस अधिकार को किसमें स्थापित माना जाएगा—नई इकाई में या समस्त अन्तरराष्ट्रीय समाज में। राज्यों के व्यवहार से स्पष्ट होता है कि साधारणतया मान्यता राजनैतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्रदान की जाती है जो कर्तव्य के सिद्धांतों से बिल्कुल समता नहीं रखती। इस सिद्धान्त की पुष्टि संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा परामर्शी अधिकारिता के अधीन व्यक्त अभिमत में होती है जिसमें कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र में नए सदस्यों का प्रवेश चार्टर के अनुच्छेद 4 में निर्धारित की गई शर्तों पर ही होना चाहिए, बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होना चाहिए अर्थात् विधि पर आधारित होना चाहिए। इस प्रकार जब एक इकाई संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बन जाती है तो वह उसकी सामूहिक मान्यता का और राज्य तत्व समन्वित होने का प्रमाण है। अतः राज्यों का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि निजी रूप से ऐसी इकाई को मान्यता प्रदान करें जिसकी प्रामाणिकता स्वीकार हो चुकी है। किन्तु अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार में इसे स्वीकार नहीं किया गया है। आगे उन्होंने कहा कि मान्यता दोनों विचारधाराओं का समन्वय है। क्योंकि राज्य तत्व की पुष्टि के बाद मान्यता दी जाती है। राज्य तत्वों की पुष्टि की स्वीकृति घोषणात्मक है तथा उससे उत्पन्न प्रभाव यथा अधिकार निर्माणात्मक हैं।

निर्माणात्मक विचारधारा में कुछ स्पष्ट दोष हैं क्योंकि इसको स्वीकार करने से कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं यथा ऐसे राज्यों के सम्बन्ध में, जिनको कुछ राज्य मान्यता प्रदान कर देते हैं और कुछ नहीं प्रदान करते यथा वियतनाम की मान्यता, चीन की मान्यता, बंगला देश की मान्यता आदि। दूसरे यदि मान्यता से ही अन्तरराष्ट्रीय अधिकार प्राप्त होते हैं तो नई इकाई को, जिसे मान्यता प्राप्त नहीं हुई, आत्म-सुरक्षा का अधिकार नहीं होना चाहिए। किन्तु अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार में इसे न तो निजी रूप में और न संस्थागत रूप में ही स्वीकार किया गया है। व्यक्तिगत रूप में अमरीका ने दक्षिण वियतनाम के मामले में इसे स्वीकार किया है। संयुक्त राष्ट्र ने दक्षिण कोरिया के मामले में इसे स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त मान्यता के पूर्वकालिक प्रभाव का सिद्धान्त अन्तरराष्ट्रीय विधि के साधारण नियम के रूप में राज्यों के न्यायालयों द्वारा स्वीकार किया गया है। इसके अधीन मान्यता चाहे कभी दी जाए उसका प्रभाव राज्य की स्थापना विधि से माना जाता है। यह सिद्धान्त भी निर्माणात्मक विचारधारा के विपरीत है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घोषणात्मक--इस विचारधारा के पोषक विधिशास्त्रियों में हाल, वेगनर ब्रायरली, पिट कावेट तथा फिशर उल्लेखनीय हैं । इसके अनुसार नई इकाई में राजत्व और सत्ता पहले ही स्थापित हो जाती है और वह मान्यता से स्वतंत्र होते हैं । मान्यता केवल उन स्थापित तथ्यों की औपचारिक अभिस्वीकृति है । नई इकाई की सत्ता स्थापित होने के साथ ही वह अन्तरराष्ट्रीय अधिकारों और बाध्यताओं के लिए हकदार हो जाता है । मान्यता की घोषणा केवल इस बात की स्वीकृति है कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करने को तैयार है । इस विचारधारा के अनुसार मान्यता आन्तरिक विधि पर आधारित राजनैतिक कार्य है । राज्यों के व्यवहार में अधिकतर इसी का पालन किया जाता है तथा इसकी पुष्टि मान्यता के पूर्वकालिक प्रभाव के सिद्धान्त से भी होती है ।

लाटरपैट की भांति स्टार्क भी इसी मत के हैं कि यदि इन दोनों विचारधाराओं को स्वतंत्र मान कर देखा जाए तो स्पष्ट है कि सच्चाई दोनों मतों में दिखाई नहीं देती बल्कि दोनों के समन्वित रूप में प्राप्त होती है ।

मान्यता दो प्रकार की होती है—वस्तुतः और विधितः । वस्तुतः मान्यता राजनैतिक हितों से प्रभावित होकर अस्थायी रूप से दी जाती है जबकि विधितः मान्यता स्थायी होती है ।

आगे दिए गए निर्णयों में उन दोनों के अन्तर और स्थिति को न्यायिक निवर्चनों से स्पष्ट किया गया है । इसके साथ ही मान्यता के पूर्वकालिक प्रभाव के सिद्धान्त की पुष्टि की गई है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लूथर बनाम सागर

(Luther *v.* Sagor)

(1921) 3 के० बी० 532.

जून, 1918 में रूस की फैडरल रिपब्लिक सरकार ने एक आदेश द्वारा प्राइवेट और लिमिटेड कम्पनियों द्वारा यंत्र चलित आरा मशीनों तथा लकड़ी का काम करने वाले कारखानों का राष्ट्रीयकरण कर दिया और वादियों की मिल और उनके माल को बिना क्षतिपूर्ति के अपने अधिकार में कर लिया। अगस्त, 1920 में रूसी वाणिज्यिक शिष्टमण्डल ग्रेट ब्रिटेन आया और उसने प्रतिवादी सागर एंड कंपनी को कुछ प्लाई की लकड़ी बेची। जो माल उसे दिया गया उसमें रूस सरकार द्वारा अभिगृहीत वादी का माल भी था। अतः उसने इस माल को बेचे जाने पर रोक लगाए जाने के आदेश प्राप्त करने के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। वादी का तर्क था कि बिना क्षतिपूर्ति के उसका माल अवैध रूप से अभिगृहीत किया गया था। जबकि प्रतिवादी का तर्क यह था कि 1918 का रूस सरकार का अभिग्रहण आदेश प्रभुत्वसंपन्न कार्य था। अतः वह न्यायालय की अधिकारिता के बाहर है और क्रयकर्ता को वैध अधिकार प्रदान करता है। न्यायालय के समक्ष रूस सरकार की मान्यता के संबंध में विदेश मंत्रालय के तीन पत्र साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए गए। 28 जुलाई के पत्र में व्यापारिक शिष्टमंडल को ब्रिटिश न्यायालय की अधिकारिता से उन्मुक्त एक विदेशी प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया गया तथा 5 अक्तूबर के पत्र में उसे रूसी सरकार का प्रतिनिधि स्वीकार किया गया तथा न्यायालय द्वारा मान्यता संबंधी स्पष्ट सूचना के उत्तर में 27 नवम्बर को विदेश मंत्रालय द्वारा सूचित किया गया कि ब्रिटिश सरकार ने रूस की सरकार को अधिकारिक मान्यता प्रदान नहीं की है। इस सूचना के आधार पर न्यायाधीश रोस ने निर्णय देते हुए कहा कि रूसी सरकार के आदेशों की वैधता को न्यायालय द्वारा मान्यता दिए जाने के लिए आवश्यक है कि उस सरकार को प्रभुत्वसंपन्न होने की मान्यता प्राप्त हो जिसकी सूचना इस देश की सरकार प्रदान कर सकती है। सरकार द्वारा प्राप्त सूचना से स्पष्ट है कि रूस की सरकार को आधिकारिक मान्यता प्रदान नहीं की गई थी। अतः न्यायालय यह स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि वह एक प्रभुत्वसंपन्न सरकार है जो अपने आदेश द्वारा वादी की संपत्ति का वैध अभिग्रहण कर सकती है। अतः प्रतिवादी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को उस संपत्ति को बेचने से रोका जाता है। प्रतिवादी ने इस निर्णय के विरुद्ध अपील कर दी।

अपील के न्यायालय में विचाराधीन होने के काल में ही 16 मार्च, 1921 को रूस तथा ब्रिटेन की सरकारों के बीच एक वाणिज्यिक करार हो गया। तथा न्यायालय द्वारा विदेश मंत्रालय से रूस सरकार की मान्यता के संबंध में सूचना मांगने पर 20 अप्रैल के पत्र में विदेश सचिव ने सूचित किया की ब्रिटेन की सरकार रूस की सरकार को वस्तुतः सरकार के रूप में मान्यता प्रदान करती है। विदेश सचिव ने अपने 22 अप्रैल के पत्र में सूचित किया कि 14 मार्च, 1917 और 13 दिसम्बर, 1917 के बीच स्थापित सरकार को, जब तक वह हटाई नहीं जाती, रूस की अंतरिम सरकार माना गया है। इन सूचनाओं के आधार पर निर्धारित किया गया कि "मान्यता" अन्तरिम सरकार की स्थापना के समय से भूतलक्षी प्रभाव की होगी। अतः संपत्ति का अभिग्रहण तथा राष्ट्रीयकरण आदेश प्रभुत्वसंपन्न कार्य था जिसकी वैधता पर ब्रिटिश न्यायालय विचार नहीं कर सकते।

मान्यता के भूतलक्षी प्रभाव के होने के सिद्धांत की पुष्टि में न्यायालय ने अमरीका के दो मामलों के दृष्टांत दिए।

विलियम्स बनाम ब्रूकी[1] के मामले में निर्णय देते हुए न्यायाधिपति पील्ड ने कहा था कि "एक राज्य में दो सरकारें वहां स्थापित हो सकती हैं जहां राज्य के निवासी विद्रोह द्वारा संपूर्ण देश से अपने को अलग कर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लेते हैं। मूल राज्य तथा प्रजा के साथ नव स्थापित सरकार द्वारा किए गए कार्यों की वैधता उनकी अंतिम सफलता पर निर्भर करती है। यदि वह अपने को स्थायी बनाए रखने में असफल रहती है तो उसके सभी कार्य उसके साथ समाप्त हो जाते हैं किंतु सफल होकर मान्यता प्राप्त कर लेती है तो स्थापना से बाद के उसके कार्य प्रभुत्वसंपन्न कार्य मान लिए जाते हैं।"

इसी प्रकार मुख्य न्यायाधिपति फुलर ने **अण्डरहिल बनाम हरनेण्डेज**[2] के मामले में गृहयुद्ध संबंधी मामले में कहा था कि यदि सरकार को हटाने में लगा पक्ष

---

1. (1877) 96 यू० एस० 176.
2. (1897) 168 यू० एस० 250.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्तमान सरकार को अपदस्थ करने में सफल हो जाता है और नवस्थापित सरकार मान्यताप्राप्त कर लेती है तो उसके कार्य उसकी स्थापना के समय से स्वतंत्र प्रभुत्वसंपन्न के कार्य मान लिए जाते हैं। अतः मान्यता उसके कार्यों को भूतलक्षी प्रभाव से प्रदान करती है। इस मामले में रूसी सरकार की वस्तुतः मान्यता उसकी स्थापना के बाद किए गए कार्यों को भूतलक्षी प्रभाव से वैधता प्रदान करती है।

वादी के इस तर्क को कि भूतलक्षी प्रभाव का सिद्धांत केवल विधितः मान्यता पर लागू होता है, अस्वीकार करते हुए न्यायालय ने कहा कि प्रस्तुत प्रयोजन के लिए वस्तुतः तथा विधितः मामले में कोई अन्तर नहीं है।

वादी के इस तर्क को कि 1918 का अभिग्रहण आदेश हमारे देश के न्याय तथा नैतिकता के सिद्धांतों के विपरीत है और इसलिए रूस की सरकार को दी गई मान्यता को स्वीकार करने के बाद भी न्यायालय को आदेश पर ध्यान नहीं देना चाहिए, न्यायालय ने स्वीकार नहीं किया। न्यायाधिपति स्क्रूटन ने कहा कि न्यायालय जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकता, उसे वह अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं कर सकता। यदि न्यायालय उस सरकार द्वारा इंग्लैण्ड में लाए गए माल के हक के संबंध में आक्षेप नहीं कर सकता तो वह अप्रत्यक्ष रूप से उस माल के क्रेता द्वारा किए गए हक के हस्तान्तरण की वैधता के संबंध में भी आक्षेप नहीं कर सकता। उसे यह उन्मुक्ति प्रभुत्व की मान्यता से प्राप्त होती है। यदि कोई सरकार क्षतिपूर्ति के बिना दूसरे राज्य की प्रजा की संपत्ति का अभिग्रहण करती है तो उसका उचित पाय प्रभुत्वसंपन्न के रूप में उसको मान्यता न दिया जाना है। तभी न्यायालय राष्ट्रों की सौजन्यता का अतिक्रमण किए बिना उसके हक की जांच कर सकता है किंतु यह असंभव है कि ऐसी सरकार को मान्यता देने के बाद उसकी प्रजा और संपत्ति पर उसकी इच्छा के विपरीत अधिकारिता का दावा किया जाए।

"यह अभिनिर्धारित करना कि सरकार को मान्यताप्राप्त है या नहीं न्यायालय का कार्य नहीं है। इस संबंध में वह अपने राज्य के विदेश विभाग से मार्गदर्शन प्राप्त करता है।"

"वस्तुतः मान्यता का भूतलक्षी प्रभाव उस समय से होता है जब से संघर्षरत दल वस्तुतः सरकार के रूप में अपनी सत्ता को स्थापित कर लेता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय उस दल को वस्तुतः सरकार के रूप में स्थापित होने की तारीख के संबंध में विदेश मंत्रालय की सूचना से निदेशित होता है। इस मामले में विदेश मंत्रालय के पत्र से स्पष्ट है कि रूसी सरकार 1918 से वस्तुतः सरकार है।''

* * * *

टिप्पणी :--इस मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि विदेशी राज्य को वस्तुतः मान्यता प्रदान कर दिए जाने पर न्यायालय वस्तुतः सरकार के कार्यों की वैधता पर विचार नहीं कर सकता उन्हें प्रभुत्वसम्पन्न के कार्य माना जाएगा। इस संबंध में मान्यताप्राप्त राज्य को उन्मुक्ति प्राप्त होती है। मान्यता तथा उसकी विधि का निर्धारण विदेश मंत्रालय का कार्य है जिसे न्यायालय मानता है।

दूसरा सिद्धान्त जिसे इस मामले में स्वीकार किया गया है वह है मान्यता का भूतलक्षी प्रभाव होना, जिसके अन्तर्गत मान्यताप्राप्त सरकार के उसकी स्थापना के पश्चात् किए गए कार्य वैध माने जाते हैं किन्तु उनकी वैधता नियंत्रणाधीन व्यक्तियों, सम्पत्तियों तथा क्षेत्र तक सीमित होती है। इसकी पुष्टि **रिडनिया अमेरिका लाइनी जेन्लू गोव स्पोलका सक्किजना** बनाम **बोगुसलास्की**[1] तथा **सिविल एयर ट्रान्सपोर्ट इन्कारपोरेशन** बनाम **सेन्ट्रल एयर ट्रान्सपोर्ट कॉरपोरेशन**[2] के मामलों में की गई है।

---

[1] 1953 प्र० सी० 11.

[2] 1953 प्र० सी० 70.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अरन्तज़ाजू मेंडी

(Arant zazu Mendi)

(1939) ए० सी० 256.

क्या वस्तुतः सरकार के नियंत्रण धीन संपत्ति संबंधी विवाद में वस्तुतः सरकार को मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के न्यायालय की अधिकारिता से उन्मुक्ति प्राप्त है, इस प्रश्न पर अरन्त जाजू मेंडी के मामले में विचार किया गया था।

* * * *

स्पेन की रिपब्लिकन सरकार के विरुद्ध नेशनलिस्ट दल ने सशस्त्र विद्रोह करके देश के पर्याप्त भाग पर अपना कब्जा जमा लिया और वहां पर अपनी सरकार की स्थापना कर दी। नेशनलिस्ट दल ने बिल्बाओं पत्तन पर भी अपना कब्जा जमा लिया था। स्पेन का एक पोत अरन्ताज़ाजू मेंडी बिल्बाओं पत्तन पर रिजस्ट्रीकृत था और बिल्बाओं पत्तन पर नेशनलिस्ट दल द्वारा कब्जा जमा लेने के पश्चात् रिपब्लिकन सरकार ने अरन्तज़ाजू मेंडी का अधिग्रहण कर लिया जब कि वह खुले समुद्र में था। 11 अगस्त, 1937 को जब अरन्तज़ाजू मेंडी लंदन में पहुंचा तब उसके स्वामियों ने कब्जे के लिए सर्ववंधी रिट जारी करवा दिया और उस रिट के अनुसरण में उसे एडमिरेल्टी मार्शल द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। उस रिट में रिपब्लिकन सरकार सशर्त रूप से हाजिर हुई। 28 मार्च, 1938 को जनरल फ्रेंको ने लोक सेवाओं के लिए इस पोत और कुछ अन्य पोतों के अधिग्रहण के लिए डिक्री जारी कर दी। 11 अप्रैल, 1938 को स्वामियों ने कब्जे के लिए अपनी कार्यवाही रोक दी किन्तु पोत तब भी गिरफ्तारी में रहा और 13 अप्रैल को स्वामियों ने जनरल फ्रेन्को के अधिग्रहण आदेश के प्रति अपनी सम्मति की घोषणा कर दी और पोत उसके सुपुर्द कर दिया। मास्टर ने भी इस प्रकार की घोषणा की। उसी दिन रिपब्लिकन सरकार ने एक रिट जारी किया जिसे फ्रेन्को के प्राधिकारियों ने इस आधार पर अपास्त करने का प्रयास किया कि उसमें विदेशी प्रभुत्वसंपन्न राज्य को पक्षकार बनाया गया है और वह न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। न्यायालय ने विदेश मंत्रालय से इन सरकारों की स्थिति के संबंध में जानकारी मांगी। विदेश मंत्रालय से न्यायालय को यह सूचित किया कि—(1) ब्रिटेन की सरकार स्पेन को विदेशी प्रभुत्वसंपन्न राज्य के रूप में मान्यता देती है, (2) ब्रिटेन की सरकार स्पेन की रिपब्लिकन सरकार को विधितः सरकार के रूप में मान्यता देती है, (3) ब्रिटेन की सरकार रिपब्लिकन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सरकार के अलावा किसी भी सरकार को स्पेन या उसके किसी भाग की विधित: सरकार के रूप में मान्यता नहीं देती, (4) स्पेन की नेशनलिस्ट सरकार स्पेन की रिपब्लिकन सरकार से संघर्षरत है। वह यह दावा करती है कि वह स्पेन की सरकार है और वह रिपब्लिकन सरकार को उलट देने और संपूर्ण स्पेन पर अपना प्राधिकार जमाने का प्रयास कर रही है, (5) ब्रिटेन की सरकार नेशनलिस्ट सरकार को ऐसी सरकार के रूप में मान्यता देती है जिसका वर्तमान स्थिति में स्पेन के अधिकांश भाग पर वस्तुत: प्रशासनिक नियंत्रण है, (6) ब्रिटेन की सरकारने नेशनलिस्ट सरकार को किसी अन्य प्रकार की मान्यता नहीं दी है, (8) नेशनलिस्ट सरकार स्पेन में किसी अन्य सरकार के अधीनस्थ सरकार नहीं है, (9) यह प्रश्न कि क्या नेशनलिस्ट सरकार को विदेशी प्रभुत्वसंपन्न राज्य की सरकार के रूप में माना जाए, विधि का प्रश्न प्रतीत होता है जिसका उत्तर पूर्ववर्ती कथनों के प्रकाश में और विशिष्ट विवाद्यक को ध्यान में रखते हुए अथवा उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए दिया जाता है जिनके संबंध में यह प्रश्न उठाया गया है।

न्यायालय के समक्ष विचारार्थ प्रश्न यह था कि क्या स्पेन की नेशनलिस्ट सरकार इस अर्थ में विदेशी प्रभुत्वसंपन्न राज्य का प्रतिनिधित्व करती है कि उसे इस न्यायालय के समक्ष पक्षकार बनाए जाने से उन्मुक्ति प्राप्त है और यदि ऐसा है तो क्या नेशनलिस्ट सरकार को इस कार्यवाही में पोत पर कब्जा रखने के लिए पक्षकार बनाया गया है।

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विदेश मंत्रालय द्वारा दी गई जानकारी से यह प्रकट होता है कि 'वस्तुत: प्रशासनिक नियंत्रण' का अर्थ यह है कि नेशनलिस्ट सरकार प्रभुत्वसंपन्न सरकार के सभी कृत्य कर रही है। इससे अनिवार्य रूप से यह विवक्षित है कि उसका सभी संपत्ति पर, चाहे वह सैनिक या सिविल प्रयोजन के लिए हो, और सभी जलयानों पर, चाहे वे युद्ध पोत हो या वाणिज्यिक पोत हों, स्वामित्व और नियंत्रण है। इन परिस्थितियों में ऐसा प्रकट होता है कि किसी राज्य क्षेत्र पर ऐसी सभी विशेषताएं रखने वाली और उस राज्यक्षेत्र में किसी अन्य सरकार के अधीनस्थ न होने वाली सरकार को प्रभुत्वसंपन्न सरकार के रूप में और अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रयोजनों के लिए विदेशी प्रभुत्वसंपन्न राज्य के रूप में मान्यता देनी ही होगी। यह बात तात्विक नहीं है कि जिस राज्यक्षेत्र पर वह प्रभुत्वसंपन्न विदेशी शक्तियों का प्रयोग करती है वह राज्यक्षेत्र समय-समय पर घटता या बढ़ता रहता है। प्रस्तुत मामले में बास्क्यू प्रॉविन्सिज में, यह ऐसा क्षेत्र है जिसका विदेश मंत्रालय के पत्र में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, बिल्बाओं में रजिस्ट्रीकृत वाणिज्यिक पोत पर प्रभाव डालने वाली विधायी डिक्री पर विचार किया जा रहा है। अत: इस बात में कोई संदेह नहीं है कि यह डिक्री

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस राज्यक्षेत्र में प्रभुत्वसंपन्न द्वारा निकाली गई डिक्री है । प्रस्तुत प्रयोजन के लिए वस्तुतः राज्य को मान्यता देने से कोई अन्तर नहीं पड़ेगा । उन्मुक्ति प्रदान करने के लिए ऐसे सभी कारण विद्यमान हैं जो अन्तरराष्ट्रीय विधि में इस सिद्धान्त के आधार हैं । उन्मुक्ति के पारस्परिक अधिकारों की आवश्यकता भी वैसी ही होती है । यदि अधिकारिता के प्रयोग किए जाने का प्रयास किया जाना है तो प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचने की अनुभूति भी वैसी ही होती है, यदि सरकारी सम्पत्ति अभिगृहीत या क्षतिग्रस्त हो जाती है तो युद्धमान कार्रवाई वैसी ही जोखिम होता है । जो राज्य युद्धरत नहीं है और जो उन दोनों राज्यों —एक विधितः राज्य और दूसरा वस्तुतः राज्य को मान्यता देता है वह उन्हें अपने झगड़ों को राष्ट्रीय न्यायालयों की अधिकारिता में ले जाने के लिए अनुज्ञा नहीं देगा ।

इन कारणों के आधार पर विदेश मंत्रालय के पत्र द्वारा यह स्थापित हो गया है कि रिट की तारीख को स्पेन की नेशनलिस्ट सरकार विदेशी प्रभुत्वसंपन्न राज्य थी और उसे अभियोजित नहीं किया जा सकता था ।

* * * *

टिप्पणी :—1. इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वस्तुतः सरकार को विधितः सरकार की भांती मान्यता प्रदान करने वाले राज्यों के न्यायालयों में उनकी इच्छा के विरुद्ध प्रतिवादी नहीं बनाया जा सकता । उसे विधितः सरकार की भांति न्यायालय की अधिकारिता से उन्मुक्ति प्राप्त होती है । इस प्रयोजन के लिए विधितः और वस्तुतः सरकार में कोई अन्तर नहीं होता ।

2. वस्तुतः सरकार के प्रशासकीय नियंत्रणाधीन सम्पत्ति पर उसका अधिकार होता है और मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के न्यायालय उसे स्वीकार करेंगे । अतः वह उनकी अधिकारिता के अधीन वाद का विषय नहीं हो सकती ।

3. यद्यपि विवाद के समय सम्पत्ति विदेश (लन्दन) में (स्थापित) थी चूंकि उस पर वस्तुतः सरकार का कब्जा था अतः वह उस सम्पत्ति की हकदार है । यहां यह साधारण नियम लागू नहीं होगा कि विदेशों में स्थापित सम्पत्ति का अधिकार विधितः सरकार को ही है क्योंकि यह साधारण नियम नियंत्रण के सिद्धान्त पर आधारित है ।

4. राज्य द्वारा दी गई मान्यता की वैधता अन्तरराष्ट्रीय विधि की अपेक्षा राज्य की संवैधानिक विधि का प्रश्न है जिसका निर्णय न्यायालय स्वयं न करके विदेश मंत्रालय के कथन के अनुसार करते हैं ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिविल एयर ट्रान्सपोर्ट इन्कारपोरेशन बनाम सेण्ट्रल एयर ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन

(Civil Air Transport Incorporation *vs.* Central Air Transport Corporation)

(1953) ए० सी० 70.

यह मामला विधितः तथा वस्तुतः मान्यता के अंतर यथा मान्यता प्रदान करने को पूर्वकालिक प्रभाव के सिद्धांत से संबंधित है।

* * * *

सेंट्रल एयर ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन चीन सरकार की एक कंपनी थी तथा राज्य के मंत्री के नियंत्रण में कार्य करती थी। इसके पास 40 वायुयान थे जो सितम्बर, 1949 में नेशनलिस्ट सरकार के आदेश पर हांगकांग भेज दिए गए थे। 1 अक्तूबर को साम्यवादी सरकार ने आन्दोलन द्वारा अपने को चीन की सरकार घोषित कर नेशनलिस्ट सरकार के मंत्रियों को अपदस्त कर नए मंत्रियों की नियुक्ति कर दी। 9 नवम्बर को इस कंपनी के हांगकांग स्थित अध्यक्ष तथा अधिकांश कर्मचारियों ने साम्यवादी सरकार के प्रति स्वामिभक्ति की घोषणा कर दी। 12 नवम्बर को साम्यवादी सरकार ने आदेश जारी करके कर्मचारियों से कम्पनी की सम्पत्ति को अपने अधिकार में रखने को कहा तथा 13 जनवरी, 1950 के आदेश द्वारा कंपनी की संपत्ति को अपने अधिकार में लेने की घोषणा कर दी। अतः यह कंपनी नई साम्यवादी सरकार का अंग बन गई। 13 नवम्बर को नेशनलिस्ट सरकार ने हांगकांग में कंपनी के एक कर्मचारी को कार्यकारी प्रबन्धक नियुक्त कर सभी पक्ष त्यागी कर्मचारियों को सेवा से हटाने तथा कंपनी की सभी सम्पदा को अपने नियंत्रण में करने का आदेश दिया किन्तु सभी पद त्यागी कर्मचारियों ने सभी सम्पदा को अपने अधिकार में कर लिया। 1 दिसम्बर को साम्यवादी सरकार ने चीन की मुख्य भूमि के संपूर्ण क्षेत्र पर अधिकार प्राप्त कर लिया तथा नेशनलिस्ट सरकार ने अपनी स्थिति फारमोसा में दृढ़ रखी। 12 दिसंबर को नेशनलिस्ट सरकार ने इन 40 वायुयानों को दो अमरीकियों को बेच दिया जिसकी पुष्टि नेशनलिस्ट सरकार के मुख्यमंत्री ने कर दी। 19 दिसंबर, 1949 को इन अमरीकियों ने इन वायुयानों को सिविल एयर ट्रांसपोर्ट इन्कारपोरेशन को, जो अमरीका के डेल्वेयर राज्य में रजिस्ट्रीकृत थी, बेच दिया। अतः इन वायुयानों के कब्जे के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ तथा हांगकांग के न्यायालय में वाद फाइल किया गया। वादी का कथन था कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

40 वायुयान, जो हांगकांग के सरकारी हवाई अड्डे पर थे, वादी की संपत्ति और उसे उन पर एकमात्र कब्जे का अधिकार है । सेंट्रल एयर ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से न्यायालय के समक्ष कोई उपस्थित नहीं हुआ । 10 मई, 1950 के काउंसिल के आदेश के आधार पर तथ्यों की जांच करके न्यायालय ने एकपक्षीय निर्णय दिया । न्यायालय ने नेशनलिस्ट सरकार द्वारा की गई संविदा को जनहित में न किए जाने के आधार पर अवैध घोषित कर दिया और वायुयानों पर साम्यवादी सरकार के अधिकार को स्वीकार किया । इस निर्णय के विरुद्ध सिविल एयर ट्रांसपोर्ट इन्कारपोरेशन ने प्रिवी काउंसिल के समक्ष अपील की ।

हांगकांग के न्यायालय तथा न्यायिक समिति द्वारा विदेश मंत्रालय से मांगी गई सूचनाओं पर दिए गए उत्तरों से यह सिद्ध होता है कि 5/6 जनवरी, 1950 तक नेशनलिस्ट सरकार चीन की विधितः सरकार थी । उसके बाद जनवादी सरकार को मान्यता प्रदान किए जाने से नेशनलिस्ट सरकार समाप्त हो गई । 9 अक्तूबर, 1949 से जनवादी सरकार चीन के उस क्षेत्र की वस्तुतः सरकार थी जो उसके नियंत्रण में था किंतु उसके वस्तुतः सरकार बन जाने की न तो कोई सूचना दी गई थी और न ही घोषणा की गई थी ।

न्यायालय ने कहा कि "क्रय के संव्यवहार की वैधता जिस तिथि को वह किया गया उस पर देखी जानी चाहिए न कि बाद की घटनाओं के आधार पर जो भिन्न रूप से घटित हो सकती हैं । दिसंबर 12, 1949 को चीन की नेशनलिस्ट सरकार विधितः मान्यताप्राप्त सरकार थी तथा सेंट्रल एयर ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन उसका एक अंग था अतः वे वायुयान उसकी संपत्ति थे । उन वायुयानों को दो मास पूर्व हांगकांग में उड़ाकर लाया गया था और उनके स्वामियों को अधिकार था कि वे उन वायुयानों को बेचकर संपत्ति को क्रेताओं को अंतरित कर दें ।"

किसी सरकार की अपनी जंगम वस्तुओं का क्रय-विक्रय करने की नीति विदेशी अधिकरणों के पुनर्विलोकन के अध्यधीन नहीं होती और क्या इस संबंध में उसका कार्य जन हित के विरुद्ध है यह एक राजनैतिक प्रश्न है तथा ब्रिटिश न्यायालय इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि कोई विदेशी सरकार, जिसे ब्रिटिश सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई है, अपनी जनता के हितों के विरुद्ध कार्य कर रही है ।

हांगकांग के न्यायालय ने यह मत अपनाया था कि 12 दिसंबर, 1949 को नेशनलिस्ट सरकार को यह मालूम था कि ऐसा समय आ गया है कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साम्यवादी सरकार उसकी उत्तराधिकारी बनने जा रही है जिसे चीन की विधितः सरकार के रूप में मान्यता प्रदान की जाएगी, और यह कि जनहित की ओर अथवा चीन के लोगों को होने वाली क्षति पर ध्यान दिए बिना, उसने अपने उत्तराधिकारी को उलझन में डालने की दृष्टि से द्वेष के कारण इन वायुयानों को बेचने का कार्य किया था। किंतु ऐसा मानना उचित नहीं है क्योंकि यह स्थापित नहीं हो पाया है कि संपत्ति को बेचने वाले का उद्देश्य संपत्ति की आय को लेकर भाग जाना या निजी प्रयोग में लाना था। सफल लड़ाई के बाद स्थापित नई सरकार को विधितः सरकार के रूप में मान्यता प्रदान करने से कतिपय दशाओं में पूर्ववर्ती सरकार द्वारा वस्तुओं का विक्रय निष्प्रभावी किया जा सकता है। यदि पूर्ववर्ती सरकार विद्रोहियों के नियंत्रणाधीन क्षेत्र में स्थित अपनी वस्तुओं को बेच देती है तो विक्रय विधिमान्य तभी हो सकता है यदि बाद में विद्रोही हार जाते हैं और उन वस्तुओं पर पुनः पुरानी सरकार का कब्जा हो जाता है। किंतु यदि पुरानी सरकार उन वस्तुओं पर पुनः कब्जा नहीं कर पाती है और वस्तुतः नई सरकार को हिज मेजेस्टी द्वारा विधितः सरकार के रूप में मान्यताप्राप्त हो जाती है तो हिज मेजेस्टी के न्यायालयों द्वारा मान्यता के बाद क्रेता को उचित हकदारक नहीं माना जाएगा।

मुख्य रूप से मान्यता प्रदान करने का पूर्वकालिक प्रभाव वस्तुतः सरकार के कार्यों को विधिमान्य बनाना है जो बाद में विधितः नई सरकार बन जाती है न कि पूर्ववर्ती विधितः सरकार के कार्यों को अविधिमान्य बनाना। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या 5/6 जनवरी, 1950 को मान्यता के परिवर्तन से पूर्व वस्तुतः साम्यवादी सरकार के उकसाने पर या उसकी ओर से हांगकांग में इन वायुयानों के संबंध में जो कुछ हुआ उसे भूतलक्षी रूप से विधिमान्य बनाया जा सकता है जिससे कि 12 दिसंबर, 1949 की संविदा द्वारा प्रदत्त हक समाप्त हो जाए।

यह कहना एक बहुत बड़ी प्रतिपादना होगी कि विधितः मान्यता का पूर्वकालिक प्रभाव सभी मामलों में इस प्रकार मान्यताप्राप्त सरकार के राज्यक्षेत्र में किए गए कार्यों तक सीमित होना चाहिए। मान्यता प्रदान करने के पूर्वकालिक प्रभाव का सिद्धांत वस्तुतः सरकार के उन कार्यों पर लागू होता है जिन पर उसने कब्जे के आधार पर अधिकारिता प्राप्त कर ली है, किंतु वह क्या वह कब्जा गलत तरीके से प्रभावित नहीं हुआ होना चाहिए। हांगकांग अपील न्यायालय में न्यायाधिपति गोल्ड ने यह बताया था कि "**दि ब्रिस्टोना**"[1]

[1] (1938) ए० सी० 485.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में लार्ड राइट की यह प्रतिपादना कि इस बात का कोई महत्व नहीं है कि कब्जा किन तरीकों से प्राप्त किया गया था, विदेशी प्रभुत्वसंपन्न की अंतरराष्ट्रीय विधि में स्वतंत्र प्रास्थिति से उत्पन्न होने वाली प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति के दावे के संबंध में की गई थी। प्रस्तुत मामले में ऐसे किसी प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता और न्यायालय को विधिक अधिकारों के संबंध में घोषणा करनी चाहिए। यदि वे अधिकार विवाद की विषयवस्तु के कब्जे पर निर्भर करते हैं तो गलत तरीके से कब्जा प्राप्त करने वाला पक्षकार उससे कोई ऐसा लाभ प्राप्त नहीं कर सकता जो उसे पहले प्राप्त नहीं था। वायुयान जो जंगम वस्तुएं हैं, विक्रय के समय ब्रिटिश उपनिवेश, हांगकांग में स्थित थीं और उस समय वे नेशनलिस्ट सरकार की संपत्ति थीं। उन पर पक्ष बदलने वाले कर्मचारियों द्वारा भौतिक नियंत्रक स्थापित कर लेने से वस्तुतः सरकार का अधिकार कायम नहीं हो जाता। उनका यह कार्य हांगकांग सुप्रीम कोर्ट द्वारा 24 नवंबर को प्रदान किए गई व्यादेश की स्पष्ट अवज्ञा करते हुए किया गया कार्य था। यदि इन कर्मचारियों को वस्तुतः साम्यवादी सरकार की ओर से कार्य करने वाले माना जा सकता है तो उनका यह कार्य 4 नवंबर, 1949 के रिप्रजेंटेटिव ऑफ फारेन पावर्स (कंट्रोल) आर्डिनेंस का प्रत्यक्ष अतिलंघन होगा तथा हांगकांग के विधि के अनुसार दंडनीय अपराध होगा। इस अध्यादेश द्वारा किसी भी व्यक्ति द्वारा गवर्नर की स्वीकृति के बिना किसी विदेशी शक्ति के, चाहे वह वस्तुतः सरकार हो या विधितः सरकार हो, के लिए कार्य करना वर्जित तथा दंडनीय घोषित किया गया था। गवर्नर ने ऐसी कोई स्वीकृति प्रदान नहीं की थी। इन परिस्थितियों में उन व्यक्तियों का, जिन्होंने उन वायुयानों पर अवैध नियंत्रण कर लिया था, कार्य पूर्वकालिक प्रभाव के सिद्धांत को लागू करने का कोई आधार स्थापित नहीं करता। अतः केंद्रीय जनवादी सरकार इन वायुयानों पर कोई उत्तम हक या कब्जा स्थापित नहीं कर सकी जो नेशनलिस्ट सरकार के कब्जे को समाप्त कर सकती। अतः नेशनलिस्ट सरकार कब्जे की हकदार है और उसे वायुयानों पर अधिकारिता प्राप्त थी। कब्जे के आधार पर अधिकारिता तभी प्राप्त होती है जब कब्जा गलत तरीके से प्राप्त न किया गया हो तथा मान्यता के पूर्वकालिक प्रभाव का सिद्धांत वस्तुतः सरकार के उन कार्यों पर लागू होता है जिन पर उसे कब्जे के आधार पर अधिकारिता प्राप्त हो।

* * * *

टिप्पणी :--इस मामले में विधितः मान्यता एवं वस्तुतः मान्यता के सिद्धान्त तथा मान्यता के पूर्वकालिक प्रभाव के सिद्धान्तों का निर्धारण किया गया है।

1. वस्तुतः सरकार द्वारा अपनी अधिकारिता के अन्तर्गत किए गए कार्य विधितः

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सरकार के रूप में मान्यताप्राप्त कर लेने के बाद पूर्वकालिक प्रभाव के सिद्धान्त के अन्तर्गत वैधता प्राप्त कर लेते हैं ।

2. उस राज्यक्षेत्र के, जो वस्तुतः सरकार के अधीन है, बाहर विधितः सरकार का अधिकार होता है और अपने अधिकाराधीन सम्पत्ति का वह वैध रूप से विक्रय कर सकती है ।

3. वस्तुतः सरकार विधितः सरकार के वैध कार्यों को विधितः सरकार के रूप में मान्यता प्राप्त करने पर अवैध घोषित नहीं कर सकती और न विक्रय की गई जंगम वस्तुओं पर कब्जे की या विक्रय को बातिल करने की हकदार ही होती है । ऐसे कार्यों पर पूर्वकालिक प्रभाव का सिद्धान्त लागू नहीं होता ।

4. वस्तुतः सरकार के नियंत्रणाधीन सीमाक्षेत्र के बाहर स्थित जंगम वस्तुएं भी उसकी अधिकारिता में हो सकती हैं यदि उन पर उसका वैध नियंत्रण स्थापित है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

टिनाको कन्सेशन्स

(The Tinoco Concessions)

ग्रेट ब्रिटेन-कोस्टा रिका आरबिट्रेशन (Great Britain-Costa Rica Arbitration)

(1923)[1] आर० आई० ए० ए० 369.

यह मामला अविधिमान्य ढंग से स्थापित सरकार की मान्यता से तथा उसके द्वारा किए गए कार्यों और संविदाओं से उत्पन्न दायित्वों से उत्तरवर्ती सरकार के बाध्य होने, यदि उसके यह कार्य वैध ढंग से किए गए हों, आदि महत्वपूर्ण सिद्धान्तों से संबंधित है।

* * * *

जनवरी, 1917 को कोस्टा रिका सरकार के युद्ध सचिव टिनाको ने सैनिक विद्रोह द्वारा सत्ता हथिया ली और पुनः निर्वाचन करा कर नया संविधान लागू किया। टिनाको की सरकार अगस्त, 1919 तक सत्ता में रही तथा सितम्बर में उसकी सरकार की हार हो जाने के बाद नई सरकार की स्थापना हुई जिसने पुराने संविधान को पुनः लागू कर दिया। टिनाको सरकार ने एक ब्रिटिश कम्पनी को करेन्सी नोट्स छापने संबंधी कुछ अधिकार प्रदान किया था, एक पेट्रोलियम कम्पनी को कुछ संविदाएं, प्रदान की थीं तथा कनाडा के रायल बैंक से ऋण लिया था। अगस्त 1922 में नई सरकार ने अकृतता विधि (लॉ ऑफ नल्लिटीज़) पारित कर टिनाको सरकार द्वारा की गई संविदाओं को विधितः अमान्य घोषित कर दिया तथा उनके अधीन उत्पन्न दायित्वों को अस्वीकार कर दिया। ब्रिटेन द्वारा इन कम्पनियों के मामलों के संबंध में कोस्टा रिका सरकार के साथ विवाद उठाए जाने पर दोनों देशों द्वारा मध्यस्थता संधि पर हस्ताक्षर हुए और यह मामला विलियम एच० टैफ्ट को मध्यस्थता के लिए सौंप दिया गया।

मध्यस्थ के समक्ष ब्रिटेन ने ये तर्क दिए कि यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने टिनाको की सरकार को मान्यता प्रदान नहीं की थी तथापि टिनाको की सरकार 2 वर्ष 9 मास तक कोस्टा रिका की वस्तुतः सरकार थी। इस काल में उसके प्राधिकार को चुनौती देने वाली कोई सरकार नहीं थी तथा उसने सम्पूर्ण देश का शासन जनता की सहमति से शान्तिपूर्ण ढंग से किया। उत्तरवर्ती सरकार अन्तरराष्ट्रीय विधि की अवहेलना करके

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही ब्रिटिश नागरिकों के प्रति पूर्ववर्ती सरकार के कार्यों से उत्पन्न दायित्वों का तथा उनकी सम्पत्ति का अधिहरण और अधिकारों का हनन कर सकती है । ऐसा करने वाली अकृतता विधि स्वयं अकृत है और उसे प्रभावहीन माना जाना चाहिए । पूर्ववर्ती सरकार द्वारा वैध रूप से की गई संविदाओं का पालन किया जाना चाहिए ।

इसके विपरीत कोस्टा रिका सरकार ने ये तर्क दिए :—

1. टिनाको सरकार अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन वस्तुतः सरकार नहीं थी ।

2. ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनी प्रजा कम्पनियों की ओर से संविदाओं और बाध्यताओं के लिए जो दावे किए हैं वे अवैध हैं और उत्तरवर्ती सरकार पर आबद्धकर नहीं हैं क्योंकि टिनाको सरकार 1871 के कोस्टा रिका संविधान के अनुसार स्थापित नहीं की गई थी ।

3. ब्रिटिश सरकार टिनाको सरकार के कार्यों और संविदाओं के आधार पर दावे करने से विवंधित है क्योंकि उसने टिनाको सरकार को मान्यता नहीं दी थी ।

डाक्टर जॉन बैसेट मूर ने अपनी पुस्तक डाइजेस्ट आफ इण्टरनेशनल लॉ (वाशिंगटन, 1906, वाल्यूम 1, पृष्ठ 249) में अन्तरराष्ट्रीय विधि के कुछ साधारण सिद्धान्तों का वर्णन किया है जिनको ऐसी सार्वदेशिक उपमति प्राप्त हो गई है कि वे अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम के रूप में सुस्थापित हो गए हैं :—

"सरकार या राज्य की आन्तरिक नीति में परिवर्तन अन्तरराष्ट्रीय विधि में उसकी स्थिति को प्रभावित नहीं करते हैं ।...यद्यपि सरकारें बदल जाता हैं तथापि राष्ट्र बने रहते हैं और उनके अधिकार और बाध्यताएं अक्षुण्ण रहते हैं ....." "राज्यों की अखण्डता के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं । राज्य उन सरकारों द्वारा, जो अस्तित्व में नहीं रहीं, किए वचनबन्धों से आबद्ध होता है, पुनः स्थापित सरकार साधारणतया उस सरकार के कार्यों के लिए दायी होती है जिसने बलपूर्वक कब्जा जमा लिया हो ।".....

"सरकार का उद्गम और संगठन साधारणतया आन्तरिक चर्चा और विनिश्चय के प्रश्न होते हैं । विदेशी शक्तियां विद्यमान वस्तुतः सरकार से तभी व्यवहार करती हैं जब पर्याप्त रूप से उसके स्थायित्व

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का युक्तियुक्त आश्वासन मिल जाता है तथा उन व्यक्तियों की उपमति प्राप्त हो जाती है जो उस सरकार को अपना अस्तित्व कायम रखने और उसे अपनी आन्तरिक कर्तव्यों और बाह्य बाध्यताओं का निर्वहन करने के लिए योग्य बनाते हैं ।"

प्रोफेसर बोचर्ड ने अपनी नई कृति "डिप्लोमेटिक प्रोटक्शन ऑं सिटीजन्स एब्राड" (न्यूयार्क 1915, पृष्ठ 206, 207) में यही सिद्धा प्रतिपादित किया है ।

"किसी राज्य की नियमित रूप से गठित सरकार का स्थान लेने वाली वस्तुतः सरकार राज्य के लिए आबद्धकर होती है । अन्तरराष्ट्रीय दायित्वों के संबंध में वह राज्य का प्रतिनिधित्व करती है और वह नियमित सरकार के ऋणों की उत्तराधिकारी होती है और उसकी सभी बाध्यताएं उत्तरवर्ती अधिकारगत सरकार की बाध्यताएं बन जाती हैं । उसके द्वारा अर्जित ऋण और की गई संविदाएं राज्य पर आबद्धकर होती हैं तथा वस्तुतः सरकार के प्राधिकारियों के सरकारी कार्यों के लिए राज्य उत्तरदायी होता है । साधारणतया उसके द्वारा की गई संधियां राज्य की विधिमान्य बाध्यताएं होती हैं । वह राष्ट्रीय राज्यक्षेत्र का अन्यसंक्रामण कर सकती हैं और उसके न्यायालयों के निर्णय उस सरकार के अस्तित्व में न रहने पर भी प्रभावी स्वीकार किए जाते हैं । इन नियमों का अपवाद लेटिन अमरीका के कुछ राज्यों के व्यवहार में यदाकदा देखा गया है । वे राज्य, जब नियमित सरकार सत्ता हथियाने वाली सरकार को हटाकर पुनः नियंत्रण प्राप्त करने में सफल हो जाती हैं तब सत्ता हथियाने वाली मध्यवर्ती सरकार के कार्यों को अकृत और शून्य घोषित कर देते हैं । किन्तु राज्य के नाम से विधिमान्य रूप से किए गए और अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप के कार्यों को आसानी से निराकृत नहीं किया जा सकता तथा विदेशी सरकारें साधारणतया उनके आबद्धकर होने पर जोर डालती हैं । जहां तक राज्य का प्रतिनिधित्व करने का सम्बन्ध है वस्तुतः सरकार की वैधता या संवैधानिक औचित्य का अन्तरराष्ट्रीय तौर पर कोई महत्व नहीं है ।"

* * * *

इस बात का पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि जब टिनाको ने पद-त्याग किया उस समय से कुछ मास पूर्व तक उसका वास्तविक और शान्ति-पूर्ण प्रशासन नहीं था और उसका किसी ने प्रतिरोध या विरोध या प्रतिवाद

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं किया था । इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या उसकी सरकार को कोस्टा रिका सरकार की अखण्डता की कड़ी माना जाना चाहिए ? न्यायालय के मतानुसार साक्ष्य के आधार पर टिनाको सरकार वास्तविक विदेशी सरकार थी ।

कोस्टा रीका सरकार ने बलपूर्वक यह कहा कि टिनाको सरकार को बहुत सी प्रधान शक्तियों ने मान्यता प्रदान करने से इन्कार कर दिया था अतः उसे कोस्टा रीका की सरकार नहीं माना जा सकता । यह सही है कि साधारणतया किसी सरकार को अन्य राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्रदान न करना अन्तरराष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत इस बात का उपयुक्त साक्ष्य माना जाता है कि विद्यमान सरकार के रूप में मान्यता दिए जाने के लिए आवश्यक स्वतंत्रता और नियंत्रण उसे प्राप्त नहीं है । किन्तु जब राष्ट्रों द्वारा किसी सरकार की अमान्यता उसके प्रभुत्व और प्रशासनिक नियंत्रण पर आधारित न होकर उसके उद्‌गम के अनौचित्य या अनियमितता पर आधारित होती है तो उनकी अमान्यता साक्षात्मक महत्व खो बैठती है ।

यह सत्य है कि अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली ने उसे मान्यता प्रदान करने से इन्कार कर दिया था तथा उसके द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा किए जाने के बावजूद उसे शान्ति संधि पर हस्ताक्षर नहीं करने दिया गया था किन्तु अमरीका द्वारा अमान्यता 1907 की वाशिंगटन संधि के उपबन्धों पर आधारित है । जो बात अमरीका के सम्बन्ध में सही है सम्भवतः कुछ सीमा तक वही उसके यूरोपीय युद्ध के मित्र राष्ट्रों के संबंध में भी सही है । किसी भी कारण से ऐसी अमान्यता अन्तरराष्ट्रीय विधिक मापदण्ड के अनुसार टिनाको सरकार के वस्तुतः सरकार के स्वरूप के साक्ष्य के महत्व को कम नहीं कर सकती ।

कोस्टा रीका ने यह भी तर्क दिया है कि टिनाको सरकार को वस्तुतः सरकार नहीं माना जा सकता क्योंकि वह 1871 के संविधान के अनुसार स्थापित नहीं की गई थी । इसका यह अर्थ हुआ कि जो सरकार पूर्ववर्ती संविधान के अनुसार स्थापित नहीं की जाती वह जनता की सहमति से लम्बे समय तक शान्तिपूर्ण प्रशासन बनाए रखने पर भी वस्तुतः सरकार नहीं होती । किन्तु इस मत को स्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार विद्यमान सरकार लभूत विधि के प्रतिकूल आन्दोलन द्वारा नई सरकार स्थापित न

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की जा सकती । ऐसा न तो हो सकता है और न ही सही है । क्योंकि आन्दोलन द्वारा किए गए परिवर्तन से उस समय विद्यमान मूलभूत विधि के अधीन सत्ताधारी प्राधिकारियों के विधिशासन में गड़बड़ हो जाती है तथा जहां तक विधि शासन में परिवर्तन आवश्यक होता है वहां तक मूलभूत विधि अपास्त हो जाती है । एक ऐसे आन्दोलन के बारे में बात करना जिससे ऐसी वस्तुतः सरकार का सृजन होता है जो पूर्ववर्ती संविधान की सीमाओं के अनुरूप हो, विरोधाभास होगा । अन्तरराष्ट्रीय दृष्टि से वही सरकार चलती रहती है किन्तु उसकी स्थापक आन्तरिक विधि वही नहीं रहती । प्रश्न यह नहीं है कि नई सरकार कहां से शक्ति प्राप्त करती है बल्कि प्रश्न यह देखने का है कि क्या वस्तुतः उसने अपने आप को इस प्रकार स्थापित कर लिया है कि उसके प्रभावाधीन लोगों ने उसके नियंत्रण को मान्यता प्रदान कर दी है तथा उसका स्थान ग्रहण कर सकने वाली कोई विरोधी शक्ति विद्यमान नहीं है । क्या सरकार के रूप में वह अपने कार्यों का संचालन कर रही है और उसकी अपनी अधिकारिता में उसका आदर किया जाता है ? कोस्टा रीका सरकार के इस तर्क को अस्वीकार किया जाता है ।

कोस्टा रीका सरकार की ओर से 20 दिसम्बर, 1907 की वाशिंगटन संधि के प्रति निर्देश किया गया था जो सेण्ट्रल अमरीका की रिपब्लिकन सरकारों द्वारा की गई थी जिसमें यह करार किया गया था कि संविदाकारी पक्षकारों की सरकारें इन पांच रिपब्लिकन राज्यों में राज विप्लव या आन्दोलन द्वारा सत्ता हथियाने वाली किसी सरकार को तब तक मान्यता नहीं देगी जब तक कि संविधान के अनुसार स्वतंत्र निर्वाचनों के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधि उसे मान्यता प्रदान नहीं कर देते । किन्तु ऐसी संधि से ऐसी सरकार की प्रजा के अधिकारों को प्रभावित नहीं कर सकती जिसने उस संधि पर हस्ताक्षर न किए हों अथवा वस्तुतः सरकार सम्बन्धी अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम को संशोधित या परिवर्तित नहीं कर सकती । अतः टिनाको सरकार के कोस्टा रीका की वस्तुतः सरकार होने के संबंध में इसे लागू नहीं किया जा सकता ।

कोस्टा रिका ने इस बात पर भी आक्षेप किया है कि चूंकि ग्रेट ब्रिटेन ने टिनाको सरकार को मान्यता प्रदान नहीं की थी इसलिए वह अपनी प्रजा की ओर से टिनाको सरकार के कार्यों और संविदाओं पर आधारित दावे करने से विबन्धित है ।

ब्रिटेन का तर्क यह था कि उसके द्वारा मान्यता प्रदान न किए जाने पर भी टिनाको सरकार वस्तुतः सरकार थी और वह ब्रिटेन के नागरिकों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में अधिकार सृजित कर सकती थी और अब वह उन्हीं के संरक्षण की मांग कर रहा है। निस्संदेह ग्रेट ब्रिटेन द्वारा वस्तुतः सरकार को मान्यता प्रदान करने में असफल रहना इस बात का साक्ष्य है कि कोस्टा रिका की सरकार के जिस स्वरूप को वह अब मान्यता प्रदान कर रहा है उसे वह पहले स्वीकार नहीं करता था किन्तु यह बात उसे अपनी स्थिति बदलने से नहीं रोक सकती ।

यह समझ में नहीं आ रहा है कि ऐसे मामलों में साम्यापूर्ण विबन्ध का आधार क्या है । वस्तुतः सरकार को मान्यता प्रदान करने में असफल रहने के आधार पर ही उत्तरवर्ती सरकार ने अपनी स्थिति में परिवर्तन नहीं किया है । मान्यता प्रदान न करने से तो उत्तरवर्ती सरकार को सत्ता में आने के लिए सहायता मिली होगी, किन्तु पूर्वतन सरकार के वस्तुतः अस्तित्व के आधार पर दावे प्रस्तुत करने और उसके साथ व्यवहार करने से उत्तरवर्ती सरकार को कपट या विश्वासभंग की प्रकृति की कोई क्षति नहीं हुई है । सच्चाई प्रमाणित करने के लिए साम्यापूर्ण विबन्ध विबन्धित किए जाने वाले व्यक्ति के ऐसे पूर्व आचरण पर आधारित होना चाहिए जिसके कारण विबंध का दावा करने वाला व्यक्ति ऐसी स्थिति में आ गया हो जिसमें सच्चाई से उसे क्षति पहुंचेगी । यहां ऐसी कोई बात नहीं है ।

कोस्टा रिका सरकार की ओर से चौथा तर्क यह दिया गया था कि दोनों ही दावेदार या तो कोस्टा रिका सरकार के साथ अपनी संविदात्मक बाध्यताओं द्वारा या कोस्टा रीका की विधियों द्वारा, जिनका वे समर्थन करते हैं आबद्ध हैं कि वे अपने दावे अपनी गृह सरकार के राजनयिक हस्तक्षेप के रूप में प्रस्तुत नहीं करेंगे बल्कि कोस्टा रिका के न्यायालयों में प्रस्तुत करेंगे । वस्तुतः यह मध्यस्थ की अधिकारिता का उपशमन अभिवाक् है जो मध्यस्थता की शर्तों के अधीन कोस्टा रिका कर सकता है । जो सुविधाएं दी गई हैं उनकी परिसीमाओं की परिधि के भीतर टिनाको सरकार द्वारा सुविधाएं देने की शक्ति या कोस्टा रिका की विद्यमान सरकार द्वारा उसे मान्यता प्रदान करने की बाध्यता का प्रश्न शामिल नहीं है । उनके अन्तर्गत तो संविदा का निर्वचन और अर्थान्वयन शामिल है न कि सरकार के अस्तित्व का मूलभूत प्रश्न ।

रायल बैंक की संविदा की शर्तों में यह भ्रम उत्पन्न नहीं होता कि वह अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए राजनयिक हस्तक्षेप के लिए अपील नहीं कर सकता । उनसे स्पष्टतया यह दर्शित होता है कि उसके

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उद्गम की सरकार द्वारा प्रदत्त शक्तियों से कोस्टा रिका में उसकी बैंककारी शक्तियों में वृद्धि नहीं हो सकती और यह कि उसके अधिकारों का विनिश्चय कोस्टा रिका की विधि के अनुसार कोस्टा रिका के न्यायालयों द्वारा किया जाना है । किन्तु इससे यह मानना कि सुनवाई के बिना उसके अधिकारों की विधायी अकृतता से बचने के लिए उसकी अपनी सरकार द्वारा राजनयिक हस्तक्षेप के अधिकार से इन्कार करना है, अतिशयोक्ति होगा ।

कई महत्वपूर्ण मध्यस्थ पंचाटों यथा एल० ट्रि युनको के मामले, **सल्वाडोर कमर्शियल कम्पनी** बनाम **सल्वाडोर**[1]; **नार्थ अमरीकन ट्रेडिंग कम्पनी का मामला**[2]; **मैक्सिकन यूनियन रेलवे लिमिटेड का मामला**[3] में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसे निर्बन्धन राष्ट्रीय सरकार पर आबद्धकर नहीं होते और वे उसे अपने राष्ट्रिकों के संरक्षण के लिए राजनयिक कार्य करने से नहीं रोकते ।

एसे निर्बंधन प्रस्तुत मामले जैसे मामलों को वे उसे अपने राष्ट्रिकों के संरक्षक के लिए लागू नहीं होते जहां सत्ता हथियाने वाली सरकार के कार्यों या संविदाओं के लिए प्रत्यावर्तित सरकार की बाध्यता अन्तर्वलित हो । प्रत्यावर्तित सरकार के न्यायालय प्रत्यावर्तित सरकार की विधि को लागू करने के लिए उसके संविधान के अधीन आबद्ध हैं तथा उनके विनिश्चय आवश्यक रूप से इस लिखत की परिसीमाओं से प्रभावित होते हैं । इससे यह हो सकता है कि न्यायालय ऐसी अन्तर-राष्ट्रीय विधि को पूर्णतया प्रभावशील न करें जो उस राष्ट्रीय विधि से भिन्न हो जिसे राष्ट्रीय न्यायालय प्रत्यावर्तित संविधान के अधीन लागू करने के लिए आबद्ध हों । इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्यावर्तित सरकार सत्ता हथियाने वाली वस्तुतः सरकार के जिसकी वह उत्तराधिकारी होती है, कार्यों से उत्पन्न बाध्यताओं पर अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण से उस संविधान का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ सकता जिसे यद्यपि पुनः स्थापित कर दिया जाता है, तथापि वह इस विचारण के प्रयोजन के लिए वस्तुतः एक ऐसे नए विधान के समान है जो बाध्यताओं के उत्पन्न होने के समय लागू नहीं था ।

---

1. (1902) यू० एस० 838.
2. (1926) 4 आर० आई० ए० ए० 26.
3. (1930) 5 आर० आई० ए० ए० 15.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह सुझाव देना इस बात का उत्तर नहीं है कि विचाराधीन मामले में प्रत्यावर्तित संविधान का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाए कि वह कोस्टा रिका के न्यायालयों को अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों को प्रभावशील करने से नहीं रोकता है। इतना ही पर्याप्त है कि उन न्यायालयों द्वारा प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता के किसी प्रयोग में प्रत्यावर्तित संविधान नियंत्रक तत्व हैं और अन्य राष्ट्र ऐसे अधिकरण के प्रति आक्षेप कर सकते हैं जो अपना विनिश्चय करते समय इस तथ्य के बाद अधिनियमित विधान को ध्यान में रखते हों।

किसी कानून द्वारा किसी संधि के एकतरफा निरसन से उस संधि के अधीन उत्पन्न होने वाले अधिकारों पर प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु अन्तरराष्ट्रीय अधिकरण अपने विनिश्चय द्वारा उस संधि को प्रभावशील करेगा और उसका निरसन करने वाले कानून के बारे में यह अभिनिर्धारित करेगा कि वह प्रभावहीन है।

* * * *

सेण्ट्रल कोस्टा रिका पेट्रोलियम कम्पनी को दी गई सुविधाएं तथा रायल बैंक ऑफ कनाडा के ऋण के दावे टिनाको संविधान के अधीन अवैध थे अतः उन्हें अस्वीकार कर दिया गया।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले में यह सिद्धान्त निर्धारित किया गया है कि यदि कोई नई सरकार अपने अधीन क्षेत्र पर नियंत्रण रखती है, उसे जनता की सहमति प्राप्त है और वह आबद्ध शान्तिपूर्ण ढंग से प्रशासन का संचालन करती है तो ये तथ्य उसकी मान्यता के लिए साक्षात्मक महत्व के हैं किन्तु जब इन तथ्यों की उपेक्षा कर अन्य कारणों से मान्यता अस्वीकार की जाती है तो वह अमान्यता उक्त सरकार की अन्तरराष्ट्रीय स्थिति के संबंध में प्रमाणित साक्ष्य नहीं मानी जा सकती।

2. अविधिमान्य ढंग से स्थापित वस्तुतः सरकार राज्य की अखण्डता की कड़ी होती है और उत्तरवर्ती सरकार उसके द्वारा सृजित बाध्यताओं से आबद्ध होती है किन्तु उत्तरवर्ती सरकार केवल उसके विधिमान्य कार्यों एवं संविदाओं के लिए उत्तरदायी होती है। इस सिद्धान्त की पुष्टि **युनाइटेड स्टेट्स बनाम मैक्सिको ओपीनियन्स** के मामले में की गई है।

3. कोई राष्ट्र ऐसी सरकार के जिसे उसने मान्यता प्रदान नहीं की है, कार्यों से उत्पन्न बाध्यताओं को, प्रवर्तित करने के लिए उत्तरवर्ती सरकार के विरुद्ध दावा ला सकता है।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हेलसिलासी बनाम केबिल एण्ड वायरलैस लिमिटेड
(Haile Selassie *vs.* Cable and Wireless Ltd.)

(1937) चांसरी 182.

यह मामला विधितः तथा वस्तुतः मान्यता के अन्तर से सम्बन्धित है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि किसी देश में वस्तुतः और विधितः सरकारों की स्थापना की स्थिति में वस्तुतः सरकार का अधिकार उसके नियंत्रणाधीन क्षेत्र के व्यक्तियों और सम्पत्तियों तक सीमित होता है; उससे बाहर विधितः सरकार का अधिकार होता है।

* * * *

इंग्लैण्ड की केबिल वायरलैस कम्पनी को इथोपिया सरकार ने ग्रेट ब्रिटेन तथा इथोपिया के बीच रेडियो टेलीग्राफ सेवा चालू करने तथा अडीस अबाबा में वायरलैस स्टेशन स्थापित करने का कार्य सौंपा और कार्य के सम्पादन के लिए उसे कुछ ऋण दिया गया। 1935 में इटली ने इथोपिया के बहुत बड़े भाग को अपने अधिकार में कर लिया तथा 1936 में ब्रिटेन द्वारा उसे इथोपिया की वस्तुतः सरकार के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई। जब इथोपिया पर इटली का अधिकार हो गया तो इथोपिया के सम्राट ने ऋण के प्रतिसंदाय के लिए इस कम्पनी के विरुद्ध दावा फाइल किया। कम्पनी ने न्यायालय में तर्क प्रस्तुत किया कि सम्राट सत्तारहित है क्योंकि इटली इथोपिया की वस्तुतः सरकार है अतः वह दावा नहीं कर सकता। न्यायालय ने विदेश मंत्रालय से सम्राट की स्थिति के सम्बन्ध में सूचना मांगी। विदेश विभाग ने सूचित किया कि वादी इथोपिया के सम्राट के रूप में विधितः मान्यताप्राप्त है तथा इथोपिया की इटली सरकार को वस्तुतः सरकार की मान्यताप्राप्त है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वस्तुतः सरकार के नियंत्रणाधीन क्षेत्र से बाहर व्यक्ति और सम्पत्ति के संबंध में विधितः सरकार दावा कर सकती है। अतः सम्राट को ऋण की रकम वसूल करने का अधिकार है। इस निर्णय के विरुद्ध प्रतिवादी कम्पनी ने अपील कर दी। किन्तु जब अपील न्यायालय के समक्ष विचाराधीन थी ब्रिटेन ने इटली को इथोपिया की विधितः सरकार के रूप में मान्यता प्रदान कर दी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मान्यता के इस परिवर्तन से सम्राट कर्जे को प्राप्त करने के अधिकारी नहीं रह जाते हैं । विदेश मंत्रालय के 30 नवम्बर, 1938 के प्रमाण-पत्र से स्पष्ट है कि ब्रिटेन की सरकार हेली सिलासी को इथोपिया के विधितः सम्राट के रूप में मान्यता प्रदान नहीं करती है और अब इटली के सम्राट को इथोपिया का विधितः सम्राट के रूप में मान्यता प्रदान करती है । इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं :—

(i) एबीसीनिया के सम्राट के रूप में इटली के राजा को एबीसीनिया राज्य की लोक सम्पत्ति पर उत्तराधिकार का अधिकार है ।

(ii) उत्तराधिकार का अधिकार उस तिथि से (यहां दिसम्बर, 1936) प्रभावशील होगा जब से एबीसीनिया के वस्तुतः प्रभुत्व-सम्पन्न के रूप में इटली के राजा को वस्तुतः मान्यता प्रदान की गई है ।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले में निचले न्यायालय में निर्णय देते हुए न्यायाधीश बैनेट ने कहा कि अरन्तजाजू मेंडी तथा वैकोडिविल्यो के निर्णयों के आधार पर यह सुस्थापित विधि है कि वस्तुतः नियंत्रणाधीन क्षेत्र के व्यक्तियों और सम्पत्तियों पर वस्तुतः सरकार का अधिकार होता है और उसके अन्तर्गत किए गए उसके कार्य वैध होते हैं किन्तु उस देश पर विजय द्वारा नियंत्रण स्थापित करने और वस्तुतः सरकार की मान्यताप्राप्त करने से उस क्षेत्र के शासक की विधितः मान्यता समाप्त नहीं हो जाती और वह अपने नियंत्रणाधीन क्षेत्र से बाहर स्थित सम्पत्ति को वसूल करने के लिए दावा कर सकता है । केवल विजय और वस्तुतः मान्यता से विधितः मान्यता और उससे उत्पन्न अधिकार समाप्त नहीं हो जाते ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्डिनिया अमेरिका लाइनी जेग्लुगोव स्पोल्का एक्यजना वनाम बोगुस्लास्की

(Gdynia Ameryka Linie Zeglugowe Spolka Akeyjna *vs.* Boguslawski)

(1953) ए० सी० 11.

यह मामला मान्यता के पूर्वकालिक प्रभाव के सिद्धान्त से सम्बन्धित है । इसमें मान्यता के निर्धारण तथा वस्तुतः मान्यता की क्षेत्रीय अधिकारिता के प्रश्न पर विचार किया गया है । 29 मार्च, 1939 के अधिनियम के अनुसार पोलैण्ड की पोत परिवर्तन कम्पनियों के सर्वोच्च प्रबन्ध का अधिकार उद्योग और वाणिज्य मंत्री को अन्तरित कर दिया गया था । जून 28, 1945 को वारसा में पोलैण्ड की नेशनल युनिटी दल की वस्तुतः सरकार स्थापित हो गई थी । द्वितीय युद्ध के दौरान जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पर कब्जा कर लेने के बाद लन्दन में पोलैण्ड की विधितः सरकार निर्वासित सरकार के रूप में स्थापित थी । इसने वस्तुतः सरकार की स्थापना के बाद पोत परिवहन कम्पनियों के सभी कर्मचारियों तथा तटीय स्टाफ की सेवाएं समाप्त करने का निर्णय किया तथा अधिकारियों और नाविकों को यह विकल्प दिया कि वे चाहें तो तीन मास का उपदान लेकर अवकाश ग्रहण कर सकते हैं । उपदान का संदाय कम्पनियों की निधियों से किया जाना था । 5/6 जुलाई, 1945 को अर्धरात्रि से ब्रिटेन की सरकार ने पोलैण्ड की वारसा सरकार को विधितः सरकार के रूप में मान्यता प्रदान कर दी । 5 जुलाई, 1945 को वोगुस्लास्की ने, जो ग्डिनिया लाइनी की सेवा में था, सेवा से त्यागपत्र दे दिया तथा विधितः सरकार द्वारा स्वीकृत और घोषित नीति के अधीन प्रतिकर के रूप में तीन मास के वेतन की मांग की । इस मांग को कम्पनी द्वारा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि नई सरकार ने पूर्वतन विधितः सरकार के आदेशों को अस्वीकार कर दिया है । अतः प्रार्थी ने प्रतिकर के लिए कम्पनी के विरुद्ध एक वाद इंग्लैण्ड के न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया ।

प्रथम न्यायालय तथा अपील न्यायालय द्वारा कम्पनी के दायित्वाधीन होने की घोषणा किए जाने पर हाऊस ऑफ लार्ड्स में अपील की गई ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय के समक्ष विवाद्यक यह था कि वस्तुतः सरकार के विधितः सरकार के रूप में जुलाई 5/6, 1945 की अर्धरात्रि से मान्यता दिए जाने का समय तथा क्षेत्र के सम्बन्ध में क्या प्रभाव होगा ।

लार्ड पोर्टर के मतानुसार विदेश मंत्रालय की मान्यता सम्बन्धी सूचना से स्पष्ट होता है कि—

1. 5/6 जुलाई, 1945 की अर्धरात्रि से पोलैण्ड की वारसा स्थित नेशनल यूनिटी की अन्तरिम सरकार को ब्रिटेन द्वारा विधितः मान्यता प्रदान किए जाने से लन्दन स्थित पोलिश सरकार की मान्यता उसी समय से समाप्त हो जाती है ।
2. वारसा सरकार के पत्र का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि 1921 के पोलैण्ड के संविधान के अनुच्छेद 45 के अनुसार 28 जून, 1945 को नेशनल यूनिटी की अन्तरिम पोलिश सरकार स्थापित हुई थी ।
3. मान्यता के पूर्वकालिक प्रभाव का प्रश्न विधि का प्रश्न है और उसका विनिश्चय न्यायालयों द्वारा किया जाना चाहिए। चूंकि मान्यता का प्रमाण विदेश मंत्रालय के प्रमाणपत्र पर आधारित होता है अतः ऐसा कोई प्रमाणपत्र नहीं है कि 28 जून को पोलैण्ड पर नई सरकार का वस्तुतः नियंत्रण था । किन्तु विदेश मंत्रालय के प्रमाणपत्र के खण्ड 2 और खण्ड 3 के संदर्भ से ऐसा होना प्रतीत होता है ।

प्रश्न यह है कि क्या वस्तुतः सरकार ने विधितः सरकार के अधीन व्यक्तियों तथा सम्पत्तियों पर 28 जून से या 6 जुलाई से नियंत्रण प्राप्त किया । यथार्थतः 28 जून और 6 जुलाई के बीच उन पर उसका नियंत्रण स्थापित नहीं हुआ था । किन्तु अपीलार्थियों का तर्क है कि एक ही राज्य की दो सरकारें नहीं हो सकतीं । केवल पोलिश राज्यक्षेत्र की सरकार ही उस देश की सरकार हो सकती है तथा उसकी निजी सम्पत्ति या पौतों पर, चाहे वे उसी राज्यक्षेत्र में या उससे बाहर कहीं भी स्थित हों, स्वामित्व है ।

न्यायालय के मतानुसार सामान्य स्थिति में यह प्रस्थापना ठीक हो सकती है किन्तु युद्ध की स्थिति में यह सही नहीं है । पूर्वतन सरकार के लन्दन पहुंचने के बाद महानगर पोलैण्ड में दो सरकारें थीं । एक तो अधिभोगी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जर्मन सेनाओं की सरकार और दूसरी पुरानी सरकार, जिसे ब्रिटेन की सरकार ने सम्पूर्ण पोलैण्ड और पोलैण्ड के सभी नागरिकों और उनकी सम्पत्तियों की विधितः सरकार के रूप में तथा पोलैण्ड के बाहर पोलैण्ड के सभी नागरिकों, उनकी सम्पत्तियों और पोतों पर विधितः और वस्तुतः प्राधिकारी के रूप में मान्यता प्रदान की थी । यद्यपि पोण्लैंड में नई सरकार को, जहां पर उसका प्रभावपूर्ण नियंत्रण था, 28 जून से मान्यता प्रदान की गई थी तथापि 6 जुलाई, 1945 तक पुरानी सरकार या पोलैण्ड के वाणिज्यिक बेड़े और उसके कार्मिकों पर उसका नियंत्रण नहीं था ।

लेकिन अपीलार्थियों ने यह दलील दी कि जब एक बार यह दर्शित कर दिया जाता है कि 28 जून से नई सरकार का पोलैण्ड के सम्पूर्ण क्षेत्र पर वस्तुतः नियंत्रण स्थापित हो चुका है तब उसी तारीख से उसके सभी राष्ट्रिक उसके प्रति निष्ठावान हो जाते हैं और उनकी सम्पत्ति नई सरकार की स्थापना के बाद पुरानी सरकार के नियंत्रण में नहीं रहती और वह नई सरकार के नियंत्रणाधीन हो जाती हैं । किन्तु यहां मामला ऐसा नहीं है जहां राज्यक्षेत्र विभाजित किया गया हो और एक सरकार एक भाग का नियंत्रण करती हो और दूसरी सरकार दूसरे भाग का ।

साधारणतया नई सरकार की मान्यता उसके नियंत्रण प्राप्त करने के समय से होती है किन्तु वह पुरानी सरकार द्वारा किए गए कार्यों को प्रभावित नहीं करती । उद्योग, वाणिज्य और पोत परिवहन मंत्री अभी वही मन्त्री हैं, अतः प्रत्यर्थी कम्पनी के सम्बन्ध में उसकी क्या शक्तियां थीं ? मन्त्री की शक्तियां 30 मार्च, 1939 के अधिनियम से व्युत्पन्न होती हैं । प्रत्यक्षतः इन उपबन्धों से यह अभिप्रेत है कि मन्त्री जो चाहे कर सकता है । निस्संदेह उसे अन्य अधिकारियों के समान ईमानदारी से कार्य करना चाहिए और इस मामले में यह नहीं कहा गया है कि मन्त्री ने ईमानदारी से कार्य नहीं किया था तथा ऐसा न होने पर मन्त्री बिना किसी सीमा के अपना विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए सशक्त था ।

मन्त्री ने जो प्रस्थापना की थी वह अभी कायम है, यद्यपि ऐसी प्रस्थापना करने का उसका प्राधिकार 6 जुलाई, 1945 से समाप्त हो गया है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि नई सरकार ने इस प्रस्थापना को अननुमोदित किया था किन्तु नई सरकार ने इसे वापस कभी नहीं लिया था । यह प्रस्थापना तब तक विधिमान्य थी जब तक उसे वापस नहीं ले लिया जाता । यद्यपि इस प्रस्थापना पर आक्षेप तो किया गया था किन्तु उसे वापस नहीं लिया गया था । अतः नई सरकार पुरानी सरकार की बाध्यता से आबद्ध है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लार्ड ओक्से के मतानुसार--अपीलार्थी कम्पनी ने यह दलील दी है कि पैरा 2 से यह साबित होता है कि पोलैण्ड की नई सरकार 28 जून को स्थापित की गई थी तथा पैरा 1 के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने 5/6 जुलाई, 1945 की अर्ध-रात्रि से उसे मान्यता प्रदान की थी अतः वह मान्यता सभी प्रकार से 28 जून, 1945 से पूर्वकालिक प्रभाव की है। लार्ड ओक्से ने कहा कि इसका यह अर्थ निकाला जाना ब्रिटिश प्रमाणपत्र की भाषा के "कि पूर्व सरकार को 5/6 जुलाई, 1945 तक विधितः मान्यता प्राप्त होगी" विपरीत होगा। यह सही है कि कतिपय परिस्थितियों में विधितः मान्यता पूर्वकालिक प्रभाव की होती है। किन्तु ऐसा वहीं होता है जहां विदेश मंत्रालय निश्चित अवधि तथा उसके प्रभाव क्षेत्र की सूचना नहीं देता है। ऐसी स्थिति में न्यायालय इन विषयों के तथ्यों की न्यायालय जांच-पड़ताल कर सकता है। चूंकि ब्रिटिश प्रमाणपत्र में यह स्पष्ट है कि लन्दन स्थित सरकार को 5/6 जुलाई तक मान्यता प्रदान की गई थी इसलिए मान्यता का पूर्वकालिक प्रभाव वस्तुतः नियंत्रण के क्षेत्रों तक ही सीमित रहेगा।

लार्ड मार्टन के मतानुसार—यदि विदेश मंत्रालय के प्रमाणपत्र में मान्यता के कार्यान्वयन की तिथि निश्चित कर दी गई हो तो पूर्वकालिक प्रभाव का सिद्धान्त लागू नहीं होगा।

लार्ड रीड के मतानुसार—पूर्वकालिक प्रभाव का सिद्धान्त केवल वस्तुतः सरकार के नियंत्रण के क्षेत्रों की सीमा के अन्तर्गत किए गए कार्यों की वैधता के संबंध में लागू होता है तथा उसके नियंत्रण के बाहर स्थापित विधितः सरकार के कार्यों पर लागू नहीं होता और न वस्तुतः मान्यता की तिथि से विधितः मान्यता का प्रत्याहरण ही होता है।

* * * *

टिप्पणी :—1. वस्तुतः सरकार का कार्यक्षेत्र उसके नियंत्रणाधीन स्थित व्यक्ति और सम्पत्ति पर होता है।

2. मान्यता के पूर्वकालिक प्रभाव का सिद्धान्त वस्तुतः नियंत्रण के क्षेत्रों तक सीमित होता है।

3. मान्यता की तिथि का निर्धारण विदेश मंत्रालय के प्रमाणपत्र पर आधारित होता है और न्यायालय उसे मान्यता प्रदान करते हैं। जहां निश्चित तिथि का निर्धारण नहीं किया जाता वहां न्यायालय तथ्यों के आधार पर उसे निर्धारित करते हैं।

4. मान्यता का पूर्वकालिक प्रभाव पूर्वतन विधितः सरकार द्वारा अपने नियंत्रण के क्षेत्रों में किए गए कार्यों को अवैध घोषित करने के लिए नहीं होता।

5. वस्तुतः मान्यता की तिथि से विधितः मान्यता का प्रत्याहरण नहीं होता।

—: o :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

5. राज्य क्षेत्र

राज्यक्षेत्र भूतल का वह प्रदेश है जिस पर किसी राज्य को सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त होता है । इस क्षेत्र में स्थित सभी जंगम और स्थावर वस्तुओं पर राज्य का पूर्ण अधिकार होता है । इस क्षेत्र में न केवल भूमि प्रदेश आता है अपितु प्रदेशीय जलभाग तथा अनिश्चित सीमा तक आकाश आता है ।

सामान्यतः राज्य का प्रादेशिक प्रभुत्व अविभाज्य होता है । प्राचीन काल में शासक राज्य की सीमाएं युद्ध में अर्जित भूमि तक बढ़ा लेते थे किन्तु अब संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार ऐसा करना विधि का उल्लंघन करना है और अविधिमान्य है । इसी प्रकार पहले राष्ट्र मानव रहित नए क्षेत्रों को खोज कर तथा अपना प्रभावी प्रशासन स्थापित कर अपने राज्य की सीमा बढ़ा लेते थे जैसा कि पॉमस आदि मामलों से स्पष्ट है किन्तु आज दक्षिणी ध्रुव अन्टार्टिका जैसे बर्फीले प्रदेशों को इस प्रकार अपने राज्य में मिला कर राज्य क्षेत्र बढ़ाना सम्भव नहीं है ।

राज्य की सीमा एक-दूसरे राज्य से मिली होती है और कभी-कभी वे प्राकृतिक रूप से नदी, समुद्र, पर्वत आदि के द्वारा स्थापित हो जाती है और पड़ोसी राज्य पारस्परिक मैत्री और सद्भाव से उन्हें एक दूसरे की सीमाएं मान लेते हैं । कभी-कभी इन सीमाओं के सम्बन्ध में राज्यों में विवाद उत्पन्न हो जाता है । ऐसे विवादों को संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के सिद्धान्त (अनुच्छेद 2, पैरा 3) के अनुसार शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाना उसके सदस्यों तथा अन्य राष्ट्रों का कर्त्तव्य है । जैसा कि भारत और पाकिस्तान के बीच कच्छ सीमा सम्बन्धी विवाद अन्तर-राष्ट्रीय अधिकरण द्वारा निपटाया गया था । इस प्रकार का विवाद शक्ति के प्रयोग द्वारा नहीं किया जा सकता क्योंकि वह संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2, पैरा 4 के सिद्धान्त के प्रतिकूल होगा । सीमा सम्बन्धी इसी तरह का एक महत्वपूर्ण मामला प्रिय विहार मन्दिर का है जिसका निपटारा अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा किया गया था ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रिय विहार मन्दिर का मामला
(Case concerning the Temple of Preah Vihar)

कम्बोडिया बनाम थाईलैण्ड
(Cambodia *vs.* Thailand)

आई० सी० जे० रिपोर्टस् 1962, पृष्ठ 6.

यह मामला राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व से सम्बन्धित विवाद का मामला है जो कम्बोडिया और थाईलैण्ड के बीच उत्पन्न हुआ है । कम्बोडिया ने यह अभिकथित किया है कि थाईलैण्ड ने प्रिय विहार और उसकी प्रसीमा के क्षेत्र पर अपने पहरेदार या रखवाले नियुक्त करके तथा वहां से मूर्तियां, खम्बे, स्मारकों के अंश, बलुआ पत्थर के मॉडल और प्राचीन मृद्भाण्ड आदि हटा कर कम्बोडिया के राज्यक्षेत्रीय प्रभुत्व का अतिक्रमण किया है क्योंकि प्रिय विहार और उसकी प्रसीमा के क्षेत्र पर कम्बोडिया का प्रभुत्व है । थाईलैण्ड का कहना है कि प्रिय विहार मन्दिर और उसकी प्रसीमा का क्षेत्र दोनों देशों की सामान्य सीमा की थाई दिशा में पड़ता है और उस पर थाईलैण्ड का प्रभुत्व है ।

प्रिय विहार मन्दिर एक प्राचीन देवालय और तीर्थस्थान है जो थाईलैण्ड और कम्बोडिया की सीमाओं पर स्थित है । यह इसी नाम के प्रोत्तुंग पर खड़ा हुआ है और यह प्रोत्तुंग डनग्रेक पर्वतमाला के पूर्वी खण्ड का भाग है । साधारणतया इसे दोनों देशों—दक्षिण की ओर कम्बोडिया और उत्तर की ओर थाईलण्ड के बीच सीमा रेखा मानी जाती है । इस पर्वतमाला का अधिकांश भाग ऊंची खड़ी चट्टान जैसा कगार है जो कम्बोडिया की भूमि पर अकस्मात् लुप्त हो जाता है । प्रिय विहार पर भी यही स्थिति है। मुख्य मन्दिर का भवन समभूमि पर उभरे हुए तिकोने ऊंचे मैदान के शिखर पर खड़ा हुआ है । कगार के किनारे से उत्तर दिशा में मैदान का ढलान नाममौन नदी की ओर जाता है जो कि थाईलैण्ड में है ।

ऊपर दिए गए विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कगार के किनारे से जो सीमा रेखा चलती है या जो मन्दिर क्षेत्र के दक्षिण और पूर्व की ओर जाती है उसके आधार पर यह क्षेत्र थाईलैण्ड में पड़ता है, जबकि उत्तर की ओर जाने-वाली या उत्तर और पश्चिम की ओर जाने वाली सीमा रेखा के आधार पर यह क्षेत्र कम्बोडिया में आ जाता है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थाईलैण्ड का कहना है कि इस कगार का किनारा ही इस प्रदेश में प्राकृतिक और स्पष्ट सीमा रेखा है ।

1953 से पूर्व कम्बोडिया फ्रैंच-इण्डो-चाइना का भाग था और 1953 में कम्बोडिया स्वतन्त्र हो गया । स्वतन्त्र होने से पूर्व कम्बोडिया के विदेश सम्बन्ध फ्रांस द्वारा संरक्षक देश के रूप में उसी प्रकार संचालित किए जाते थे जैसे फ्रैंच-इण्डो चाइना के किए जाते थे । प्रस्तुत विवाद का प्रारम्भ उन सीमा समझौतों से होता है जो 1904-1908 के दौरान फ्रांस-और श्याम (थाईलैण्ड उस समय श्याम कहलाता था) के बीच किए गए थे और विशिष्टतया प्रिय विहार पर प्रभुत्व 13 फरवरी, 1904 की सीमा संधि पर और उस तारिख से बाद हुई घटनाओं पर निर्भर करता है ।

13 फरवरी, 1904 की सन्धि के सुसंगत उपबन्धों अर्थात् अनुच्छेद 1 और 3 में, जिनके द्वारा पूर्वी डनग्रेक प्रदेश की सीमा विनियमित की जाती थी, प्रिय विहार का कोई उल्लेख नहीं किया गया है । जब कि अनुच्छेद 1 के अनुसार स्थापित सीमा रेखा डनग्रेक पर्वतमाला के साथ-साथ जलप्रवाह-रेखा थी । किन्तु अनुच्छेद 3 के अनुसार श्याम और फ्रैंच-इण्डो-चाईना के राज्यक्षेत्रों के बीच सीमान्त का परिसीमन दोनों देशों के एक सम्मिलित आयोग (मिक्स्ड कमीशन) द्वारा किया जाना था ।

कुछ समय बाद सम्मिलित आयोग बनाया गया था जिसमें फ्रांस और श्याम के सदस्य शामिल थे और उसे विभिन्न जिलों में, जिनमें डनग्रेक पर्वतमाला का पूर्वी खण्ड शामिल है जिसमें प्रिय विहार स्थित है, सीमा का परिसीमन करने का कार्य सौंपा गया था । उस आयोग ने सीमा का सर्वेक्षण किया और सीमा नियत कर दी किन्तु सर्वेक्षण अधिकारियों की रिपोर्टें और मानचित्र फरवरी-मार्च, 1907 तक उपलब्ध नहीं हो सके । इस बीच दोनों सरकारों ने एक अन्य सीमा सन्धि के लिए बात-चीत आरम्भ की । इस सन्धि पर 23 मार्च, 1907 को हस्ताक्षर किए गए थे ।

1907 की सन्धि के अधीन दूसरा सम्मिलित परिसीमन आयोग बनाया गया था । श्याम की सरकार ने शासकिय रूप से यह निवेदन किया था कि सीमावर्ती प्रदेश के मानचित्र फ्रांस के स्थलाकृति अधिकारियों द्वारा तैयार किए जाने चाहिएं । फ्रांस सरकार ने चार फ्रांसिसी अधिकारियों की एक टीम की व्यवस्था की जिन्हें यह कार्य सौंपा गया । इनमें से तीन अधिकारी प्रथम सम्मिलित आयोग के सदस्य थे । इस द्वितीय सम्मिलित आयोग ने 1907 के अन्त में 11 मानचित्र तैयार किए जो श्याम और फ्रैंच-इण्डो-चाइना के बीच सीमावर्ती प्रदेशों से सम्बन्धित थे और जिनमें

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वे भाग भी शामिल थे जो प्रस्तुत मामले के लिए सारवान हैं । वे मानचित्र फ्रांस की एक सुविज्ञात मानचित्रांकण करने वाली फर्म द्वारा मुद्रित और प्रकाशित किए गए थे । सम्यक अनुक्रम में ये 11 मान चित्र श्याम सरकार को भेज दिए गए थे और श्याम सरकार को ये संसूचित किया गया था कि ये मान-चित्र वही हैं जिनके लिए श्याम सरकार ने निवेदन किया था । इनमें से तीन मानचित्र ऐसे थे जो घटनाओं के अनुसार बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उन मानचित्रों में दर्शित पूर्वतन सीमावर्ती क्षेत्र मार्च, 1907 की सन्धि के आधार पर अब पूर्णतया कम्बोडिया में स्थित हो गए थे । अतः इन मानचित्रों के बारे में श्याम सरकार से यह नहीं पूछा गया था कि क्या वह उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करना चाहती है । किन्तु अन्य मानचित्रों में श्याम सरकार का हित बना रहा । इन मानचित्रों में से एक मानचित्र डनग्रेक पर्वतमाला का था, जिसमें प्रिय विहार मन्दिर स्थित है और उस मानचित्र पर एक सीमा रेखा खिंची हुई थी जो परिसीमन के कार्य के परिणामस्वरूप खींची गई थी और उसमें सम्पूर्ण प्रिय विहार प्रोत्तुंग तथा मन्दिर का क्षेत्र कम्बोडिया की दिशा में दिखाया गया था । अतः यदि पूर्वी डनग्रेक खण्ड के सम्बन्ध में किया गया परिसीमन जलप्रवाह रेखा स्थापित करता था या स्थापित करने के लिए आशयित था तो इस मानचित्र में ऐसी रेखा दर्शित की गई थी । यह मानचित्र कम्बोडिया द्वारा अपने ज्ञापन के साथ उपाबद्ध 1 के रूप में फाइल किया गया था ।

यही वह मानचित्र है जिस का कम्बोडिया ने प्रिय विहार मन्दिर पर अपने प्रभुत्व के दावे के समर्थन में मुख्यतः अवलम्ब किया है । दूसरी ओर थाईलैण्ड ने इस मानचित्र के आधार पर किए गए दावे का निम्नलिखित आधारों पर खण्डन किया है—प्रथमतः यह कि यह मानचित्र सम्मिलित आयोग का कार्य नहीं था और इसलिए वह आबद्धकर प्रकृति का नहीं था । द्वितीयतः, यह कि प्रिय विहार के सम्बन्ध में मानचित्र में तात्विक गलती थी । थाईलैण्ड के अनुसार गलती यह थी कि मानचित्र में जो सीमा रेखा दिखाई गई थी वह इस खण्ड की सही जलप्रवाह रेखा नहीं थी और यह कि सही जलप्रवाह रेखा के अनुसार खींची गई रेखा के आधार पर प्रिय विहार मन्दिर का क्षेत्र थाईलैण्ड में आ जाएगा । इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि थाईलैण्ड ने इस मान-चित्र को या इस मानचित्र में दर्शित सीमा रेखा को, विशेषकर प्रिय विहार के सम्बन्ध में, कभी भी इस प्रकार स्वीकार नहीं किया है कि वह उससे आबद्ध हो जाए अथवा अनुकल्पतः यदि उसने इस मानचित्र को स्वीकार भी किया था तो यह उसने भ्रमपूर्ण विश्वास के अधीन किया था कि मानचित्र में दर्शित रेखा जल प्रवाह रेखा के ठीक-ठीक अनुरूप खींची गई थी ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय के अनुसार मानचित्र प्रथम सम्मिलित आयोग द्वारा कभी भी औपचारिक रूप से अनुमोदित नहीं किया गया था । क्योंकि आयोग ने मानचित्रों के तैयार किए जाने के कुछ मास पूर्व कार्य करना समाप्त कर दिया था । अभिलेख से यह दर्शित नहीं होता है कि यह मानचित्र और उसमें दर्शित सीमा रेखा आयोग के जब कि वह कार्यरत था, किसी विनिश्चय या आयोग द्वारा सर्वेक्षण अधिकारियों को दिए गए अनुदेशों पर आधारित है । किन्तु एक बात निश्चित है कि इस मानचित्र का कोई न कोई आधार तो रहा ही होगा और न्यायालय का विचार है कि इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि यह मानचित्र डनग्रेक खण्ड में सर्वेक्षण अधिकारियों के कार्य पर आधारित था । श्याम सरकार द्वारा किए गए निवेदन के आधार पर फ्रांस सरकार के स्थलाकृति विशेषज्ञों द्वारा तैयार किए गए सीमावर्ती क्षेत्रों के मानचित्रों की श्रृंखला में से यह मानचित्र एक था जो कि पैरिस की एक ख्याति प्राप्त फर्म द्वारा मुद्रित और प्रकाशित किया गया था इसलिए इस मानचित्र की शासकीय साख है और इसका अन्तर्निहित तकनीकी प्राधिकार भी है और इसका उद्गम स्थान अगुप्त और सुस्पष्ट है । तथापि मानचित्र आरम्भ में ही और उसके तैयार किए जाने के समय से वह आबद्धकर प्रकृति का नहीं था ।

अभिलेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन 11 मानचित्रों का, जिनमें उपावंध 1 मानचित्र भी शामिल है, प्रकाशन और श्याम सरकार को उनका संसूचित किया जाना एक महत्वपूर्ण घटना है । इन मानचित्रों का श्याम सरकार को भेजा जाना मात्र फ्रांस और श्याम सरकार के बीच पारस्परिक अदान-प्रदान ही नहीं था और यदि यह मात्र अदान-प्रदान ही था तो भी विधि की दृष्टि से इसका काफी महत्व है । इसके अतिरिक्त इन मानचित्रों का प्रमुख देशों में मुख्य भौगोलिक सोसाइटियों के बीच काफी प्रसार किया गया था । इन मानचित्रों की प्रतियां ब्रिटेन, जर्मनी, रूस और यूनाइटेड स्टेट्स में स्थित श्याम के दूतावासों और सम्मिलित आयोग के सभी सदस्यों को भेजी गई थीं । कुल मिलाकर इन 11 मानचित्रों के 160 सेट वितरित किए गए थे जिनमें से 50 सेट श्याम सरकार को वितरित किए गए थे ।

थाईलैण्ड सरकार की ओर से यह कहा गया है कि फ्रांस सरकार द्वारा मानचित्रों का भेजा जाना एकपक्षीय कार्य था और थाईलैण्ड से इन मानचित्रों के भेजे जाने के बारे में अभिस्वीकृति की न तो मांग की गई थी और न ही थाईलैण्ड ने कोई अभिस्वीकृति की थी ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किन्तु परिस्थितियों से यह दर्शित होता है कि थाईलैण्ड ने अपने आचरण से निस्सन्देह अपनी स्वीकृति दी थी क्योंकि मानचित्रों के प्राप्त होने पर यह निश्चित था कि श्याम सरकार उस पर कोई कार्यवाही करती और फ्रांस सरकार को अपनी प्रतिक्रिया प्रदर्शित करती । यदि श्याम सरकार उन मानचित्रों से सहमत नहीं थी या उस सम्बन्ध में कोई आक्षेप करना चाहती थी तो श्याम सरकार ने युक्तियुक्त कालावधि के भीतर ऐसा किया होता किन्तु श्याम सरकार ने न तो उस समय और न ही कई वर्षों तक ऐसा कुछ नहीं किया । अतः इससे यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि श्याम सरकार ने उस मानचित्र को चुपचाप स्वीकार कर लिया था ।

इसके अतिरिक्त प्रतिलेखन आयोग (कमीशन ऑफ ट्रांसक्रिपशन) की, जिसकी मार्च, 1909 और तत्पश्चात् कुछ मास तक बैंकाक में बैठकें होती रहीं, कार्यवाहियों द्वारा साक्ष्य पेश किया गया है । यह आयोग पक्षकारों द्वारा स्थापित किया गया सम्मिलित फ्रांस – श्याम आयोग फ्रैंको-–सियामीज कमीशन था जो 1904 और 1907 के सम्मिलित आयोगों द्वारा किए गए कार्य का समेकन करके शासकीय रूप से श्याम का भौगोलिक सर्वेक्षण आरम्भ करने के उद्देश्य से स्थापित किया गया था। इस आयोग का प्राथमिक उद्देश्य यह था कि तत्समय विद्यमान मानचित्रों की एक एटलस तैयार की जाए । जब यह आयोग अपना कार्य कर रहा था उस समय उपाबन्ध 1 मानचित्र या रेखा के बारे में इस प्रकार की कोई बातचीत नहीं की गई थी कि वह मानचित्र या रेखा स्वीकार्य नहीं है ।

थाईलैण्ड की ओर से यह दावा किया गया है कि पेरिस से प्राप्त मानचित्र केवल छोटे अधिकारियों द्वारा देखें गए थे जिन्हें स्थलाकृति के बारे में कोई विशेषज्ञता प्राप्त नहीं थी और वे प्रिय विहार मन्दिर की स्थिति के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे । न्यायालय ने कहा कि वह इस दलील को न तो तथ्यों के आधार पर और न विधि की दृष्टि से ही स्वीकार कर सकती है । यदि श्याम सरकार ने इन मानचित्रों को छोटे अधिकारियों को दिखाया था तो श्याम सरकार ने यह अपने जोखिम पर ही किया था और इससे थाईलैण्ड के दावे पर, अन्तरराष्ट्रीय स्थिति के अनुसार इस तथ्य से कोई प्रभाव नहीं पड़ता । किन्तु इस विषय के इतिहास से स्पष्टतया यह दर्शित होता है कि ये मानचित्र उच्च अधिकारियों द्वारा देखे गए थे न कि छोटे अधिकारियों द्वारा ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थाईलैण्ड की ओर से यह दलील दी गई है कि जहां तक प्रियविहार मन्दिर के क्षेत्र का सम्बन्ध है उसमें कुछ गलती की गई थी और श्याम सरकार को उस गलती के बारे में उस समय मालूम नहीं था जब मानचित्र स्वीकार किया गया था ।

विधि का यह सुस्थापित नियम है कि गलती के अभिवाक् को सम्मति हासिल करने वाले तत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता यदि गलती का अभिवाक् करने वाले पक्षकार ने अपने आचरण के कारण वह गलती की थी या जो ऐसी गलती से बच सकता था अथवा यदि परिस्थितियां ऐसी थी कि उस पक्षकार को उस सम्भावित गलती के बारे में सूचना दी जा सकती थी । न्यायालय के मतानुसार श्याम सरकार की ओर से जिन व्यक्तियों ने उपाबन्ध 1 मानचित्र देखा था उनके चरित्र और अर्हताओं के आधार पर थाईलैण्ड विधि की दृष्टि से गलती का अभिवाक् नहीं कर सकता ।

श्याम सरकार को सम्मिलित आयोग के श्याम के सदस्यों से यह मालूम हो गया होगा या ये उपधारणा की जा सकती है कि उसे मालूम हो गया था कि उपाबंध 1 मानचित्र कभी भी आयोग द्वारा औपचारिक रूप से नहीं अपनाया गया था । श्याम सरकार को यह मालूम था कि यह कार्य फ्रांस की स्थलाकृति अधिकारियों का कार्य था जिन्हें स्वयं श्याम सरकार ने मानचित्र बनाने का कार्य सौंपा था। उन्होंने इन मानचित्रों को किसी प्रकार की स्वतन्त्र खोजबीन किए बिना स्वीकार कर लिया था और अब वे अपनी सम्मति को वास्तविकता को गलती का अभिवाक् करके निष्फल नहीं कर सकते । अतः न्यायालय ने ये निष्कर्ष निकाला कि थाईलैण्ड द्वारा गलती का अभिवाक् स्थापित नहीं हो पाया है ।

श्याम सरकार ने उपाबंध 1 मानचित्र के बारे में न तो स्वयं अपने बीच और न ही फ्रांस या कम्बोडिया के सामने कोई प्रश्न उठाया और न ही सन् 1958 तक उसके बारे में अभिव्यक्त रूप से कोई निराकरण ही किया जबकि बैंकाक में थाईलैण्ड और कम्बोडिया के बीच प्रिय विहार के प्रश्न के बारे में बातचित आरम्भ हुई । जब थाईलैण्ड ने 1934-35 में इस प्रदेश में अपनी ओर से सर्वेक्षण करवाया था उस के बाद भी थाईलैण्ड ने इस सम्बन्ध में कोई आक्षेप नहीं किया था और थाईलैण्ड के मतानुसार स्वयं इससे सर्वेक्षण मानचित्र रेखा और जलप्रवाह की वास्तविक रेखा के बीच विचलन स्थापित हो गया था,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और इस विचलन का प्रभाव यह था कि प्रिय विहार मन्दिर कम्बोडिया में आ गया था।

सन् 1941 में थाईलैण्ड ने कम्बोडिया के कुछ भागों पर, जिनमें प्रिय विहार भी शामिल है, कब्जा कर लिया और थाईलैण्ड के सूचना मन्त्रालय ने "राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के दौरान थाईलैण्ड" (थाईलैण्ड डयूरिन नेशनल रिकंस्ट्रक्शन) नामक एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें प्रिय विहार के बारे में यह कथित किया गया था कि अब उसका थाईलैण्ड के लिए "पुनर्गहण किया गया है"। इस संबंध में थाईलैण्ड का कहना है कि ऐसा छोटें अधिकारियों की गलती के कारण हुआ था। 1958 में बैंकाक में थाईलैण्ड और कम्बोडिया के बीच हुई राज्य क्षेत्रीय बातचीत के दौरान थाईलैण्ड के प्रतिनिधियों ने इसी प्रकार की भाषा का उपयोग किया था जिससे यह प्रकट होता था कि प्रिय विहार पर थाईलैण्ड का कब्जा लगभग 1940 से था।

1909 के संधि के आधार पर प्राप्त हक के आधार पर फ्रांस और तत्पश्चात् कम्बोडिया ने इस छोटे से अभित्यक्त क्षेत्र में प्रशासन सम्बधी कुछ थोड़े से नेमी कार्य किए थे। थाईलैण्ड ने मौखिक सुनवाई के समय यह स्वीकार किया था कि यदि कम्बोडिया ने 1904 के सीमा सम्बंधी व्यवस्थापन के आधार पर मन्दिर क्षेत्र पर प्रभुत्व अर्जित कर लिया था तो उसने तत्पश्चात् उसका परित्याग नहीं किया था और न ही थाईलण्ड ने किसी चिरभोग के आधार पर उसे अर्जित किया था। अतः इस आधार पर थाईलैण्ड द्वारा की गई कार्यवाही को प्रभुत्वसम्पन्न के रूप में आचरण के साक्ष्य के रूप में पेश किया गया था जो इस प्रकार के किसी सुझाव का खण्डन करने के लिए पर्याप्त है कि 1904 के संधि व्यवस्थापन के अधीन थाईलैण्ड ने कोई ऐसा परिसीमन स्वीकार किया था जिसका प्रभाव प्रिय विहार पर कम्बोडिया के प्रभुत्व को स्वीकार करता है।

इस सम्बन्ध में एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना घटी जबकि 1930 में आन्तरिक मामलों के भूतपूर्व मन्त्री राजकुमार डमरोंग ने जोकि प्रस्तुत वाद के फाइल किए जाने के समय रायल इन्स्टीट्यूट ऑफ श्याम का अध्यक्ष था, मन्दिर का दौरा किया। राजकुमार डमरोंग ने वह दौरा राष्ट्रीय पुस्तकालय (नेशनल लायेब्रेरी) तथा पुरातत्वीय स्मारकों के प्रति अपने कर्त्तव्यों के सम्बध में किया था। यह दौरा पुरातत्वीय दौरे का भाग था जो कि राजकुमार ने श्याम के राजा की इजाजत से किया था और स्पष्ट रूप से इस दौरे का स्वरूप अर्द्ध शासकीय था। जब राजकुमार प्रिय विहार पर पहुंचा तब उसका स्वागत संलग्न कम्बोडिया प्रान्त केफ च रेजीडेण्ट द्वारा शासकीय तौर पर किया गया था और स्वागत के समय फ्रांस सरकार का झण्डा लहरा रहा था। ऐसा नहीं हो सकता कि इस प्रकार के स्वागत की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विवक्षाओं को राजकुमार ने न समझा हो। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राजकुमार ने फ्रेंच-इण्डो-चाइना का हक स्वीकार किया था। यदि उसने ऐसा न किया होता तो इसकी कोई न कोई प्रतिक्रिया होती। थाईलैण्ड ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया कि बल्कि जब राजकुमार डमरोंग अपने दौरे के बाद बैंकाक लौटा तो उसने फ्रेंच रेजीडेण्ट को उस अवसर के कुछ फोटो भेजे और ऐसी भाषा का उपयोग किया जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उसने ये स्वीकार किया था कि रेजीडेण्ट की मार्फत फ्रांस ने अतिथेयी देश के रूप में कार्य किया था।

इस समस्त घटना को देखते हुए यह प्रकट होता है कि श्याम सरकार ने प्रिय विहार पर (फ्रांस के संरक्षण के अधीन) कम्बोडिया के प्रभुत्व को चुपचाप स्वीकार कर लिया था। क्योंकि उसने उस अवसर पर किसी भी प्रकार का कोई आक्षेप नहीं किया था और न अपनी कोई प्रतिक्रिया ही प्रकट की थी जिससे कि वह परस्पर विरोधी दावे के विरूद्ध अपने हक की पुष्टि कर सके या उसे परिरक्षित कर सके। जो कुछ स्पष्ट दिखाई देता है वह यह है कि श्याम सरकार को वस्तुतः यह विश्वास ही नहीं था कि उसे कोई हक प्राप्त है—यह निरन्तर उसके रुख से झलकता रहा है—और इसलिए उसने उपाबध 1 मानचित्र और रेखा के बारे में अपना हक नहीं जताया और इससे यह अभिप्रेत है कि उसने फ्रांस के दावे को स्वीकार कर लिया था अथवा प्रिय विहार पर उस सीमा रेखा को स्वीकार कर लिया था जो मानचित्र पर खींची गई थी।

फ्रांस-श्याम सुलह आयोग (फ्रैन्को-सियामीज़ कन्सिलिसेशन कमीशन) की कार्यवाहियों के, जिनमें थाईलैण्ड ने प्रिय विहार के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं उठाया था, समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् फरवरी, 1949 में फ्रांस ने थाईलैण्ड सरकार को एक पत्र लिखा था जिसमें यह कहा गया था कि फ्रांस सरकार को यह रिपोर्ट मिली है कि प्रिय विहार मन्दिर पर श्याम सरकार ने चार रखवाले नियुक्त किए हैं और यह भी कहा गया था कि वह इस सम्बंध में पूरी जानकारी दें। श्याम सरकार ने इस पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया और न ही मार्च, 1949 में इस पत्र के अनुसरण में लिखे गए पत्र का कोई उत्तर दिया। मई, 1949 में फ्रांस सरकार ने एक और पत्र भेजा जिसमें संक्षेप रूप से किन्तु स्पष्ट शब्दों में वे आधार कथित किए गए थे जिन पर वह यह मानती थी कि प्रिय विहार कम्बोडिया में है और उस पत्र में यह भी संकेत किया गया था कि जो मानचित्र स्वयं थाईलैण्ड द्वारा तैयार किया गया था उसमें भी इस तथ्य को थाईलैण्ड द्वारा मान्यता दी गई है। उस पत्र में मन्दिर से रखवालों को हटाने के लिए भी निवेदन किया गया था। इस पत्र में स्पष्ट शब्दों में प्रभुत्व का प्राख्यान किया गया था। फ्रांस सरकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के इस पत्र का भी थाईलैण्ड द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया गया था। जुलाई, 1950 में एक और पत्र भेजा गया था किन्तु उसका भी कोई उत्तर नहीं दिया गया था।

कम्बोडिया ने सन् 1953 में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् प्रिय विहार मन्दिर के सम्बन्ध में अपनी स्थिति का प्राख्यान करने या उसे बनाए रखने के लिए मन्दिर पर रखवाले या रक्षक भेजने की प्रास्थापना की। लेकिन यह जानकर कि वहाँ पर पहले ही थाईलैण्ड के रक्षक मौजूद हैं कम्बोडिया ने रक्षक वापस बुला लिए और कम्बोडिया ने जनवरी, 1954 में थाईलैण्ड की सरकार को एक पत्र भेजा जिसमें इस सम्बन्ध में जानकारी मांगी गई थी। कम्बोडिया सरकार ने इस पत्र की केवल अभिस्वीकृति प्राप्त हुई थी लेकिन कोई स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं हुआ था। तब भी थाईलैण्ड ने अपने दावे के सम्बन्ध में कोई पुष्टि नहीं की थी। मार्च 1954 के अन्त में कम्बोडिया सरकार ने थाईलैण्ड की सरकार का इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कि उसके पूर्वतन पत्र का कोई सारवान् उत्तर नहीं दिया गया है, सूचित किया कि वह पूर्वतन हटाए गए कम्बोडिया के रखवालों या रक्षकों के स्थान पर अपनी फौजें रखना चाहती है। इस पत्र में कम्बोडिया ने मई, 1949 में फ्रांस द्वारा भेजे गए पत्र में अन्तर्विष्ट कम्बोडिया के दावे की न्यायोचितता का विशिष्ट रूप से उल्लेख किया। कम्बोडिया के इस पत्र का भी श्याम सरकार द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया गया था। जून, 1954 में कम्बोडिया ने थाईलैण्ड को एक और पत्र लिखा जिसमें यह कहा गया था कि चूंकि कम्बोडिया को ये जानकारी मिली है कि प्रिय विहार मन्दिर पर थाईलैण्ड की फौजें पहले ही कब्जा किए हुए हैं इसलिए कम्बोडिया ने अपनी फौजें भेजने का काम रोक दिया है जिससे कि स्थिति गम्भीर न हो जाए। उस पत्र में थाईलैण्ड से यह कहा गया है कि वह या तो अपनी फौजें वहाँ से हटा ले या इस सम्बन्ध में कम्बोडिया को अपने विचार प्रकट करे। इस पत्र का भी कोई उत्तर नहीं दिया गया था किन्तु थाई फौजें वहां जमी रहीं। थाईलैण्ड ने कुछ स्थानीय कार्यवाही तो की किन्तु वह फ्रांस और कम्बोडिया के दावे को राजनयिक स्तर पर इन्कार करने के लिए तैयार नहीं था।

न्यायालय के समक्ष राजनयिक पत्राचार से सम्बन्धित कोई और कागज-पत्र पेश नहीं किए गए थे किन्तु सन् 1958 में थाईलैण्ड और कम्बोडिया के बीच बैंकाक में एक सम्मेलन हुआ जिसमें दोनों पक्षकारों के बीच विभिन्न राज्य क्षेत्रीय मामलों पर, जिनमें प्रिय विहार का मामला भी शामिल था, विचार विमर्श किया गया। थाईलैण्ड के प्रतिनिधियों ने इस विषय के विधिक पहलुओं पर विचार करने से इन्कार कर दिया जिसके परिणामस्वरूप बातचीत टूट गई और कम्बोडिया ने प्रस्तुत कार्यवाहियां आरम्भ कर दी।

यदि 1908 में श्याम द्वारा मानचित्र के स्वीकार किए जाने के बारे में और परिणामतः उस मानचित्र में संकेतित सीमा रेखा के स्वीकार किए जाने के बारे में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोई सन्देह थे तो न्यायालय पश्चात्वर्ती घटनाओं के प्रकाश में उन पर विचार करेगा और थाईलैण्ड अपने आचरण के आधार पर अब यह प्राख्यान नहीं कर सकता कि उसने उस मानचित्र को स्वीकार नहीं किया था । श्याम सरकार ने 50 वर्षों तक उन फायदों का लाभ उठाया है जो उसे सन् 1904 की सन्धि के आधार पर प्राप्त हुए थे । फ्रान्स ने और उसकी मार्फत कम्बोडिया ने थाईलैण्ड द्वारा मानचित्र के स्वीकार किए जाने का अवलम्ब लिया था । चूंकि दोनों पक्षकारों में से कोई भी पक्षकार गलती का अभिवाक् नहीं कर सकता इसलिए यह बात अतात्विक है कि वह अवलम्ब इस विश्वास पर लिया गया था कि वह मानचित्र सही था । अतः अब थाईलैण्ड यह इन्कार नहीं कर सकता कि वह उस मानचित्र पर अपनी सम्मति प्रकट करने वाला पक्षकार नहीं था ।

लेकिन न्यायालय का यह विचार है कि थाईलैण्ड ने 1908-1909 में उपाबंध 1 मानचित्र के सम्बन्ध में यह स्वीकार किया था कि वह परिसीमन के कार्य का परिणाम है और परिणामस्वरूप उसने उस मानचित्र की रेखा को सीमा रेखा के रूप में मान्यता दी थी और उसका प्रभाव यह है कि प्रिय विहार कम्बोडिया के राज्य क्षेत्र में स्थित है । न्यायालय के मतानुसार थाईलैण्ड का पश्चात्वर्ती आचरण इस बात की पुष्टि करता है कि उसने मानचित्र को स्वीकार किया था और थाईलैण्ड ने इस आधार पर जो कार्य किए हैं वे इस बात का खण्डन करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं । दोनों ही पक्षकारों ने अपने आचरण द्वारा उस रेखा को मान्यता दी थी और वस्तुतः उन्होंने इस बात को स्वीकार किया था कि वह सीमा रेखा है ।

थाईलैण्ड ने यह दलील दी कि सन् 1908 से और बहरहाल 1934-35 से जबकि उसने स्वयं सर्वेक्षण करवाया था, उसे यह विश्वास था कि मानचित्र रेखा और जल प्रवाह रेखा एक ही थी और इसलिए यदि उसने मानचित्र रेखा को स्वीकार भी किया था तो यह उसने मात्र इसी विश्वास पर किया था । यह स्पष्ट है कि ऐसी दलील थाईलैण्ड द्वारा दी गई इस दलील के समान रूप से के प्रतिकूल है कि उसने अपने प्रभुत्व के प्रयोग के लिए जो कार्यवाहियां की थीं वे इस विश्वास पर की थी कि उसे मन्दिर क्षेत्र पर प्रभुत्व प्राप्त था । क्योंकि यदि थाईलैण्ड को उपाबंध 1 मानचित्र रेखा के बारे में कोई गलतफहमी थी—यदि वस्तुतः उसे विश्वास था कि वह सही जलप्रवाह रेखा थी—तो उसे यह विश्वास अवश्य होता कि इस मानचित्र के आधार पर और उसके द्वारा उसे स्वीकार किए जाने के आधार पर मन्दिर क्षेत्र सही रूप से कम्बोडिया के राज्य क्षेत्र में था और यदि उसे ऐसा विश्वास था—और ऐसा विश्वास उसके इस अभिवाक् से स्पष्ट है कि उसने उपाबंध 1 मानचित्र केवल इस आधार पर स्वीकार किया था क्योंकि उसका विचार था कि वह सही है—तब इस आधार पर उसके कार्यों के बारे में यह समझा जाएगा कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसने जानबूझकर कम्बोडिया के प्रभुत्व का अतिक्रमण किया है । अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि थाईलैण्ड यह अभिकथित नहीं कर सकता कि उसे उपबंध 1 रेखा को स्वीकार करते समय कोई गलतफहमी थी क्योंकि यह पूर्णतया उन कारणों से असंगत है जो उसने अपने कार्यों के लिए दिए हैं अर्थात् कि उसे विश्वास था कि उसे उस क्षेत्र पर प्रभुत्व प्राप्त है ।

यदि थाईलैण्ड के गलतफहमी के अभिवाक् को सिद्धान्ततः स्वीकार भी कर लिया जाए तो यह अभिवाक् उस समय दिया जाना चाहिए था जबकि 1934-35 में थाईलैण्ड ने विवादास्पद क्षेत्र पर स्वयं सर्वेक्षण करवाया था । तब से थाईलैण्ड किसी गलतफहमी में रहा हो, ऐसा नहीं हो सकता ।

इन कारणों से न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रिय विहार मन्दिर उस क्षेत्र में स्थित है जो कम्बोडिया का राज्यक्षेत्र है, और यह कि थाईलैण्ड द्वारा मन्दिर या उसके आसपास जो सैनिक या पुलिस बल अथवा अन्य रक्षक या रखवाले नियुक्त किए गए हैं, वह उन्हें हटाने के लिए आबद्ध है और यह कि थाईलैण्ड उन सभी मूर्तियों, खम्बों, स्मारकों के अंशों, बलुआ पत्थर के मॉडल और प्राचीन मृद्भाण्ड आदि लौटाने के लिए बाध्यताधीन है जो उसने वहां से हटाए थे ।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले का महत्व यह है कि यह एक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है कि संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों द्वारा सीमा सम्बन्धी विवाद चार्टर के अनुच्छेद 2, पैरा 3 में स्वीकृत दायित्वों के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय द्वारा शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाए जा सकते ।

इस मामले में वियाना अन्वेन्शन ऑफ लॉ ऑफ ट्रीटीज, 1969 के अनुच्छेद 48 का निर्वचन किया गया है जिसके अन्तर्गत तथ्यों की त्रुटि के आधार पर सम्मति स्वच्छन्द होने से संधि को विधितः अमान्य माना जा सकता है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया—

विधि का यह सुस्थापित नियम है कि गलती के अभिवाक् को सम्मति दूषित करने वाले तत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता यदि गलती का अभिवाक् करने वाले पक्षकार ने अपने आचरण के कारण वह गलती की थी या जो ऐसी गलती से बच सकता था अथवा यदि परिस्थितियां ऐसी थीं कि उस पक्षकार को सम्भावित गलती के बारे में सूचना दी जा सकती थी ।

इस मामले में तीसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह निर्धारित किया गया है कि विबन्ध का सिद्धान्त जो सभ्य राष्ट्रों द्वारा सर्वमान्य रूप से स्वीकृत है अन्तरराष्ट्रीय विधि में एक स्रोत के रूप में स्वीकृत है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कोई राष्ट्र जो किसी तथ्य से लाभ प्राप्त करता रहा है वह उस तथ्य के अहितकर होने पर उसे अस्वीकार नहीं कर सकता या वही तथ्य जब दूसरे के लिए हितकर हो तथा उसके लिए हानिकारक हो तो वह उसे अस्वीकार नहीं कर सकता ।

* * * *

—०—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

6. समुद्रीय सीमा

अन्तरराष्ट्रीय विधि का यह सुस्थापित सिद्धान्त है कि समुद्र तट के निम्न जल बिन्दु (जो ज्वार भाटे पर आधारित होता है) से निश्चित चौड़ाई का समुद्री प्रदेश सामुद्रिक पट्टी या क्षेत्रीय जल के नाम से जाना जाता है जिस पर तटीय राज्य का पूर्ण प्रभुत्व होता है (जनेवा कन्वेशन आन टेरिटोरियल वाटर्स एण्ड कण्टीगुअस जोन, 1958 का अनुच्छेद)। इस पट्टी की चौड़ाई क्या होनी चाहिए यह अन्तरराष्ट्रीय विधि का विषय है। पहले यह सामान्य रूप से 3 मील निर्धारित थी। इसे कैनन शाट रूल की भी संज्ञा दी गई थी क्योंकि 18 वीं शताब्दी तक तोप का गोला तीन मील तक फैंका जा सकता था। 1958 के जनेवा अभिसमय के निर्माण के समय विभिन्न राज्यों ने विभिन्न चौड़ाई को मान्यता दिए जाने के तर्क प्रस्तुत किए थे यथा नार्वे ने 4 मील, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, मैक्सिको, टर्की, युगोस्लाविया तथा मिस्र ने 6 मील, रूस, कनाडा तथा अरब देशों ने 12 मील तथा पीरू, इक्वेडर, चीली आदि ने 200 मील का प्रस्ताव रखा था। किन्तु मतैक्य के अभाव में कोई निर्णय न हो सका। कदाचित संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में हुए 1975 के समुद्री सम्मेलन में 12 मील के संबंध में मतैक्य हो गया है। इस क्षेत्र पर तटीय राज्य का प्रभुत्व होते हुए भी राष्ट्रीय निर्बन्धनों के अधीन अन्तरराष्ट्रीय आवागमन के लिए निर्विघ्न यात्रा की सुविधाएं सभी राज्यों के वाणिज्य पोतों को प्राप्त होती हैं।

निम्नलिखित मामलों में तत्सम्बन्धी अन्तरराष्ट्रीय नियमों का विवेचन किया गया है :—

(1) एंग्लो नार्वेयन फिशरीज का मामला . . पृष्ठ 111–119
(2) नार्थ सी कॉंटिनैण्टल शेल्फ का मामला . पृष्ठ 9–19
(3) आर० बनाम केन . . . पृष्ठ 52–56
(4) काँफू चैनल का मामला . . पृष्ठ 143–148

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एंग्लो-नार्वेयन फिशरीज का मामला
(Anglo-Norwegion Fisheries case)

आई० सी० जे० रिपोर्टस् 1951 पृष्ठ 116.

तटीय जल और मत्स्य क्षेत्र के परिसीमन में राज्यों द्वारा अन्तर-राष्ट्रीय विधि के किन सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए। यदि कोई राज्य किसी नियम का, उसके उद्भव काल से ही विरोध करता रहा है और किसी विशेष प्रथा का, जिसका अन्य राज्यों द्वारा विरोध न किया गया हो, पालन करता रहा है तो क्या अन्य राज्य, जो बहुत समय से उसके द्वारा अपनाई गई प्रथा को सहन करते रहे ह, बाद में विकसित विधि के आधार पर उसका विरोध कर सकते है अथवा इस प्रकार की प्रथा से उसके पालक राज्य के अधिकार और अन्य राज्यों में दायित्व स्थापित हो जाते है।

* * * * *

सन् 1616 से 1906 तक नार्वे अपने तटीय जल में किसी दूसरे देश के हस्तक्षेप के बिना मछली पकड़ने का कार्य करता रहा था। किन्तु 1906 में कुछ ब्रिटिश लोग नार्वे के तटीय जल में मछली पकड़ने आने लगे। 1908 में नार्वे ने कुछ सीमाएं निर्धारित की जिनमें विदेशियों द्वारा मछली पकड़ना वर्जित कर दिया तथा उल्लंघन करने वालों को दण्डित भी किया। सन् 1911 में नार्वे ने एक ब्रिटिश मत्स्य नौका को इन सीमाओं का उल्लंघन करने के लिए अभिगृहीत करके दण्डित किया था। 1933 में यूनाइटेड किंगडम की सरकार ने नाव की सरकार को ज्ञापन भेजा जिसमें यह परिवाद किया गया था कि नार्वे ने अपने तटीय समुद्र को परिसीमित करने में अनुचित आधार-रेखाओं का प्रयोग किया है। जुलाई, 1935 में नार्वे ने सुस्थापित राष्ट्रीय हकों, नार्वे के तट की भौगोलिक स्थितियों तथा उत्तरी भाग के निवासियों के महत्वपूर्ण हितों की सुरक्षा को ध्यान में रख कर तथा 1812, 1869, 1881 और 1889 की रायल डिक्रियों का अवलम्ब लेते हुए एक रायल डिक्री द्वारा अपना मत्स्य क्षेत्र उत्तर की ओर 66°, 28.8° उत्तरी अक्षांश तक सीधी-रेखाओं द्वारा निर्धारित कर दिया। ये रेखाएं प्रधान-भूभाग, द्वीपों, लघु द्वीपों, चट्टानों, शैलमालाओं के बिन्दुओं से तट के समान्तर खींची गई थीं जो राज्य सीमा के पूर्वान्त भाग के अन्तिम बिन्दु वारेन्जर्फ-जोर्ड (Varangerfjord) से नार्डलैण्ड काउण्टी (County of Nordland) के ट्रेना (Traena) भाग तक जाती थी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्रिटेन ने नार्वे के दावाकृत 4 मील तक के तटीय क्षेत्र को मान्यता प्रदान करते हुए 1935 के आदेश में निर्धारित रेखाओं की वैधता को अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी कि उनका निर्धारण अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार नहीं किया गया था तथा न्यायालय से प्रार्थना की कि वह आधार-रेखाओं की व्याख्या में लागू किए जाने वाले अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों की घोषणा करें जिनके संदर्भ में नार्वे सरकार अपने मत्स्य परिक्षेत्र को परिसीमित करने की हकदार है।

नार्वे का तर्क था कि उसका परिसीमन सुस्थापित राष्ट्रीय हकों, नार्वे के तट की भौगोलिक स्थितियों तथा उत्तरी भाग के निवासियों के महत्वपूर्ण हितों की सुरक्षा एवं काफी लम्बे समय से अन्य राज्यों द्वारा किसी प्रकार का विरोध किए बिना निरन्तर प्रयोग करते रहने पर आधारित है। इस परिसीमन को अन्य राज्यों की स्वीकृति प्राप्त हो गई है क्योंकि उन्होंने उसके अन्तरराष्ट्रीय विधि के विपरित होने की शिकायत नहीं की है और अब उसे चुनौती नहीं दी जा सकती। नार्वे का समुद्रतट काफी लम्बा है। वह उत्तर ध्रुव वृत्त (आर्कटिक सर्कल) के उत्तर में है और उसमें नार्वे का प्रधान भू-भाग तथा सभी द्वीप, लघु द्वीप चट्टानों और शैलमालाएं, जिन्हें स्कजारगार्ड (Skjargard) के नाम से जाना जाता है, एवं नार्वे का सभी आन्तरिक और राज्य क्षेत्रीय समुद्र शामिल है। प्रधान-भू-भाग का तट, जिसमें यदि फ्जोर्डस (fjords), खाड़ियों, लघु कटानों को शामिल न भी किया जाए तो भी 1500 किलो मीटर से अधिक लम्बा है और सामान्य समुद्र तट से बहुत भिन्न आकार का है। यह पूरा समुद्र तट उबड़-खाबड़ और कटावदार है और ये कटाव प्रायः समुद्र तट से बहुत दूर तक फैले हुए हैं। समुद्री तट की विशिष्ट रचना के कारण प्रधान भू-भाग से लगे हुए तट के किसी विशिष्ट स्थल से यदि नार्वे की अधिकारिता के समुद्र को नापा जाए तो उससे कोई सीधी-रेखा स्थापित नहीं की जा सकती। यथार्थतः शैलमालाएं (स्कजार-गार्ड) की बाह्य-रेखा ही नार्वे की तट रेखा है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र पहाड़ी क्षेत्र है जिससे नार्वे का तट, प्रधान-भू-भाग तथा शैलमालाएं (स्कजार गार्ड) बहुत दूर से ही दिखाई देती हैं। तट के साथ-साथ उथले किनारे तथा प्रकृत जलमग्न स्कजार हैं जो नार्वे के मत्स्य क्षेत्र हैं जिनका उपयोग उस क्षेत्र के निवासी प्रति प्राचीन काल से करते चले आ रहे हैं। तट के दो बिन्दुओं से द्वीप को छूती हुई जो रेखाएं गुजरती हैं वहीं पर मत्स्य क्षेत्र स्थित हैं।

अब प्रश्न यह है कि 1935 के आदेश में निर्धारित परिसीमन रेखाएं अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन वैध हैं या नहीं ?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दोनों पक्षकार इस बात से सहमत हैं कि राज्य क्षेत्रीय सागर की चौड़ाई तटीय जल से 4 मील होनी चाहिए किन्तु समस्या यह है कि किस आधार-रेखा से इस चौड़ाई को मापा जाएं ।

राज्य क्षेत्रीय सागर की चौड़ाई मापने के लिए तट के निम्न जल चिह्न या दो ज्वार भाटों के मध्यक को आधार बनाया जाता है और प्रायः यही आधार विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाया गया है । दोनों पक्षकार इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं किन्तु इसके लागू किए जाने के सम्बन्ध में दोनों में मतभेद है ।

अतः न्यायालय को यह विनिश्चित करना है कि यह निम्न जल चिह्न प्रधान-भूभाग का होना चाहिए या शैलमालाओं (स्कजारगार्ड) का । चूंकि प्रधान-भूभाग का पश्चिमी क्षेत्र शैलमालाओं (स्कजारगार्ड) से सटा हुआ है और वे शैलमालाएं प्रधान-भूभाग का अंग हैं, इसलिए शैलमालाओं (स्कजारगार्ड) की बाह्य रेखाओं को ही नार्वे की राज्य क्षेत्रीय समुद्र पट्टी का परिसीमन करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए । यही हल भौगोलिक वास्तविकताओं पर आधारित है ।

राज्य क्षेत्रीय समुद्र की चौड़ाई मापने के लिए तट के निम्न-जल चिह्न नियम को लागू करने के लिए निम्नलिखित तीन पद्धतियों पर विचार किया जाता है—

1. समानान्तर रेखा खींचने की पद्धति सबसे आसान है । इस पद्धति में समुद्र तट से, जिसमें उस तट पर सभी प्रकार के मोड़, दरारें आदि शामिल होते हैं, राज्य क्षेत्रीय समुद्र पट्टी की बाह्य रेखा खींची जाती है । यह पद्धति साधारण तटों के, जो बहुत कटे-फटे नहीं हैं, सम्बन्ध में आसानी से अपनायी जाती है । जहाँ तट बहुत अधिक कटा-फटा है या जहाँ वह द्वीप समूहों से या शैलमालाओं से सटा हुआ है वहाँ आधार-रेखा निम्न-जल चिह्न से अलग होती है और उसका निर्धारण ज्यामिती रचनाओं के आधार पर ही किया जाता है । ऐसी परिस्थितियों में निम्न-जल चिह्न को आधार रेखा के रूप में नहीं अपनाया जा सकता ।

2. वृत्तों की चापों की पद्धति समुद्र स्थित किसी विन्दु या वस्तु की स्थिति निर्धारित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है । राज्य क्षेत्रीय समुद्र के परिसीमन की यह नई तकनीकी पद्धति है जिसे ब्रिटेन सही मानता है । यह पद्धति इस सिद्धान्त को लागू करने के लिए अपनाई गई है कि राज्य क्षेत्रीय समुद्र पट्टी समुद्र तट की रेखा के साथ-साथ होनी चाहिए । किन्तु विधि के अधीन यह आबद्धकर नहीं है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

3. राज्य क्षेत्रीय समुद्र पट्टी समुद्र तट की रेखा के साथ-साथ होनी चाहिए इस सिद्धान्त को लागू करने के लिए अनेक राज्यों ने सीधी आधार-रेखाओं की पद्धति अपनाई है और इस सिद्धान्त का अन्य राज्यों द्वारा विरोध नहीं किया गया है। इस पद्धति के अन्तर्गत निम्न-जल चिह्नों पर उपयुक्त बिन्दुओं का चयन करके उनके बीच सीधी-रेखाएँ खींची जाती हैं। यह पद्धति न केवल सुनिश्चित खाड़ियों बल्कि कम घुमावदार तटीय क्षेत्र में भी जहाँ राज्य क्षेत्रीय समुद्र पट्टी के सिद्धान्त को सरल स्वरूप प्रदान करना हो, अपनाया जाता है।

ब्रिटेन ने यह दलील दी कि नार्वे अपनी खाड़ियों के आर-पार ही सीधी रेखाएं खींच सकता है किन्तु न्यायालय ने इससे अपनी असहमति प्रकट की। यदि राज्य क्षेत्रीय समुद्र पट्टी शैलमालाओं (स्कजारगार्ड) की बाह्य रेखा के साथ-साथ होनी चाहिए और यदि सीधी आधार-रेखाओं की पद्धति को कुछ मामलों में स्वीकार किया जाना होता है तो इसका कोई विधिमान्य कारण दिखाई नहीं देता। ऐसी रेखाएं खाड़ियों के आर-पार ही क्यों खींची जाएं और उन्हें उन द्वीपों, लघु द्वीपों और चट्टानों के बीच या उस समुद्री क्षेत्र के, जो उन्हें अलग करती है, आर-पार क्यों नहीं खींचा जा सकता जब कि ऐसे क्षेत्र खाड़ियों की श्रेणी में नहीं आते। इतना ही पर्याप्त है कि ऐसे क्षेत्र शैलमालाओं के बीच स्थित होने चाहिएं और वे तटीय भूमि के अंग होने चाहिएं।

ब्रिटेन ने यह स्वीकार किया है कि नार्वे को ऐतिहासिक आधार पर यह दावा करने का हक प्राप्त है कि खाड़ियों या जलडमरुमध्य की प्रकृति के फ्जोर्डस सुंडस (Sunds) का जल तथा द्वीप के किनारे और प्रधान भू-भाग के बीच का जल उसका आन्तरिक या राज्य क्षेत्रीय समुद्र है। ऐतिहासिक जल से तात्पर्य आम तौर से उस जल से होता है जो अपनी प्रकृति से आन्तरिक न होते हुए भी ऐतिहासिक हक के आधार पर आन्तरिक जल माना जाता है। ब्रिटेन ऐसे हक को अन्तरराष्ट्रीय विधि का अल्पीकरण मानता है। उसके अनुसार नार्वे द्वारा इस जल का राज्य क्षेत्रीय या आन्तरिक जल होने का दावा इस आधार पर न्यायोचित माना जा सकता है कि वह अन्य राज्यों द्वारा किसी प्रकार के विरोध के बिना काफी लम्बे समय से उस पर अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता रहा है इससे इस जल पर उसकी अधिकारिता को, जो कि प्रवृत्त नियमों का अल्पीकरण करती है, मान्यता प्राप्त हो गई है। किन्तु इस जल पर नार्वे की प्रभुत्ता, अन्तरराष्ट्रीय विधि के विपरीत होते हुए भी, एक अपवाद है।

जहाँ तक 10 मील की लम्बाई के नियम का सम्बन्ध है, वह नार्वे पर किसी भी प्रकार से लागू नहीं होता क्योंकि उसने हमेशा अपने तट पर इस नियम के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लागू किए जाने का विरोध किया है। किन्तु ब्रिटेन का कहना है कि सीधी रेखाएं दस मील से अधिक लम्बी नहीं होनी चाहिएं।

यद्यपि खाड़ियों के सम्बन्ध में दस मील के नियम को कुछ राज्यों ने अपनी राष्ट्रीय विधि, संधियों तथा अभिसमयों में अपनाया है और यद्यपि इन राज्यों के बीच हुए कुछ माध्यस्थ विनिश्चयों में उसे लागू भी किया गया है। तथापि अन्य राज्यों ने भिन्न सीमा को अपनाया है। परिणामतः इस मील के नियम को अन्तरराष्ट्रीय विधि के सामान्य नियम की मान्यता प्राप्त नहीं हुई है। अतः न्यायालय इस मत से सहमत नहीं है कि नार्वे अपनी आधार-रेखाओं के सम्बन्ध में आपवादिक पद्धति की मान्यता का दावा करता है। शैलमालाएं नार्वे के प्रधान भू-भाग का अंग हैं तथा राज्य क्षेत्रीय समुद्र पट्टी की आधार रेखाओं और प्रधान भू-भाग के बीच का जल उसका आन्तरिक जल है। अतः नार्वे ने 1935 की डिक्री द्वारा मत्स्य क्षेत्र के परिसीमन के लिए आधार-रेखाएं निर्धारित करके अन्तरराष्ट्रीय विधि का उल्लंघन नहीं किया है।

समुद्री क्षेत्रों का परिसीमन सदा एक अन्तरराष्ट्रीय पहलू रहा है और वह तटीय राज्य की राष्ट्रीय विधि में अभिव्यक्त इच्छा पर आधारित नहीं हो सकता। यद्यपि यह सही है कि परिसीमन का कार्य अनिवार्य रूप से एकपक्षीय कार्य है किन्तु अन्य राज्यों के सम्बन्ध में परिसीमन की वैधता अन्तरराष्ट्रीय विधि पर आधारित है। राज्य की भूमि पर राज्य क्षेत्रीय समुद्र आश्रित होता है और भूमि से ही तटवर्ती राज्य को अपने तट के पास के समुद्र का अधिकार प्राप्त होता है। इस राज्य क्षेत्रीय समुद्र के परिसीमन के लिए निर्धारित आधार-रेखाएं तटीय दिशावर्ती होनी चाहिएं। यह एक भौगोलिक तथ्य है जिसको ध्यान में रखते हुए एक क्षेत्र के विशिष्ट आर्थिक हितों की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती जिसकी यथार्थता एवं महत्व काफी समय से चली आ रही प्रथा से साबित होता है।

नार्वे ने परिसीमन की परम्परागत पद्धति के लागू किए जाने के लिए 1935 की डिक्री को पेश किया है और इस बात का दावा किया है कि वह अन्तरराष्ट्रीय विधि के पूर्णतया अनुरूप है। नार्वे ने सामान्य विधि के लागू किए जाने की न्यायिकता के सम्बन्ध में इतिहास तथा अन्य बातों का अवलम्ब लिया है तथा ऐतिहासिक हक का सिद्धान्त नार्वे की दृष्टि में सामान्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम के अनुकूल है।

1869 की डिक्री में 1812 की डिक्री के प्रति निर्देश करते हुए स्कजारगाड के दो बाह्यतम बिन्दुओं के बीच 26 मील लम्बी सीधी रेखा को न्यायोचित ठहराया गया है। 1812 की डिक्री में प्रधान भू-भाग से दूरतम स्थित जल के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बाहर निकले हुए द्वीप या लघु द्वीप को आधार-बिन्दु माना गया था जब कि 1869 की डिक्री में सीमा निर्धारण में उन द्वीपों या लघु द्वीपों के बाह्यतम बिन्दु को आधार बिन्दु माना गया था जो निरन्तर जलाच्छादित नहीं रहते थे। उस समय तक अन्तरराष्ट्रीय विधि में यह स्थापित हो चुका था कि परिसीमन के लिए आधार-रेखाएं तट की सामान्य दिशा के साथ-साथ होनी चाहिएं। किन्तु नार्वे 1869 से लगातार अपनी परिसीमन पद्धति को अन्य देशों पर लागू करता रहा है और किसी भी अन्य राज्य ने उसकी इस पद्धति का विरोध नहीं किया है। अतः नार्वे की पद्धति के प्रति अन्य राज्यों द्वारा प्रदर्शित सामान्य उदारता ऐसा तथ्य है जो नार्वे के दावे को सिद्ध करता है और उसे चुनौती नहीं दी जा सकती।

ब्रिटेन की इस दलील को कि वह नार्वे की परिसीमन पद्धति से अनभिज्ञ था, न्यायालय ने स्वीकार नहीं किया। उत्तरी सागर (नार्थ सी) के तटीय राज्य के रूप में, इस क्षेत्र की मात्स्य की में अत्याधिक हितबद्ध होने तथा समद्री-शक्ति के रूप में समुद्र की विधि से परम्परागत रूप से सम्पृक्त होने और विशेष रूप से समुद्र की स्वतन्त्रता की प्रतिरक्षा करने में हितबद्ध होने के कारण ब्रिटेन 1869 की डिक्री से अनभिज्ञ नहीं हो सकता जिसके कारण उसने फ्रान्स की सरकार को नार्वे से स्पष्टीकरण मांगने के लिए उकसाया था।

उत्तरी सागर मत्स्य (पुलिस) अभिसमय, 1882 [नार्थ सी फिशरीज़ (पुलिस) कन्वेन्शन ऑफ 1882] के सम्बन्ध में नार्वे का रुख एक और ऐसा तथ्य है जिसने तुरन्त ही ब्रिटेन का ध्यान आकृष्ट किया होगा। ब्रिटेन और उत्तरी सागर (नार्थ सी) के तटीय राज्यों के लिए शायद ही इससे महत्वपूर्ण कोई दूसरा अभिसमय हो। नार्वे द्वारा इस अभिसमय को मानने से इन्कार करने पर उसके अपने समुद्री क्षेत्र के, विशेष रूप से खाड़ियों के परिसीमन का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। खाड़ियों के सीधी-रेखाओं द्वारा परिसीमन के प्रश्न के बारे में अभिसमय (कन्वेन्शन) में अपनाई गई अधिकतम लम्बाई के सम्बन्ध में नार्वे द्वारा चुनौती दी गई थी। ब्रिटेन ने नार्वे द्वारा इस अभिसमय को स्वीकार कराने के लिए कुछ कदम उठाए थे जो इस तथ्य के स्पष्ट द्योतक हैं कि वह नार्वे के तटीय समुद्र की सभी समस्याओं से अवगत था और उनमें हितबद्ध था।

ब्रिटेन को नार्वे के तटीय समुद्र की स्थिति की जानकारी होने के कारण तथा नार्वे की पद्धति के प्रति अन्तरराष्ट्रीय समुदाय की सामान्य उदारता और उत्तर सागर (नार्थ-सी) में ब्रिटेन की स्थिति, उस प्रश्न में उसके अपने हित और लम्बे समय तक उसके द्वारा विरोध न किए जाने के कारण नार्वे को ब्रिटेन के विरुद्ध अपनी पद्धति का प्रवर्तन कराने का अधिकार है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि नार्वे की प्रणाली द्वारा स्थापित सीधी-रेखाओं की पद्धति नार्वे के तट की विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण लागू की गई थी। विवाद उठने से पूर्व यह पद्धति लगातार तथा काफी लम्बे समय से व्यवहार में लाए जाने के कारण पुष्ट हो गई है तथा राज्यों का रुख इस बात का प्रमाण है कि वे उसे अन्तरराष्ट्रीय विधि के विपरीत नहीं मानते थे।

इसके प्रतिकूल विश्वासप्रद साक्ष्य के अभाव में न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि 1935 की डिक्री द्वारा अपनाई गई रेखाएं नार्वे की परम्परागत पद्धति के अनुरूप थीं।

ब्रिटेन का आक्षेप कुछ आधार-रेखाओं के बारे में था। जिसमें से एक 38.6 समुद्री मील लम्बी है। न्यायालय के अनुसार वह खाड़ी को घेरती है। दूसरी 44 मील लम्बी है और लगभग 100 वर्ग मील समुद्र को प्रभावित करती है। उसके सम्बन्ध में कहा गया कि वह तट की सामान्य दिशा के साथ-साथ नहीं चलती। नियम के उचित ढंग से लागू किए जाने के लिए वह ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस विचलन के बारे में शिकायत की गई है उसके तथा नियम के अनुसार तट की सामान्य दिशा कौन सी मानी जानी चाहिए, इसमें क्या सम्बन्ध है। अतः जब तक कि उसका स्पष्ट दुरुपयोग न हुआ हो केवल एक ही क्षेत्र के तट की जांच नहीं की जानी चाहिए और न ही केवल उस क्षेत्र के अनेक चार्टों से एकत्रित धारणा का अवलम्ब लिया जाना चाहिए। इस मामले में आधार-रेखा और भूमि की बनावट में ऐसा अन्तर नहीं है कि उसे नार्वे तट का सामान्य दिशा का अशुद्ध रूप दर्शाने वाला माना जाए। यद्यपि यह मान भी लिया जाए कि जिस क्षेत्र के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है उसमें काफी विचलन है तथापि उन्हें अवैध नहीं माना जा सकता क्योंकि नार्वे सरकार ने ऐतिहासिक हक पर विश्वास किया है जो इन जलों के प्रति निर्देश करता है यथा व्हेल पकड़ने और मारने का एक मात्र विशेषाधिकार से, जो 17 वीं सदी के अन्त में लेफ्टीनेण्ट कमाण्डर एरिक लॉर्च को अनेक अनुज्ञप्तियों के अधीन दिया गया था, यह दर्शित होता है कि पानी में डूबी हुई चट्टानों के समीप का जल और उससे संलग्न मत्स्य क्षेत्र एक मात्र नार्वे की प्रभुत्ता के अन्तर्गत माने जाते थे। इन प्राचीन रियायतों से नार्वे सरकार के कथन की पुष्टि होती है कि 1812 से पूर्व सुरक्षित मत्स्य क्षेत्र यथार्थतः 1935 के परिसीमन से अधिक विस्तृत था। उसमें वे सभी मत्स्य तटबन्ध शामिल थे जहाँ से भूमि दिखाई देती थी जो उस समय लागू होने वाले "नजर की दूरी" के परिसीमन के सिद्धान्त के अनुसार है और जिसे ब्रिटेन स्वीकार करता था। यद्यपि यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है कि परिसीमन का यह सिद्धान्त किस विशिष्ट क्षेत्रों को लागू होता है तथापि नार्वे सरकार द्वारा अपने कथन के समर्थन में प्रस्तुत की गई

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐतिहासिक सामग्री से 1935 के परिसीमन के शामिल किए गए मत्स्य क्षेत्रों पर राज्य के निवासियों के लिए सुरक्षित परम्परागत अधिकारों के विद्यमान होने के अभिवाक् की पुष्टि होती है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जनता की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं पर आधारित तथा अतिप्राचीन और शान्तिपूर्ण उपयोग के आधार पर खींची गई परिसीमन रेखाएं युक्तियुक्त और मर्यादित हैं।

न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि मत्स्य क्षेत्र के परिसीमन के लिए 1935 की डिक्री में जिस पद्धति को अपनाया गया था वह अन्तरराष्ट्रीय विधि के विपरीत नहीं है तथा इस पद्धति के लागू किए जाने में उक्त डिक्री द्वारा नियत आधार-रेखाएं अन्तरराष्ट्रीय विधि के विपरित नहीं हैं।

* * * *

टिप्पणी :—1. तटीय जल तथा मत्स्य क्षेत्र के परिसीमन का कार्य यद्यपि राज्यों की अधिकारिता के अधीन होता है तथापि उसे अन्तरराष्ट्रीय विधि लागू होती है। परिसीमन सम्बन्धी अन्तरराष्ट्रीय विधि का कोई एक सिद्धान्त सभी स्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता। वह तटीय भूमि की स्थिति पर आधारित होता है। सामान्य तटों पर समानान्तर आधार-रेखा तथा अतिकटाव के तटों पर सीधी आधार-रेखा के सिद्धान्त को अपनाया जाता है। यह आधार-रेखा निम्न-जल चिह्न से मापी जाती है। इस आधार-रेखा से राज्य क्षेत्रीय समुद्र की चौड़ाई राज्य विधि के अनुसार 3 मील से लेकर 12 मील तक हो सकती है। इस निर्णय में उसे पक्षकारों द्वारा 4 मील स्वीकार किया गया है।

2. सामान्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्त सभी राज्यों को लागू होते हैं किन्तु उस राज्य के विरुद्ध लागू नहीं किए जा सकते जो उन सिद्धान्तों या किसी विशेष सिद्धान्त का प्रारम्भ से ही विरोध करता रहा हो और किसी विशेष प्रथा का, अन्य राज्यों द्वारा विरोध किए बिना अनुपालन करता रहा हो। इस प्रकार इस प्रथा का अनुपालन करते रहने से उस राज्य के अधिकार और अन्य राज्यों के उस राज्य के प्रति दायित्व स्थापित हो जाते हैं, और अन्तरराष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धान्त उस राज्य को लागू नहीं होते।

3. आधार-रेखा खींचे जाने के सम्बन्ध में तथा आन्तरिक जल एवं क्षेत्रीय जल के सम्बन्ध में देखिए 1958 जनेवा कन्वेन्शन ऑन टेरिटोरियल सी एण्ड कॉण्टिग्युअस जोन।

——:⊙:——

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

7. राज्य अधिकारिता

प्रत्येक स्वतंत्र राज्य को अपने राज्य की सीमाओं के अन्दर पूर्ण सत्तात्मक अधिकारिता प्राप्त होती है । राज्य की सीमाएं भूमि प्रदेश, जल प्रदेश तथा आकाशमण्डल तक विस्तृत होती हैं । इन सीमाओं के अन्दर वह व्यक्तियों और सम्पत्तियों पर अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है अर्थात् अपनी विधि तथा प्रभुत्ता के अधिकारों का प्रयोग करता है ।

पृथ्वी के किसी स्वामीहीन आवासरहित भूखण्ड पर प्रभुत्व केवल खोज के आधार पर नहीं होता अपितु उसके लिए आवश्यक है कि राज्य अपनी प्रभुता की अधिकारिता का सम्पादन प्रभावकारी अधिकार प्रदर्शक राज्यकार्यों द्वारा करें ।

राज्य अपनी अधिकारिता के प्रयोग में पूर्ण स्वतंत्र हैं और वे ऐसे नियम बना सकते हैं जो अन्तरराष्ट्रीय विधि से असंगत या विपरीत न हों । इसके अधीन वह अपनी दण्ड विधि का विस्तार राज्यक्षेत्र से बाहर किए गए अपराधों पर भी, जो उसकी प्रजा या विदेशियों द्वारा किए गए हों, विस्तृत कर सकता है यदि उनका प्रभाव उस राज्य पर पड़ता है या वह अपराध अन्तरराष्ट्रीय विधि के द्वारा अपराध स्थापित किए गए हैं । यदि कोई व्यक्ति, चाहे वह विदेशी हो, और उसकी अधिकारिता में आवासित न भी हो, अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा मान्यताप्राप्त अपराध करता है यथा महत्वपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय हितों को क्षति पहुंचाने वाले कार्य, मानवता के विरुद्ध अपराध यथा मानवघात, युद्ध अपराध, जल दस्युता आदि तो उस पर प्रत्येक राज्य को अपनी दाण्डिक अधिकारिता के प्रयोग का अधिकार है ।

इस अध्याय में दिए गए मामलों में इन्हीं सिद्धान्तों की पुष्टि की गई है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पॉमस द्वीप का मामला
(The Island of Palmes Case)

स्थायी अन्तरराष्ट्रीय मध्यस्थ न्यायालय (1928) 19; 2 आर० आई० ए० ए० 829.

राज्यों द्वारा नए क्षेत्र पर प्रभुत्व स्थापित करने के अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन अनेक स्वीकृत ढंग हैं यथा अधिभोग, चिरभोग, उपचय, हस्तान्तरण, पराजय, मतगणना, गिरवी आदि। अधिभोग द्वारा प्रभुत्व प्राप्त करना केवल स्वामीहीन क्षेत्र पर लागू होता है। इस मामले में निर्णय हेतु मुख्य प्रश्न यह था कि क्या एक आवास-रहित भूखण्ड पर प्रभुत्व केवल उसको खोजने से ही स्थापित हो जाता है अथवा उस क्षेत्र पर प्रभावकारी अधिकारप्रदर्शक राज्य कार्यों के सम्पादन से पूर्ण प्रभुता प्राप्त होती है।

* * * *

सन् 1677 में स्पेन ने पॉमस या मियांगस द्वीप की खोज की थी। अमरीका और स्पेन के बीच 1898 में हुई शान्ति संधि द्वारा वह द्वीप अमरीका को अन्तरित कर दिया गया था। 1700 में नीदरलैण्ड ने इस द्वीप पर अपना कब्जा स्थापित कर लिया था और तभी से वह निरन्तर उसकी अधिकारिता में रहा। सन् 1906 में अमरीका और नीदरलैण्ड के बीच इस बात पर विवाद उठ खड़ा हुआ कि उस द्वीप पर किसका प्रभुत्व है। अमरीका का कहना था कि वह द्वीप फिलीपाइन द्वीपसमूह में सम्मिलित है और वह स्पेन अमरीका युद्ध की समाप्ति के बाद स्पेन द्वारा 1898 की शान्ति संधि द्वारा समर्पित किया गया था। जबकि नीदरलैण्ड का कहना था कि वह 1700 से पूर्व से उस द्वीप पर निर्विवाद प्राधिकार का प्रयोग कर रहा है। अतः यह विवाद स्थायी अन्तरराष्ट्रीय मध्यस्थ न्यायालय को निर्दिष्ट किया गया कि वह यह विनिश्चय करे कि उस द्वीप पर अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों तथा उन पर लागू होने वाली संधियों के उपबन्धों के आधार पर अमरीका या नीदरलैण्ड का प्रभुत्व है।

प्रभुत्व के संबंध में मत व्यक्त करते हुए मध्यस्थ ने कहा कि प्रभुत्व राज्यों द्वारा पारस्परिक संबंध स्थापित करने की स्वतंत्रता का द्योतक है। स्वतंत्रता का अर्थ है कि किसी राज्य द्वारा अपने क्षेत्र के अन्तर्गत दूसरे राज्यों के हस्तक्षेप के बिना अपनी इच्छानुसार राज्य कार्य सम्पन्न करना। अतः पृथ्वी की सतह के किसी नए क्षेत्र को किसी राज्य के क्षेत्र में सम्मिलित किए जाने के लिए उस

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र पर उसका प्रभुत्व होना विधि की एक आवश्यक शर्त है। यह तथ्य कि कोई राज्य किसी क्षेत्र में राज्य कार्यों का स्वतंत्र संचालन करता है प्रभुत्व की विधिक स्थिति का विशिष्ट लक्षण है। साधारणतया राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व मान्यताप्राप्त स्थिति होती है और उसका विस्तार या तो अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा यथा मान्य तथा कथित प्राकृतिक सीमाओं द्वारा या निर्विवाद परिसीमन के बाह्य चिह्नों द्वारा या हितबद्ध पड़ौसी राज्यों के बीच किए गए सीमा संबंधी अभिसमयों जैसे विधिक बचनबन्धों द्वारा या स्थिर सीमाओं के भीतर राज्यों के मान्यता प्रदान करने के कार्यों द्वारा परिसीमित होता है। जहां किसी राज्यक्षेत्र के किसी भाग पर प्रभुत्व के संबंध में कोई विवाद उठ खड़ा होता है वहां यह देखा जाता है कि दावा करने वाले किस राज्य का हक दूसरे राज्य से अच्छा और वैध है। यदि किसी पक्षकार का दावा इस तथ्य पर आधारित है कि उसका विवादग्रस्त क्षेत्र पर काफी समय से अन्य राज्यों के हस्तक्षेप के बिना प्रभुत्व है और दूसरे पक्षकार का दावा इस तथ्य पर आधारित है कि उसने किसी समय उस क्षेत्र पर वैध रूप से प्रभुत्व अर्जित कर लिया था तो पहले पक्षकार के विरुद्ध दूसरे पक्षकार द्वारा अपनी वरीयता स्थापित करने के लिए यह पर्याप्त नहीं होगा। उसे पहले पक्षकार के मुकाबले अपने हक को उत्कृष्ट दिखाने के लिए यह प्रमाणित करना होगा कि न केवल उसने उस क्षेत्र को खोजा है बल्कि उस पर उसका प्रभुत्व निरन्तर विद्यमान था तथा मामले के फाइल किए जाने के समय भी उस पर उसका प्रभुत्व था।

वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व प्रभावपूर्ण अधिभोग, विजय या अध्यर्पण द्वारा अर्जित किया जा सकता है। किन्तु अध्यर्पण के संबंध में यह आवश्यक है कि अध्यर्पण करने वाले को उस क्षेत्र का परित्याग करने का अधिकार होना चाहिए। रूढ़ि के अनुसार यह माना जाता है कि राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व का निरन्तर और शान्तिपूर्ण प्रदर्शन हक का द्योतक है। जैसा कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के विकास के पूर्व भूमि सीमाएं राज्यों द्वारा प्रयुक्त राज्य शक्ति के प्रयोग द्वारा निश्चित की जाती थीं उसी प्रकार अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन राज्यों के बीच सीमाओं की स्थापना में लगातार एवं शान्तिपूर्वक प्रभुत्व का प्रदर्शन एक महत्वपूर्ण शर्त है।

* * * *

अमरीका का कहना है कि पॉमस पर उसका हक 1898 की पैरिस संधि के अधीन स्पेन द्वारा किए गए अध्यर्पण पर आधारित है। पैरिस संधि के अधीन किए गए अध्यर्पण के अनुसार उक्त संधि के अनुच्छेद III में वर्णित क्षेत्र पर, जिसका संबंध पॉमस या मियांगस द्वीप से भी है, प्रभुत्व के सभी अधिकार, जो स्पेन को प्राप्त थे, अमरीका को अन्तरित हो गए थे। अमरीका ने अपने हक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का दावा इस आधार पर भी किया है कि उस द्वीप की खोज के बाद वह सबसे पहला स्पेन का उत्तराधिकारी है।

पॉमस द्वीप के खोज निकाले जाने के संबंध में जो रिपोर्टें अभिलेख पर उपलब्ध हैं उनमें केवल यह कथित किया गया है कि एक द्वीप 'देखा गया' था जो भौगोलिक स्थिति के अनुसार सम्भवतः विवादास्पद द्वीप हो सकता है। किन्तु उस द्वीप पर पहुंचने और वहां के आदिवासियों से सम्पर्क स्थापित करने के बारे में उनमें कोई जिक्र नहीं किया गया है और स्पेन द्वारा उस पर कब्जा करने या उस पर प्रशासन स्थापित करने का तो कोई संकेत है ही नहीं।

यदि अमरीका द्वारा दिए गए तर्क को मान लिया जाए कि केवल देखना मात्र अधिकार में लेने का द्योतक है और देखने वाले को विधितः प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है तो प्रश्न यह उठता है कि क्या पैरिस संधि किए जाने के समय और उसके प्रवृत्त होने पर वह प्रभुत्व विद्यमान था।

18वीं शताब्दी के मध्य में विद्यमान तथा विकसित विचारधारा से यह सिद्धान्त निर्धारित हुआ है कि राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व के दावे को स्थापित करने के लिए अधिभोग प्रभावपूर्ण होना आवश्यक है अर्थात् राज्यक्षेत्रीय प्रभुत्व का दावा करने वाला राज्य दूसरे राज्यों और उनके राष्ट्रिकों को कुछ प्रत्याभूतियां प्रदान करे। अतः मात्र खोज निकालना और तत्पश्चात् उसका कब्जा प्राप्त करने के लिए कोई कार्यवाही न करना वर्तमान समय में प्रभुत्व की स्थापना के लिए पर्याप्त नहीं है। खोज से केवल अपूर्ण प्रभुत्व का हक प्राप्त होता है जो समुचित समय के अन्तर्गत प्रभावी अधिभोग द्वारा पूर्ण किया जा सकता है। किन्तु स्पेन ने पॉमस द्वीप पर अधिभोग स्थापित करने या प्रभुत्व के प्रयोग का कोई कार्य किए जाने का प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है। यदि यह मान लिया जाए कि 1898 की पैरिस संधि के समय स्पेन का अपूर्ण हक था तो वह दूसरे राज्य द्वारा दर्शित प्राधिकार के निरन्तर प्रयोग के समक्ष ठहर नहीं सकता क्योंकि प्राधिकार का निरन्तर प्रयोग दूसरे राज्य द्वारा प्रस्तुत हक पर अभिभावी हो जाता है।

* * * *

अमरीका का दूसरा तर्क यह था कि स्पेन और नीदरलैण्ड के बीच हुई मनस्टर संधि द्वारा पॉमस पर स्पेन के हक को मान्यता दी गई है। इस संधि का अनुच्छेद दोनों देशों के बीच पूर्व और पश्चिमी द्वीपसमूहों के राज्यक्षेत्रीय सम्बन्धों के बारे में है। उसमें कोई सीमाएं निर्धारित नहीं की गई हैं और न ही उसमें राज्यों के निश्चित क्षत्रों का वर्णन है। बल्कि उससे कब्जे के सिद्धान्त की कसौटी स्थापित होती है। यदि संधि का उद्देश्य खोज के आधार पर प्रभुत्व को मान्यता

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देना होता तो उसका स्पष्ट उल्लेख उसमें कर दिया गया होता । अतः केवल खोज के आधार पर अनुच्छेद V के अनुसार हक स्थापित नहीं होता क्योंकि उस संधि द्वारा राज्यक्षेत्रों का बंटवारा भौगोलिक स्थिति के आधार पर नहीं किया गया है और न ही उसमें खोज के आधार पर हक को स्वीकार किया गया है । अतः खोज के आधार पर हक स्थापित करने वाला कोई ठोस और ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित प्रमाण अमरीका ने प्रस्तुत नहीं किया है ।

1677 में स्पेन ने इस द्वीप पर कब्जा किया और 1714 में स्पेन और नीदरलैण्ड के बीच यूत्रेख्त संधि की गई जिसके अनुच्छेद X में यह अनुबंधित है कि मनस्टर संधि तब तक कायम रहेगी जब तक वह उपान्तरित नहीं कर दी जाती तथा उसका अनुच्छेद V जहां तक वह स्पेन और नीदरलैण्ड से संबंधित है, प्रवृत्त रहेगा । इसके अतिरिक्त कोई ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जिसमें कभी भी बाद में मनस्टर या यूत्रेख्त संधियों का उल्लंघन करके उस राज्यक्षेत्र पर अधिकार किए जाने का जिक्र हो । इससे उस द्वीप पर 1714 में स्पेन का कब्जा होना और इन संधियों द्वारा उसे हक प्रदान किया जाना सिद्ध नहीं होता । इसके अतिरिक्त पॉमस द्वीप के फिलीपाइन्स की पूर्ववर्ती स्पेनिस सरकार का अंग होने या उसके प्रशासनिक या न्यायिक अधिकारिता का क्षेत्र होने का स्पष्ट उल्लेख करने वाला कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है ।

* * * *

जहां तक तट से समीपता के आधार पर हक का प्रश्न है कुछ परिस्थितियों में राज्यों ने यह दावा किया है कि उनके तट से, अन्य राज्यों के क्षेत्रों की अपेक्षा, निकटवर्ती द्वीप भौगोलिक स्थिति के कारण उनके क्षेत्र के अंग होते किन्तु यह दर्शित करना असम्भव है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि का ऐसा कोई निश्चयात्मक नियम है कि कोई द्वीप किसी राज्य के राज्यक्षेत्रीय समुद्र के बाहर होते हुए भी दूसरे राज्य के महाद्वीप या बड़े द्वीप की अपेक्षा उससे अधिक समीप होने के कारण उसका क्षेत्र मान लिया जाए । इस सिद्धान्त के बार-बार तथा निश्चितता के साथ प्रयोग किए जाने के प्रमाण प्राप्त नहीं होते जो उसे अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम के रुप में स्थापित करते हों । किन्तु यह सिद्धान्त, अपनी प्रकृति के कारण इतना अनिश्चित और प्रतिवादित है कि एक ही राज्य की सरकारों ने विभिन्न अवसरों पर उसकी अकाट्यता के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मत व्यक्त किए हैं ।

द्वीपों की तट से समीपता का सिद्धान्त वहां उपयुक्त हो सकता है जहां द्वीपों के आबंटन का प्रश्न किसी ऐसे करार पर आधारित हो, जो अनिवार्यतः विधि पर आधारित न होकर किसी ऐसे विनिश्चय पर आधारित हो, जो किसी विशिष्ट

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्य के पक्ष में प्रभुत्व की विधितः उपधारणा स्थापित करने वाले नियम के रूप में स्वीकृत हो ।

राज्यक्षेत्रीय प्रभुत्व के प्रश्नों का विनिश्चय करने के लिए विधिक पद्धति के रूप में समीपता का यह सिद्धान्त ग्राह्य नहीं है । क्योंकि इसमें यथार्थता का सम्पूर्ण अभाव है तथा उसके लागू किए जाने से मनमाने परिणाम निकाले जा सकते हैं । प्रश्नगत द्वीप के संबंध में यह विशेष रूप से सही होगा क्योंकि वह केवल एक ही महाद्वीप के निकट न होकर एक बहुत बड़े द्वीपसमूह का भाग है जिसके विभिन्न भागों के बीच परिसीमन सहजतः से स्पष्ट नहीं है । ऐसे मामले में भी जहां आसन्नवर्तिता प्राकृतिक सीमाओं के साथ हो, इस सिद्धान्त को लागू करने के लिए प्रभुत्व का प्रयोग दर्शित करना आवश्यक होता है । किन्तु प्रस्तुत मामले में यह एक अलग द्वीप है अतः यह सिद्धान्त लागू नहीं होता । अब प्रश्न यह है कि क्या कब्जे या प्रभावपूर्ण प्रभुत्व के प्रयोग के आधार पर हक के दावे को मान्यता दी जाए ।

नीदरलैण्ड का कहना है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 17वीं शताब्दी में स्थानीय राजाओं के साथ अभिसमयों के आधार पर संबंध स्थापित करके पॉमस या मियांगस द्वीप पर डच प्रभुत्व स्थापित कर लिया था और गत 200 वर्ष से प्रभुत्व के अधिकार का प्रयोग किया है । इस बीच स्थानीय राजाओं के साथ अनेक संविदाएं की गई थीं जिनमें स्थानीय राजाओं ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी या डच राज्य के प्रतिनिधि के रूप में आधिपत्य का प्रयोग करना स्वीकार किया था । इनमें सबसे अभिनव 1885 की संविदा है जो वहां के राजाओं के साथ की गई थी और उसमें यह उपबन्धित था कि उस द्वीप की विधिक मुद्रा डच मुद्रा होगी तथा विदेशियों पर अधिकारिता डच सरकार की होगी । राजा अपने नागरिकों के साथ महत्वपूर्ण आर्थिक संबंध तथा विदेशियों के साथ प्रत्यक्ष संबंध स्थापित नहीं कर सकता है । इन संविदाओं का समय-समय पर नवीकरण होता रहा जिससे डच प्रभुत्व के प्रभावी होने का ज्ञान होता है । इस बात की पुष्टि जनरल वुड की 1906 की रिपोर्ट से भी होती है । उस रिपोर्ट से विवादग्रस्त द्वीप पर डच प्रभुत्व तथा उनके निरन्तर संबंधों के संकेत मिलते हैं ।

डच कम्पनी को 1602 के चार्टर के अनुच्छेद 35 के अधीन सरकार की ओर से राजनैतिक संबंध स्थापित करने का अधिकार प्रदान किया गया था । इसकी पुष्टि मनस्टर संधि के अनुच्छेद 5 और यूत्रेख्त संधि से भी होती है कि ईस्ट एण्ड वेस्ट इंडिया कम्पनियों को ऐसी स्थितियां पैदा करने का अधिकार था जो अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य हों । यद्यपि डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी और स्थानीय राजाओं के बीच हुई संविदाएं अन्तरराष्ट्रीय विधि के अर्थ में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐसी संधियां या अभिसमय नहीं थे जिनके आधार पर ऐसे अधिकार और बाध्यताएं सृजित हो सकती थीं जैसे कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत संधियों से उत्पन्न होते हैं। इन संविदाओं द्वारा स्थापित विधिक संबंधों का स्वरूप महाधिपत्य और सामन्त राज्य या तथाकथित उपनिवेशिक संरक्षित राज्य जैसा था।

डच सरकार द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से, जो 17वीं शताब्दी के हैं, यह निष्कर्ष निकलता है कि पॉमस या मियांगस द्वीप 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तबुकन सामन्त राज्य का भाग माना जाता था और 1825 के पश्चात् वह तरुणा, सांगी के उत्तर में स्थित, सामन्त राज्य का आश्रित क्षेत्र रहा है। तबुकन और तरुणा दोनों ही नीदरलैण्ड के प्रभुत्व में थे। अतः नीदरलण्ड यह स्थापित करने में सफल रहा है कि कम-से-कम 1790 से पॉमस द्वीप सांगी द्वीप के देशी राज्य का भाग था और उस पर 1677 से डच ईस्ट इंडिया कम्पनी और तदनुसार नीदरलण्ड का महाधिपत्य था और उक्त द्वीप पर सामन्त राज्य या महाधिपत्य के प्राधिकार के कार्य 1700 और 1898 तथा 1898 और 1906 के बीच किए गए थे। इसके विपरीत स्पेन द्वारा कोई ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे यह स्थापित होता हो कि स्पेन का उस द्वीप पर प्रभुत्व था और जो नीदरलैण्ड के प्रभुत्व का खण्डन करता हो। ये परिस्थितियां तथा स्पेन और नीदरलैण्ड के बीच पॉमस या मियांगस के संबंध में दो सौ वर्ष से अधिक समय तक किसी प्रकार का विवाद न होना इस बात का अप्रत्यक्ष सबूत है कि पॉमस पर नीदरलैण्ड का अनन्य प्रभुत्व था।

यदि यह मान भी लिया जाए कि पैरिस संधि के प्रवृत्त होने के समय वह द्वीप किसी देश का भाग नहीं था तो भी स्पेन केवल खोज या समीपता के आधार पर व्युत्पन्न अधिकारों का ही अध्यर्पण कर सकता था। इसके विपरीत नीदरलैण्ड का अपूर्ण हक इतर शक्तियों के साथ संधि करके उपान्तरित नहीं किया जा सकता था और न ही ऐसी संधि नीदरलैण्ड द्वारा अपने अपूर्ण हक को पूरा करने के लिए किए गए कार्यों को अवैध प्रकृति का बना सकती थी। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के अन्य साक्ष्य से भी यह दर्शित होता है कि 1700 से 1906 के बीच पॉमस द्वीप पर नीदरलैण्ड शान्तिपूर्ण और निर्विवाद प्रभुत्व का प्रयोग करता रहा है जिससे यह साबित होता है कि पॉमस द्वीप पर नीदरलैण्ड का प्रभुत्व था।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले में न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धान्त निर्धारित किए—

1. पृथ्वी के किसी भूखण्ड की खोज के आधार पर प्रभुत्व का हक केवल अपूर्ण हक होता है तथा प्रभुत्व की पूर्णता के लिए प्रभावी अधिभोग स्थापित होना आवश्यक है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

2. किसी द्वीप के तट से समीपता के आधार पर राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व के दावे के सिद्धान्त का अन्तरराष्ट्रीय विधि में कोई आधार नहीं है ।

* * * *

सन् 1932 में क्लिप्परटन द्वीपसमूह[1] की खोज के आधार पर प्रभुत्व के हक को स्वीकार करते हुए मध्यस्थ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यदि द्वीप निर्जन है तो उस पर कब्जा कर लेना ही पर्याप्त है उसमें प्रभावी कब्जे का सिद्धान्त लागू नहीं होता । 1933 में ईस्टर्न ग्रीनलैण्ड के मामले में[2] जिसमें डेन्मार्क और नार्वे के बीच उत्पन्न हुए विवाद में अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि आवेदक द्वारा प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए निम्न-लिखित तथ्यों का प्रमाणित होना आवश्यक है :—

1. प्रभुत्व स्थापित करने की इच्छा ।

2. प्रभुत्व का वास्तविक प्रयोग अथवा प्रभुत्व की प्रदर्शन द्वारा समुचित रूप से स्थापना किन्तु विशेष भौगोलिक स्थिति के क्षेत्र एवं कठोर जलवायु के प्रदेश में अधिभोग के प्रभावी होने का नियम लागू नहीं किया जा सकता उसमें राज्य की क्रियाशीलता पर्याप्त होगी । न्यायालय ने डेन्मार्क के प्रभुत्व के दावे को इस आधार पर स्वीकार किया था कि उसने नार्वे की अपेक्षा उस क्षेत्र में प्रभुत्व के द्योतक प्रभावपूर्ण कार्य करने के प्रमाण प्रस्तुत किए थे ।

1953 में मिनक्वायर्स द्वीप समूह पर[3] प्रभुत्व के हक संबंधी इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच उत्पन्न विवाद में निर्णय देते हुए अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय ने फ्रांमस द्वीप के मामले में निर्धारित सिद्धान्त को स्वीकृति प्रदान की । इस मामले में इंग्लैण्ड के ड्यूक ऑफ नार्मेण्डी ने 1066 में विजय द्वारा उस पर कब्जा किया था तथा समय-समय पर इंग्लैण्ड ने उस पर प्रभावपूर्ण अधिभोग का प्रदर्शन किया था । जबकि फ्रांस का दावा था कि 1204 में नार्मेण्डी के विघटन के बाद से वह उसके कब्जे में रहा है किन्तु वह प्रभावपूर्ण अधिभोग सिद्ध करने में असमर्थ रहा है अतः न्यायालय ने इंग्लैण्ड के प्राचीन कब्जे तथा प्रभुत्व के द्योतक प्रभाव-पूर्ण राज्य कार्यों के प्रमाणों के आधार पर उसके हक को स्वीकृति प्रदान की ।

संबंधित साहित्य :—

जॉनसन :—कन्सालीडेशन इज ए रूट ऑफ टाइटिल इन इण्टरनेशनल लॉ, 1955 कैम्ब्रिज लॉ जर्नल 215 (1955); जॉनसन :—मिनक्वायर्स का मामला, 3 इण्टरनेशनल एण्ड कम्परेटिव लॉ क्वार्टरली 189 (1954); जॉनसन :—आर्टिफिशियल आईलैण्ड्स, 4 इन्टरनेशनल लॉ क्वार्टरली 203 (1951); हाइड, इन्टरनेशनल लॉ (द्वितीय संस्करण 1945); वान डरहेटेड, डिस्कवपी, सिम्बोलिक एनेकजेशन एण्ड वचुंअल इफेक्टिवनेस इन इण्टरनेशनल लॉ, 29 ए०जे०आई०एल० 448 (1935); विशप विलियम डब्ल्यू०, इण्टरनेशनल लॉ केसेज एन्ड मेटीरियल्स, (1962) पृष्ठ 353-368.

1. क्लिप्परटन आइलैण्ड आर्बिट्रेशन, (1931) 2 आर० आई० ए० ए० 1105.
2. पी०सी०आई०जे० (1933) सिरीज ए/बी संख्या 53; 3 डब्ल्यू०सी०आर० 151.
3. आई० सी० जे० रिपोर्टस् 1953 पृष्ठ 47.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इचमैन बनाम अटर्नी जनरल, इज़राइल
(Eichmann v. Attorney General of the Government of Israel)

सुप्रीम कोर्ट ऑफ इज़राइल (1962) 136 आई०एल०आर 277.

यह मामला विदेशियों पर अधिकारिता के संबंध में है। इस मामले में न्यायालय के विचाराधीन प्रश्न यह था कि क्या एक विदेशी द्वारा विदेश में किए गए अपराध के लिए अन्य राज्य उसे अभियोजित कर सकता है।

* * * *

इचमैन ने दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान यहूदियों की हत्या कर उन्हें समाप्त कर के कार्य में महत्वपूर्ण भाग लिया था। जर्मनी की हार के बाद वह अर्जन्टीना में छिप गया। इज़राइलियों द्वारा उसे अर्जिन्टीना से व्यपहृत कर इज़राइल लाया गया और उस पर युद्ध अपराधों तथा यहूदियों के विरुद्ध किए गए अपराधों के लिए इज़राइली विधि के अधीन अभियोजित किया गया। इचमैन ने इस अभियोजन का विरोध इस आधार पर किया कि जिन अपराधों के लिए उसे अभियोजित किया जा रहा है वे इजराइल से बाहर एक विदेशी द्वारा किए गए थे तथा उस समय किए गए थे जब इज़राइल राज्य की स्थापना नहीं हुई थी। इसके अतिरिक्त उसे दूसरे देश में व्यपहृत करके लाया गया है अतः इज़राइली न्यायालय द्वारा उस पर अधिकारिता का प्रयोग करना अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल है। इज़राइली न्यायालय ने इन तर्कों को अस्वीकार करते हुए उसे दोषी पाया और उसे मृत्यु दण्ड दिया। इस निर्णय के विरुद्ध उसने सुप्रीम कोर्ट में अपील फाइल की जिसे न्यायालय ने नामंजूर कर दिया।

न्यायालय ने अपीलार्थी के इस तर्क को राष्ट्रीय विधि और अन्तरराष्ट्रीय विधि में विरोध होने पर अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, अस्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि "इस विषय पर इज़राइली प्रथा अंग्रेजी प्रथा के समान है"। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय विधि के बीच संबंधों में निम्नलिखित नियम लागू होते हैं :—

1. जब कोई सिद्धान्त साधारण अन्तरराष्ट्रीय मान्यताप्राप्त कर लेता है तब उसे राष्ट्रीय विधि में सम्मिलित कर लिया जाता है और वह उसका अंग बन जाता है और न्यायालय उसे लागू करते हैं।
2. जहां राष्ट्रीय विधि और अन्तरराष्ट्रीय विधि के उपबन्धों में कोई विरोध होता है वहां न्यायालयों का यह कर्तव्य होता है कि वह स्थानीय विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि को प्राथमिकता दें और इसे लागू

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करें। यह उपधारणा सही है कि विधानमण्डल मान्यताप्राप्त अन्तर-राष्ट्रीय विधि के साधारण सिद्धान्तों के अनुरूप विधि को व्यवस्थित करने का प्रयास करती है। किन्तु जहां परिनियम से स्पष्टतया प्रतिकूल आशय प्रकट होता हो वहां न्यायालय को उस उपधारणा की उपेक्षा करनी चाहिए।

3. यदि किसी स्थानीय कानूनी उपबन्ध का एक ही अर्थ निकलता हो तो न्यायालय उसकी व्याख्या इस प्रकार करेंगे कि वह अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार हो।

इस तर्क के संबंध में कि दाण्डिक विधि का भूतलक्षी रूप से प्रभावी होना अन्तर-राष्ट्रीय विधि के विपरीत है न्यायालय ने कहा कि यह सिद्धान्त अभी रूढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि का सिद्धान्त नहीं बन पाया है। यह सही है कि अनेक देशों ने इसे अपने संविधान या दण्ड संहिता का भाग बनाया है किन्तु ऐसा इसलिए किया गया है क्योंकि इसका नैतिक महत्व बहुत है और उन देशों के न्यायालय इस सिद्धान्त से विचलन नहीं कर सकते किन्तु यह स्थिति सार्वभौमिक नहीं है। अतः युनाइटेड किंगडम में भूतलक्षी प्रभाव से दण्ड विधियां बनाने पर कोई संवैधानिक सीमा नहीं है और यदि विधानमण्डल ऐसी विधियां बनाती है तो न्यायालय उन्हें विधितः अमान्य घोषित नहीं कर सकते। यदि इसे मान लिया जाता है तो यह और भी अधिक अनैतिक होगा कि अपीलार्थी के समान जघन्य अपराध का दोषी पाए जाने पर कोई भी व्यक्ति विधि के अभाव में अदण्डित रह जाए।

अपीलार्थी का यह तर्क कि विदेशी नागरिकों द्वारा विदेशों में किए गए अपराधों पर लागू की जाने वाली दण्ड विधि राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व के सिद्धान्त के विरुद्ध है, न्यायालय ने अस्वीकार करते हुए कहा कि रूढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि का ऐसा कोई नियम नहीं है जिसका उल्लंघन ऐसी विधि बनाने से होता है। **लोटस के मामले**[1] में अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि राज्यक्षेत्रीय प्रभुत्व के सिद्धान्त के लिए केवल यह आवश्यक है कि राज्य अपनी राज्यक्षेत्रीय सीमा के भीतर दण्डित करने की शक्ति का प्रयोग करे उससे बाहर नहीं। इस निर्बन्धन के अध्यधीन प्रत्येक राज्य अपने राज्य से बाहर किए गए कार्यों के संबंध में अपनी विधियां और अपने न्यायालयों की अधिकारिता लागू करने के लिए विस्तृत स्वविवेक का प्रयोग कर सकते हैं। इस स्वविवेक के प्रयोग पर कोई निर्बन्धन तभी स्वीकार्य हो सकता है जब स्वविवेक को अवरोधित करने वाले विशिष्ट अन्तरराष्ट्रीय नियमों का निर्देश किया जा सकता

1. (1927 सिरीज ए, नम्बर 10 (2 डब्ल्यू०सी०आर० 20).

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्भव हो। किन्तु ऐसे नियम एक तो राज्य प्रभुत्व की धारणा के विपरीत होंगे क्योंकि उनसे राज्यों की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन अधिरोपित होंगे। दूसरे यदि यह मान भी लिया जाए कि दण्ड विधि की राज्यक्षेत्रीय प्रकृति का सिद्धान्त विभिन्न राज्यों में दृढ़ता से स्थापित हो गया है तो भी इन सभी राज्यों की दाण्डिक अधिकारिता इतनी विस्तृत मानी जाती है कि यदि कोई अपराध किसी राज्य के राज्यक्षेत्र के बाहर भी किया जाता हो तो वह उस राज्य की अधिकारिता में आ जाता है।

जहां तक किसी राज्य द्वारा ऐसे व्यक्तियों को, जो उस राज्य के नागरिक नहीं है और जिन्होंने राज्य की सीमा से बाहर अपराध किए हैं, दण्डित करने की अधिकारिता का प्रश्न है, न्यायालय ने कहा कि राज्य को ऐसा करने से प्रतिषिद्ध करने वाला अन्तरराष्ट्रीय विधि का नियम अभी स्थापित नहीं हो पाया है। इसके विपरीत प्रिवी काउन्सिल ने **अलया के मामले**[1] में पैलिस्टाइन मैण्डेटरी द्वारा फिलिस्तीन से बाहर किए गए अपराधों के लिए दण्डात्मक आदेश को बहाल रखा था।

यदि यह तर्क मान भी लिया जाए कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार कोई राज्य विदेशी राष्ट्रिकों द्वारा उस राज्य की सीमाओं से बाहर किए गए कार्यों के लिए उनका विचारण नहीं कर सकता, तो भी इससे अपीलार्थी को कोई सहायता प्राप्त नहीं होती। इसका कारण यह है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि राज्यों के अधिकारों को मान्यता देती है व्यक्ति के अधिकारों को नहीं। जब तक किसी अन्तरराष्ट्रीय संधि द्वारा व्यक्ति में ऐसा अधिकार निहित नहीं कर दिया जाता तब तक कोई व्यक्ति उन्हें प्रवर्तित नहीं कर सकता। इज़राइल द्वारा 1950 में नाज़ी एण्ड नाज़ी कोलेबोरेटर्स (पनिश्मेण्ट) लॉ के पारित करने के अधिकार पर अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा कोई प्रतिषेध नहीं लगाया गया था। इस विधि में वर्णित अपराधों को सदा ही राज्यक्षेत्रातीत प्रकृति के अपराध माना गया था। विधि द्वारा सृजित अपराध और जिस अपराध के लिए अपीलार्थी को सिद्धदोष ठहराया गया था उनके बारे में आज यह समझा जाना चाहिए कि वे सदा से अन्तरराष्ट्रीय अपराध हैं और वे अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा निषिद्ध हैं और इनसे व्यक्तिगत दाण्डिक दायित्व अधिरोपित होता है। इन अपराधों की विशिष्ट सार्वभौमिक प्रकृति के कारण ही हर एक राज्य में यह शक्ति निहित की गई है कि वह हर व्यक्ति का, जिसने ऐसे अपराध करने में सहायता की है, विचारण करे और उसे दण्ड दे।

1. मोलवन बनाम अटर्नी जनरल, इज़राइल, (1948) ए०सी० 351.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह सुविज्ञात है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम केवल अन्तरराष्ट्रीय संधियों और स्पष्ट अन्तरराष्ट्रीय प्रथाओं से व्युत्पन्न नहीं होते। सर्वोच्च विधायी प्राधिकार और अन्तरराष्ट्रीय संहिताओं के अभाव में उसका विकास कॉमन लॉ के समान होता है। उसके नियम एक-एक मामले से तथा संधियों और अन्तरराष्ट्रीय रूढ़ियों में अन्तर्विष्ट नियमों की सादृश्यता से और सभ्य राष्ट्रों द्वारा मान्यता-प्राप्त 'विधि के साधारण सिद्धान्तों' के आधार पर तथा महत्वपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय आवश्यकताओं के प्रकाश में स्थापित होते हैं। रूढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि कभी भी निष्क्रय नहीं रही बल्कि उसका निरन्तर विकास होता रहा है।

रूढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा मान्यताप्राप्त अपराधों में वे कार्य आते हैं जो महत्वपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय हितों को क्षति पहुंचाते हैं। वे अन्तरराष्ट्रीय समाज की नींव और सुरक्षा को कमजोर करते हैं, वे उन सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों और मानवीय सिद्धान्तों का, जो सभ्य देशों द्वारा अपनाई गई दण्ड विधि की पद्धतियों का मूल हैं अतिक्रमण करते हैं। अन्तरराष्ट्रीय विधि में निहित जो सिद्धान्त ऐसे अपराधों को लागू होता है वह यह है कि वह व्यक्ति, जिसने कोई अपराध किया है और वह व्यक्ति जिसे उस कार्य के किए जाने के समय उसकी जघन्य प्रकृति का पूर्ण ज्ञान था विधि की दृष्टि से अपने आचरण के लिए उत्तर-दायी होना चाहिए।

यह सही है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि उनके उल्लंघन के लिए दण्ड विहित नहीं करती है और न उसके लिए कोई अन्तरराष्ट्रीय दण्ड न्यायालय या दण्ड अधिरोपित करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय तन्त्र ही अभी तक स्थापित हो सका है। किन्तु तत्समय की कठिनाइयों को अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा दूर किया जा सकता है। अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार उसके उपबन्धों का अतिक्रमण करने वाले व्यक्तियों को दण्ड देने के लिए विश्व के देशों को प्राधिकार दिया गया है और राज्य ऐसे अपराधियों को दण्डित करने में अन्तरराष्ट्रीय विधि के उपबन्धों का प्रवर्तन करते हैं या उन्हें विधायन द्वारा अपनी राष्ट्रीय विधि में सन्निहित कर उनका प्रवर्तन करते हैं।

जब ऐसे कार्य अधिक मात्रा में किए जाने लगें तो उन्हें रोकने के लिए राज्य की अधिकारिता उस की अपनी क्षेत्रीय सीमाओं से परे उन अपराधों के करने वालों के निवास तक विस्तृत हो जाती है। और जो राज्य उनके कार्यों को सहन करता है या प्रोत्साहित करता है वह अन्तरराष्ट्रीय स्थायित्व को खतरा पैदा करता है क्योंकि ऐसे कार्य अन्तरराष्ट्रीय समाज की नींव को पूरी तरह से कमजोर करते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यूरेम्बर्ग अधिकरण के निर्णय ने अन्तरराष्ट्रीय विधि की व्याख्या करते हुए उसे लागू करने का एक दृष्टान्त स्थापित किया है और दूसरे न्यायालयों द्वारा उनका अनुपालन न किया जाना अशिष्टता माना जाता है।

न्यूरेम्बर्ग के सिद्धान्त अति प्राचीन समय से रूढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के अंग रहे हैं और उनके संबंध में यदि कोई संदेह था भी तो वह अब संयुक्त राष्ट्र महासभा के संकल्प द्वारा उनके अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के रूप में पुष्ट किए जाने पर दूर हो गया है।

इन अपराधों की सार्वभौमिक प्रकृति के कारण ही प्रत्येक राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे अपराधों को करने वाले या करने की तैयारी में भाग लेने वाले व्यक्तियों का विचारण करे और उनके लिए उन्हें दण्डित करे। चाहे वह अपराध उसकी सीमा से बाहर अथवा विदेशी द्वारा ही क्यों न किया गया हो। उदाहरणार्थ अन्तरराष्ट्रीय विधि में समुद्री डाकेजनी के मामले में सभी राज्यों की अधिकारिता को मान्यता दी गई है। वही सिद्धान्त इसमें भी लागू होता है। अन्तरराष्ट्रीय समाज के महत्वपूर्ण हितों के आधार पर राज्यों की इस अधिकारिता को स्वीकार किया जाता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि जब कोई राज्य ऐसे व्यक्ति को अभियोजित और दण्डित करता है तो वह अन्तरराष्ट्रीय समाज के एक अंग और उसके अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है। इजराइल को सार्वभौमिक अधिकारिता के सिद्धान्त के आधार पर और अन्तरराष्ट्रीय विधि के संरक्षक एवं अभिकर्ता के रूप में अपीलार्थी के विचारण और अभियोजन का अधिकार है। ऐसा होने के कारण यह तर्क महत्वहीन हो जाता है कि अपराध किए जाने के समय इजराइल राज्य अस्तित्व में ही नहीं था।

न्यायालय ने अपराधी को दूसरे देश से व्यपहृत करके लाए जाने तथा न्यायालय की अधिकारिता में प्रस्तुत किए जाने तक के संबंध में स्थानीय, ब्रिटिश, अमरीकन तथा कॉण्टीनेण्टल देशों के दृष्टान्तों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले :—

(क) यदि ऐसे राज्य के, जहां 'प्रपलायी अपराधी' विचारण के लिए लाया जाता है, और शरण देने वाले देश के बीच कोई प्रत्यर्पण करार न किया गया हो या यदि ऐसा करार किया भी गया हो लेकिन अपराधी को प्रत्यर्पित न किया गया हो तो न्यायालय उन परिस्थितियों की जांच नहीं करेगा जिनके अधीन उसे निरुद्ध किया गया था और उसकी अधिकारिता के क्षेत्र में लाया गया था।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(ख) यह तब भी लागू होता है यदि अपराधी का तर्क यह हो कि अपहरण उसका अभियोजन करने वाले राज्य के अभिकर्ताओं द्वारा किया गया था क्योंकि ऐसे मामले में जिस अधिकार का अतिक्रमण होता है वह अपराधी का अधिकार नहीं है बल्कि व्यथित राज्य का प्रभुत्वसम्पन्न अधिकार है। अतः इस विवाद्यक का हल अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ही किया जाना चाहिए और उस न्यायालय के विचार योग्य नहीं है जिसकी अधिकारिता के क्षेत्र में अपराधी को लाया गया हो।

(ग) अन्तरराष्ट्रीय विधि की दृष्टि से व्यथित राज्य अपने प्रभुत्व का अतिक्रमण माफ कर सकता है और अपने दावों का, जिसमें अपराधी के उसके राज्यक्षेत्र में लौटने का दावा भी शामिल है, अधित्यजन कर सकता है और ऐसा अधित्यजन स्पष्टतया या उपमति द्वारा किया जा सकता है।

(घ) केवल एक ही दशा में प्रपलायी अपराधी को उन्मुक्ति का अधिकार प्राप्त होता है और वह तब जब कि उसे शरण देने वाले देश द्वारा उसके प्रत्यार्पण की मांग करने वाले देश को किसी ऐसे विनिर्दिष्ट अपराध के लिए प्रत्यर्पित किया जाता है जो कि ऐसा अपराध न हो जिसके लिए उसका विचारण किया गया था।

(ङ) शरण और उन्मुक्ति का अधिकार शरण देने वाले देश का होता है न कि अपराधी का।

अपीलार्थी अन्तरराष्ट्रीय विधि की दृष्टि से 'प्रपलायी' (फ्यूजिटिव) है क्योंकि जो अपराध उसने किए हैं वे अन्तरराष्ट्रीय प्रकृति के हैं और उनका सभ्य देशों द्वारा सार्वजनिक रूप से तिरस्कार किया गया है, अतः सार्वभौमिक अधिकारिता के सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक देश को उसका विचारण करने का अधिकार है। यह अधिकारिता इजराइल राज्य को 1948 में उसके प्रभुत्वसम्पन्न राज्य के रूप में स्थापित होने पर स्वतः प्राप्त हो जाती है। अतः अभियुक्त का विचारण करके उसने अन्तरराष्ट्रीय विधि के अंग के रूप में कार्य किया है और उसने उसके उपबन्धों को अपनी विधि के माध्यम से प्रवृत्त करने का कार्य किया है। परिणामतः इस बात का कोई महत्व नहीं है कि प्रश्नगत अपराध उस समय किए गए थे जब इजराइल राज्य अस्तित्व में नहीं था या उसके राज्यक्षेत्र के बाहर किए गए थे। अतः इजराइल को अभियोजन की अधिकारिता प्राप्त थी।

* * * *

टिप्पणी :—1. इस मामले में इस सिद्धान्त को निर्धारित किया गया है कि अन्तरराष्ट्रीय प्रकृति के अपराधों के लिए कोई भी राष्ट्र अभियुक्त को दण्डित कर सकता है। दण्ड विधि के भूतलक्षी रूप से प्रभावी होने का सिद्धान्त राष्ट्रीय विधि का सिद्धान्त है लेकिन वह अभी रुढ़िजन्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम के रूप में स्थापित नहीं हो पाया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विदेशी नागरिकों द्वारा किए गए अपराधों के लिए क्षेत्रीय प्रभुत्वसम्पन्न अपनी अधिकारिता के अधीन उन्हें दण्ड दे सकता है यदि उस देश की विधि ऐसा करने का अधिकार प्रदान करती है । अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार कोई ऐसा प्रतिषेध नहीं है । लोटस के मामले में भी इसे स्वीकार किया गया है ।

अन्तरराष्ट्रीय अपराधों की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

वे कार्य जो महत्वपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय हितों को क्षति पहुंचाते हैं, अन्तरराष्ट्रीय समाज की नींव और सुरक्षा को कमजोर करते हैं, उन सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों और मानवीय सिद्धान्तों का, जो सभ्य देशों द्वारा अपनाई गई दण्ड विधि की पद्धतियों का मूल हैं, अतिक्रमण करते हैं ।

ऐसे अपराध करने वाले या करने की तैयारी में भाग लेने वाले व्यक्ति का विचारण करने और उसे दण्ड देने का अधिकार अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन प्रत्येक राज्य को प्राप्त है ।

* * * *

फिर बनाम इलीनोस (1886) 119 यू० एस० 436 तथा एक्सपार्टी लोपेज (6 एफ० सप्लीमेण्ट 342) के मामलों में भी प्रपलायी अपराधी का व्यपहरण करके न्यायालय के समक्ष लाए जाने पर न्यायालय ने अधिकारिता संबंधी उसके आक्षेप को अस्वीकार कर दिया था ।

पठनीय सामग्री :—

डिकिन्सन, जूरिस्डिक्शन फालोइंग सीजर आर अरेण्ट इन वायलेशन ऑफ इण्टरनेशनल लॉ, 28 ए० जे० आई० एल० पृष्ठ 231 (1934); प्रियस, किडनैपिंग ऑफ फ्यूगिटिव फ्रॉम जस्टिस ऑन फारेन टेरीटरी, 29, ए० जे० आई० एल० 502 (1935); फारडोजो, मेन एक्सट्राडीशन फेक्स, इन एवडेक्शन दि एन्सर, 55 ए० जे० आई० एल० 127 (1961).

* * * *

—: o :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता

अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना संयुक्त राष्ट्र संविधि के अनुच्छेद 7 तथा 92 में संस्थान के प्रमुख अंग के रूप में की गई है। न्यायालय में 15 न्यायाधिपति होते हैं। न्यायाधिपतियों का निर्वचन सुरक्षा परिषद् और महासभा द्वारा एक दूसरे से स्वतंत्र रूप से किया जाता है। न्यायाधिपति वही व्यक्ति निर्वाचित हो सकता है जो उच्च नैतिक चरित्र वाला हो, अपने देश में उच्चतम न्यायिक पदों पर नियुक्त किया जा सकता हो या मान्य क्षमता का अन्तरराष्ट्रीय विधिवेत्ता होने की अर्हताओं को पूरा करता हो। न्यायाधिपतियों के निर्वाचन करने में अर्हताओं के साथ यह भी ध्यान रखा जाता है कि न्यायालय में विश्व की सभ्यता के विभिन्न रूपों एवं विश्व की प्रमुख विधिक पद्धतियों का प्रतिनिधित्व हो। इनका कार्यकाल नौ वर्ष का होता है। संविधि में न्यायाधिपतियों की पूर्ण स्वतंत्रता का उपबंध किया गया है।

न्यायालय के समक्ष संविधि के अनुच्छेद 34 के अनुसार केवल राज्य ही पक्षकार हो सकते हैं। न्यायालय के समक्ष वही राज्य वाद ला सकते हैं जो निम्न श्रेणियों में आते है :—

1. संयुक्त राष्ट्र के सदस्य [अनुच्छेद 93 (2)]
2. ऐसे राज्य जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं किंतु सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर प्रत्येक मामले में महा सभा द्वारा निर्धारित शर्तों के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की संविधि को स्वीकार करते हैं। [अनु० 93 (2)]
3. अन्य राज्य, जो न्यायालय की संविधि के अनुच्छेद 35 (2) के अधीन सुरक्षा परिषद् द्वारा अधिकथित शर्तों को स्वीकार करते हैं जो निम्न प्रकार हैं:

   (1) न्यायालय के निर्णयों के पालन के लिए वचनबद्धता तथा संयुक्त राष्ट्र संविधि के अनुच्छेद 94 के दायित्वों को स्वीकार करना।

न्यायालय को मुख्य रूप से दो प्रकार की अधिकारिता प्राप्त है—(1) विवादास्पद विषयक, (2) परामर्शी। विवादास्पद विषयक अधिकारिता दो प्रकार की है: ऐच्छिक तथा अनिवार्य अधिकारिता। ऐच्छिक मामलों में न्यायालय की अधिकारिता पक्षकारों की इच्छा पर आधारित है। यदि पक्षकार न्यायालय की अधिकारिता को अस्वीकार कर दें तो न्यायालय उस वाद में निर्णय देने में सक्षम नहीं रहता। किंतु जहां राज्य न्यायालय की अधिकारिता को अनिवार्य स्वीकार कर लेते हैं वहां न्यायालय की अधिकारिता बनी रहती है। अनिवार्य अधिकारिता न्यायालय संविधि के अनुच्छेद 36(2) के अधीन राज्य द्वारा दी गई विशिष्ट अधिसूचना से प्राप्त होती है।

इस अध्याय में दिए गए निर्णय, न्यायालय के समक्ष कौन पक्षकार हो सकता है और न्यायालय की अधिकारिता किस प्रकार प्राप्त होती है आदि प्रश्नों से सम्बन्धित हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एंग्लो-ईरानियन ऑयल कम्पनी का मामला
(Anglo-Iranian Oil Co. Case)

युनाइटेड किंगडम बनाम ईरान
(United Kingdom *v.* Iran)

आई० सी० जे० रिपोर्ट्स 1952 पृष्ठ 93.

यह मामला अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में महत्वपूर्ण माना जाता है। इस मामले में इस सिद्धान्त पर भी विचार किया गया है कि एक राज्य की कम्पनी के साथ दूसरे राज्य द्वारा किए गए करार से उन दोनों राज्यों के बीच संधिगत संबंध स्थापित नहीं होते।

29 अप्रैल, 1933 को परशिया (अब ईरान) सरकार तथा एंग्लो-परशियन ऑयल कम्पनी लिमिटेड (तत्पश्चात् एंग्लो-ईरानियन ऑयल कम्पनी लिमिटेड) के, जो युनाइटेड किंगडम में निगमित थी, बीच एक करार हुआ। ईरान की मजलिस (संसद्) ने 28 मई, 1933 को उस करार का अनुसमर्थन किया और दूसरे दिन अर्थात् 24 मई, 1933 को वह प्रवृत्त हो गया। इस करार के अनुसार कंपनी को ईरान में तेल निकालने संबंधी 60 वर्ष के लिए कुछ रियायतें प्रदान की गई थीं। इसमें ईरान सरकार ने यह स्वीकार किया था कि उन रियायतों को बातिल नहीं किया जाएगा और न भविष्य में उनकी शर्तों में सामान्य या विशेष विधायन या कार्यकारी प्राधिकार के अधीन परिवर्तन ही किया जाएगा।

मार्च, 1951 में ईरान की संसद् ने ईरान में तेल उद्योग के राष्ट्रीयकरण का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए विधि पारित की और अप्रैल, 1951 में संपूर्ण ईरान में तेल उद्योग के राष्ट्रीयकरण से संबंधित विधि के प्रवर्तन के लिए प्रक्रिया संबंधी एक अन्य विधि पारित की गई।

इन विधियों के पारित किए जाने के परिणामस्वरूप ईरान सरकार और एंग्लो-ईरानियन ऑयल कंपनी लिमिटेड के बीच एक विवाद उठ खड़ा हुआ। युनाइटेड किंगडम की सरकार ने ब्रिटिश कंपनी के मामले को अपने हाथ में ले लिया और राजनयिक संरक्षण के अधिकार के आधार पर 26 मई, 1951 को ईरान की इंपीरियल सरकार के विरुद्ध कार्यवाहियां संस्थित करते हुए न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल किया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

22 जून, 1951 को युनाइटेड किंगडम की सरकार ने स्टेट्यूट के अनुच्छेद 41 और न्यायालय के नियमों के अनुच्छेद 61 के अनुसार यह निवेदन किया कि न्यायालय युनाइटेड किंगडम की सरकार के अधिकारों का परिरक्षण करने के लिए अनन्तिम अध्युपाय घोषित करे। न्यायालय ने 5 जुलाई, 1951 के अपने आदेश द्वारा कतिपय अध्युपाय घोषित करते हुए यह कथन किया कि ऐसे अध्युपायों को घोषणा करने से मामले के गुणागुण के आधार पर न्यायालय की अधिकारिता के प्रश्न का किसी भी प्रकार से पूर्व निर्णय नहीं माना जाएगा और ऐसी अधिकारिता के विरुद्ध दलीलें देने के प्रत्यर्थी के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

प्रस्तुत मामले में न्यायालय की अधिकारिता अनुच्छेद 36 के पैरा 2 के अधीन पारस्परिकता की शर्त के आधार पक्षकारों द्वारा की गई घोषणाओं पर निर्भर करती है। इन घोषणाओं के अनुसार न्यायालय की अधिकारिता केवल उस सीमा तक है जहां तक दोनों घोषणाओं में उसकी पुष्टि की गई है। क्योंकि ईरान की घोषणा की परिधि युनाइटेड किंगडम की घोषणा की अपेक्षा बहुत सीमित है इसलिए न्यायालय ने ईरान की घोषणा को अपना आधार बनाया है।

इस घोषणा के प्रथम खण्ड के अनुसार न्यायालय को केवल तभी अधिकारिता है जब कि विवाद ईरान द्वारा स्वीकृत संधि या अभिसमय के लागू किए जाने के संबंध में हो। दोनों पक्षकार इस संबंध में सहमत हैं किंतु वे इस प्रश्न पर सहमत नहीं हैं कि क्या यह अधिकारिता ईरान द्वारा घोषणा के अनुसमर्थन के पश्चात् स्वीकृत संधियों या अभिसमयों के लागू किए जाने तक सीमित है या ईरान द्वारा किसी भी समय स्वीकृत संधियों या अभिसमयों के लागू किए जाने तक सीमित है।

ईरान सरकार का कहना है कि न्यायालय की अधिकारिता घोषणा के अनुसमर्थन के पश्चात् ईरान द्वारा स्वीकृत संधियों या अभिसमयों के लागू किए जाने तक सीमित है। युनाइटेड किंगडम की सरकार का कहना है कि यह अधिकारिता ईरान द्वारा किसी भी समय स्वीकृत संधियों या अभिसमयों के लागू किए जाने तक सीमित है ।

जब ईरान सरकार न्यायालय की अनिवार्य अधिकारिता स्वीकार करने वाली थी उस समय उसने यह इच्छा प्रकट की थी कि न्यायालय की अधिकारिता से वे सभी विवाद अपवर्जित कर दिए जाएं जो आत्मसमर्पण संधियों के लागू किए जाने से संबंधित हों और इसी इच्छा के आधार पर घोषणा तैयार की गई थी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह संभव प्रतीत नहीं होता कि घोषणा में जिन निबंधनों का प्रयोग किया गया है, उनसे किसी भी समय स्वीकृत संधियां या अभिसमय अभिप्रेत है।

लेकिन यूनाइटेड किंगडम का कहना है कि यदि न्यायालय को यह अभिनिर्धारित भी करना पड़े कि न्यायालय की अधिकारिता ईरान द्वारा घोषणा के अनुसमर्थन के पश्चात् स्वीकृत संधियों या अभिसमयों के लागू किए जाने से संबंधित विवादों तक ही सीमति है तो भी उसे प्रस्तुत मामले में अधिकारिता होगी क्योंकि जिन कार्यों के बारे में उसने परिवाद किया है उनसे युनाइटेड किंगडम के प्रति ईरान की कतिपय ऐसी बाध्यताओं का अतिक्रमण होता है जो ईरान द्वारा घोषणा के अनुसमर्थन के पश्चात् स्वीकृत संधियों या अभिसमयों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई थीं। इस संबंध में 20 फरवरी, 1934 को ईरान और डेन्मार्क के बीच की गई मित्रता, स्थापन और वाणिज्य संधि (ट्रीटी ऑफ फ्रैंडशिप, इस्टैब्लिशमेंट एंड कॉमर्स); 25 अप्रैल, 1934 को ईरान और स्विटज़रलैंड के बीच की गई स्थापन अभिसमय (एस्टैब्लिशमेंट कन्वेनशन) और 14 मार्च, 1937 को ईरान और टर्की के बीच की गई स्थापन अभिसमय (इस्टैब्लिशमेंट कन्वेनशन) का अवलंब लिया गया था।

ईरान और डेनमार्क के बीच 1934 की संधि में यह उपबंधित था कि उच्च संविदाकार पक्षकारों के राष्ट्रिक, जहां तक उनके शरीर और संपत्ति का संबंध है, दूसरे पक्षकार के राज्यक्षेत्र में इस प्रकार माने जाएंगे और उनसे इस प्रकार व्यवहार किया जाएगा जो साधारण अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों और प्रथा के अनुसार हो। उन्हें वहां पर विधियों और प्राधिकारियों से निरन्तर वैसा ही संरक्षण मिलेगा जैसा कि उन्हें अपने शरीर, संपत्ति, अधिकारों और हितों के राज्यक्षेत्र में मिलता है। अन्य दोनों अभिसमयों में भी इसी प्रकार के खंड थे।

14 मार्च, 1957 को युनाइटेड किंगडम और ईरान के बीच हुई संधि के अनुच्छेद IX में और 9 फरवरी, 1903 को हुए वाणिज्यिक अभिसमय (कमर्शियल कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 2 में अन्तर्विष्ट सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र खंड के आधार पर युनाइटेड किंगडम ने इन तीन संधियों का अवलम्ब लिया है। युनाइटेड किंगडम सरकार का कहना है कि ईरान सरकार के एंग्लो-ईरानियन ऑयल कंपनी के प्रति आचरण से अन्तरराष्ट्रीय विधि के उन सिद्धान्तों और पद्धति का भंग होता है जिनका डेनमार्क के साथ की गई संधि में ईरान ने डेनमार्क के राष्ट्रिकों के प्रति अनुपालन करने का वचन दिया था तथा ईरान और युनाइटेड किंगडम के बीच हुई संधियों में अन्तर्विष्ट सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र खंड के प्रवर्तन द्वारा ईरान ब्रिटिश राष्ट्रिकों के प्रति अनुपालन करने के लिए आबद्ध हो गया था। परिणामतः युनाइटेड किंगडम ने जो विवाद न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह संधि डेनमार्क और ईरान के बीच 1934 की संधि, जिसे ईरान ने अपनी घोषणा के अनुसमर्थन के पश्चात् स्वीकार किया था—के प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः लागू किए जाने की स्थितियों या तथ्यों से संबंधित है ।

न्यायालय ने युनाइटेड किंगडम की इस दलील को स्वीकार नहीं किया क्योंकि यह सुस्पष्ट है कि ईरान द्वारा कि गई घोषणा में जिन निबंधनों का प्रयोग किया गया है वे उन संधियों या अधिसमयों के प्रति निर्देश करते हैं जिनका न्यायालय के समक्ष विवाद लाने वाले पक्षकार को ईरान के विरुद्ध अवलम्ब लेने का अधिकार है और उनसे ऐसी संधियां या अभिसमय अभिप्रेत नहीं हैं जो ईरान ने किसी अन्य राज्य के साथ किए हों । किन्तु यदि युनाइटेड किंगडम ईरान के साथ की गई संधि में सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र खंड के आधार पर ईरान द्वारा किसी तृतीय पक्षकार के साथ की गई किसी संधि का फायदा उठाना चाहता है तो युनाइटेड किंगडम इस स्थिति में होना चाहिए कि वह पश्चात्वर्ती संधि का अवलम्ब ले सके। जिस संधि में सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र खंड अन्तर्विष्ट हो वही मूलभूत संधि है जिसका युनाइटेड किंगडम को अवलम्ब लेना चाहिए । यही वह संधि है जो युनाइटेड किंगडम और तृतीय पक्षकार के साथ संधि के बीच विधिक कड़ी स्थापित करती है और उस राज्य को तृतीय पक्षकार द्वारा प्रयोग किए जाने वाले अधिकार प्रदत्त करती है। मूलभूत संधि से स्वतंत्र और उससे अलग तृतीय पक्षकार संधि युनाइटेड किंगडम और ईरान के बीच कोई विधिक प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकते ।

युनाइटेड किंगडम का कहना है कि 6 मार्च, 1935 को ईरानियम-डेनिश संधि के प्रवृत्त होने पर, सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र खंड के प्रवर्तन के आधार पर ईरान अपने राज्यक्षेत्र पर ब्रिटिश राष्ट्रिकों के साथ अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों और पद्धति के अनुसार व्यवहार करने के लिए आबद्ध हो गया है । सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र खंड ईरान और युनाइटेड किंगडम के बीच हुई 1857 और 1903 की संधियों में अन्तर्विष्ट हैं और वे संधियां ईरान द्वारा घोषणा के अनुसमर्थन के पश्चात् नहीं की गई थीं । ईरान इन संधियों के, जब तक वे प्रवृत्त रहती हैं, अधीन अपनी बाध्यताओं से आबद्ध है किन्तु युनाइटेड किंगडम न्यायालय की अधिकारिता स्थापित करने के प्रयोजनार्थ उनका अवलंब नहीं ले सकता क्योंकि वह घोषणा के निबंधनों द्वारा अपवर्जित है ।

युनाइटेड किंगडम ने यह भी दलील दी है कि न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार नहीं करना है कि "वे कौन सी संधियां हैं जो ग्रेट ब्रिटेन को प्रश्नगत अधिकार प्रदान करती हैं" बल्कि इस प्रश्न पर विचार करना है कि वे कौन-सी संधियां हैं जिनका लागू किया जाना विवादास्पद है। न्यायालय ने इस दलील

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को स्वीकार नहीं किया क्योंकि विधि की दृष्टि से ईरान और डेनमार्क के बीच हुई 1934 की संधि का लागू किया जाना विवादास्पद नहीं है बल्कि ईरान और युनाइटेड किंगडम के बीच हुई 1857 की संधि या 1903 का अभिसमय तथा ईरान और डेनमार्क के बीच हुई 1934 की संधि का लागू किया जाना विवादास्पद है। मात्र ईरानियन-डेनिश संधि पर ईरान और युनाइटेड किंगडम के बीच कोई विवाद नहीं हो सकता।

अतः न्यायालय ने ईरान और डेनमार्क के बीच 1934 में हुई संधि के बारे यह अभिनिर्धारित किया कि ईरान द्वारा की गई घोषणा के निबंधनों के अधीन प्रस्तुत विवाद को लाने के लिए युनाइटेड किंगडम ईरान के साथ की गई 1857 और 1903 की संधियों का अवलम्ब लेने के लिए हकदार नहीं है क्योंकि वे संधियां घोषणा के अनुसमर्थन के पूर्व की गई थीं, और यह कि उन संधियों में अन्तर्विष्ट सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र खंड प्रवृत्त नहीं किया जा सकता और यह कि ईरान द्वारा किसी तृतीय पक्षकार के साथ की गई किसी संधि का प्रस्तुत मामले में युनाइटेड किंगडम द्वारा अवलंब नहीं लिया जा सकता।

युनाइटेड किंगडम ने यह दावा किया है कि डी' आरसी कन्सेशन से संबंधित युनाइटेड किंगडम की सरकार और ईरान की सरकार के बीच विवाद का राष्ट्र संघ परिषद् (काऊन्सिल ऑफ लीग ऑफ नेशन्स) की मध्यस्थता से जो 1933 में समझौता किया गया था उसके परिणामस्वरूप दोनों सरकारों के बीच एक करार सा हो गया था और उसे ईरान द्वारा की गई घोषणा में इस अभिव्यक्ति के अर्थान्तर्गत संधि या अभिसमय मान लिया जाए।

युनाइटेड किंगडम का कहना है कि ईरान सरकार ने युनाइटेड किंगडम की सरकार के प्रति कुछ संधि-बाध्यताओं का पालन करने का वचन दिया था। युनाइटेड किंगडम ने उन बाध्यताओं को स्थापित करने का प्रयास यह दलील देते हुए किया है कि 29 अप्रैल, 1933 को ईरान की सरकार ने एंग्लो-परशियन आॅयल कंपनी के साथ किए गए जिस करार पर हस्ताक्षर किए थे उसकी दोहरी प्रकृति है—पहली प्रकृति तो यह है कि वह ईरान की सरकार और कंपनी के बीच एक रियायती संविदा है और दूसरी प्रकृति यह है कि वह दोनों सरकारों के बीच एक संधि है। युनाइटेड किंगडम ने आगे यह भी कहा है कि यदि 1933 में किया गया समझौता उपलक्षित या विवक्षित करार की कोटि में आता है तो भी उसे ईरान द्वारा की गई घोषणा में अन्तर्विष्ट "संधियां या अभिसमय" अभिव्यक्ति के अर्थान्तर्गत माना जाना चाहिए।

न्यायालय ने युनाइटेड किंगडम के इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया कि ईरान सरकार एंग्लो-परशियन आंयल कंपनी के बीच हस्ताक्षरित करार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की दोहरी प्रकृति है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह एक सरकार और एक विदेशी निगम के बीच रियायती संविदा से अधिक कुछ नहीं है। युनाइटेड किंगडम उस संविदा का पक्षकार नहीं है और ईरान की सरकार और युनाइटेड किंगडम की सरकार के बीच संविदा का कोई सह-संबंध नहीं है। उस करार के अधीन ईरान की सरकार युनाइटेड किंगडम की सरकार से किसी प्रकार के अधिकारों का दावा नहीं कर सकती जिनका वह कंपनी से दावा कर सकती है और न ही उससे यह अपेक्षित है कि वह युनाइटेड किंगडम की सरकार के प्रति ऐसी बाध्यताओं का पालन करे जिनका वह कंपनी के प्रति पालन करने के लिए आवद्ध है। ईरान की सरकार और कंपनी के प्रतिनिधियों द्वारा हस्ताक्षरित दस्तावेज का एक ही उद्देश्य है—और वह उद्देश्य है—उस राज्य और कंपनी के बीच रियायत से सम्बद्ध संबंधों का विनियमन । इससे किसी भी प्रकार से दोनों सरकारों के बीच संबंधों का विनियमन नहीं होता ।

इस तथ्य से विधिक स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता कि रियायती संविदा राष्ट्र संघ परिषद् के माध्यम से की गई थी। युनाइटेड किंगडम की सरकार ने ईरान की सरकार के साथ अपना विवाद राष्ट्र संघ के समक्ष इसलिए रखा क्योंकि वह अपने एक राष्ट्रिक के पक्ष में राजनयिक संरक्षण के अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहती थी। वह ऐसे कार्य के लिए प्रतितोष पाने का प्रयास कर रही थी जिसके बारे में उसे विश्वास था कि वह दोष है जो ईरान ने ब्रिटिश राष्ट्रीयता के एक विधिक व्यक्ति के विरुद्ध किया है। परिषद् के रिपोर्टर द्वारा परिषद् को यह रिपोर्ट दिए जाने पर कि ईरान की सकरार और कंपनी के बीच सफलतापूर्वक एक नई रियायती संविदा की गई है, युनाइटेड किंगडम की सरकार ने अपना संतोष प्रकट किया। युनाइटेड किंगडम की सरकार द्वारा अपने एक राष्ट्रिक को राजनयिक संरक्षण प्रदान करने के प्रयास सफल हो गए और वह मामला समाप्त हो गया।

परिषद् के समक्ष समस्त कार्यवाहियों में ईरान ने कंपनी के साथ बातचीत करने के सिवाय युनाइटेड किंगडम से कोई वचनबंध नहीं किए और उस वचनबंध का पूर्णतया पालन किया गया था। ईरान ने नई रियायत के बारे में युनाइटेड किंगडम को किसी प्रकार का वचन नहीं दिया और न ही किसी प्रकार की कोई प्रतिभू दी। इस तथ्य से कि रियायती संविदा के किए जाने की रिपोर्ट राष्ट्र संघ परिषद् को दी गई थी और वह रिपोर्ट उसके अभिलेख में रखी गई थी, उस संविदा के निबंधन ऐसी संधि के निबंधन नहीं बन पाते जिसके लिए ईरान की सरकार युनाइटेड किंगडम की सरकार के प्रति आवद्ध है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अतः न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह स्पष्ट है कि राष्ट्र संघ परिषद् के समक्ष की गई जिन कार्यवाहियों के कारण युनाइटेड किंगडम और ईरान के बीच डी आरसी कन्सेशन से संबधित विवाद की 1933 में समझौता हुआ था उनके परिणामस्वरूप दोनों देशों के बीच किसी प्रकार की संधि या किसी प्रकार का अभिसमय सम्पन्न नहीं हुआ था ।

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि युनाइटेड किंगडम 1934 में ईरान और डेनमार्क तथा स्विटजरलैण्ड के साथ तथा 1937 में तुर्की के साथ हुई संधियों में किसी संधि का अवलम्ब नहीं ले सकता तथा 1933 में ईरान और युनाइटेड किंगडम के बीच कोई संधि या अभिसमय नहीं हुआ था । अतः ईरान द्वारा अनुसमर्थित घोषणा के निबन्धनों के आधार पर प्रस्तुत मामले के संबंध में न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त नहीं है ।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले में न्यायालय ने निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है—

1. एक देश द्वारा दूसरे देश की निगमित कम्पनी के साथ की गई संविदा से दोनों देशों के बीच संधि या अभिसमय स्थापित नहीं हो जाते।
2. एक राज्य अपने राजनयिक संरक्षण के अधिकार का प्रयोग करके अपनी राष्ट्रीय कम्पनी की ओर से दूसरे राज्य के विरुद्ध अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय में न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 36, पैरा 2 के उपबन्धों के अधीन वाद लाने के लिए हकदार नहीं है ।
3. अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता स्थापित हो जाने के बाद किन्तु मामले के गुणागुण पर विचार किए जाने से पूर्व पक्षकारों के आवश्यक अधिकारों को क्षति से संरक्षण प्रदान करने के लिए न्यायालय अन्तरिम आदेश दे सकता है ।
4. अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता पक्षकारों द्वारा अधिकारिता स्वीकार करने वाली घोषणाओं में निर्धारित उपबन्धों से सीमित होती है और वहीं तक पक्षकारों पर लागू होती है जहां तक उसे स्वीकार किया जाता है । अतः न्यायालय की अधिकारिता पक्षकारों की स्वीकृति पर निर्भर करती है ।
5. दो राष्ट्रों के बीच हुई संधि के उपबन्धों को तृतीय राष्ट्र पर लागू नहीं किया जा सकता अर्थात् उस पर उस संधि का कोई विधिक प्रभाव नहीं पड़ता ।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कॉर्फू चैनल का मामला

(The Corfu Channel Case)

आई० सी० जे० रिपोर्ट्स 1948 पृष्ठ 15

इस मामले में यह बताया गया है कि अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता किस प्रकार उत्पन्न होती है।

*　　*　　*　　*

22 अक्तूबर, 1946 को दो ब्रिटिश विध्वंसक पोत जब कॉर्फू चैनल से गुजर रहे थे तब समुद्र में फैली सुरंगों से टकरा कर क्षतिग्रस्त हो गए और उनमें बैठे कई लोग मारे गए। युनाइटेड किंगडम ने चैनल में सुरंगे बिछाने के लिए अल्बानियां को उत्तरदायी ठहराते हुए मामला सुरक्षा परिषद् में उठाया। सुरक्षा परिषद् ने यह सिफारिश की कि दोनों पक्षकार अर्थात् युनाइटेड किंगडम की सरकार और अल्बानियां की सरकार अपना विवाद स्टेट्यूट के उपबंधों के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करें। युनाइटेड किंगडम की सरकार ने न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 40, पैरा 1 और न्यायालय के नियमों के अनुच्छेद 32, पैरा 2 के अधीन मामला अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। अल्बानियां ने इस प्रक्रिया की संगतता पर इस आधार पर आपत्ति की कि यह सुरक्षा परिषद् की सिफारिश के विपरीत है क्योंकि सुरक्षा परिषद् की सिफारिश के अनुसार मामला दोनों पक्षकारों के करार के अधीन ही न्यायालय को सौंपा जा सकता है। इस आरक्षण के अधीन अल्बानियां ने अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार कर ली।

2 जुलाई, 1947 को अल्बानिया ने पत्र द्वारा न्यायालय को सूचित किया कि—

1. युनाइटेड किंगडम ने न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां संस्थित करके सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों का अनुपालन नहीं किया है। सुरक्षा परिषद् ने यह सिफारिश की थी कि युनाइटेड किंगडम की सरकार और अल्बानिया की सरकार अपना विवाद अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष, न्यायालय के स्टेट्यूट के उपबन्धों के अनुसार, प्रस्तुत करें।

2. चूंकि अल्बानियां सरकार ने न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 36 अथवा अन्तरराष्ट्रीय विधि की किसी अन्य लिखत द्वारा न्यायालय की अनिवार्य अधिकारिता को स्वीकार नहीं किया है इसलिए युनाइटेड किंगडम की सरकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एकपक्षीय रूप से आवेदन द्वारा इस विवाद को न्यायालय के समक्ष संस्थित करने की हकदार नहीं है ।

इसके विरुद्ध युनाइटेड किंगडम की सरकार का तर्क था कि उसकी कार्यवाही संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 25 के अधीन उचित है ।

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि चार्टर का अनुच्छेद 25 सुरक्षा परिषद् द्वारा चार्टर के अध्याय 7 के उपबन्धों के आधार पर किए गए विनिश्चयों से ही संबंधित है और परिषद् द्वारा अध्याय 6, शांतिपूर्ण ढंग से विवादों के निपटारे, के संबंध में की गई सिफारिशों पर लागू नहीं होते क्योंकि वे सिफारिशें आबद्धकर नहीं हैं । परिणामतः वे सिफारिशें न्यायालय की अनिवार्य अधिकारिता के, जो केवल स्टेट्यूट के अनुच्छेद 36, पैरा 3 के अनुसार न्यायालय के स्टेट्यूट के राज्य पक्षकारों द्वारा स्पष्ट घोषणा द्वारा ही हो सकती है, लिए अप्रत्यक्ष आधार नहीं बन सकतीं ।

3. अल्बानियां सरकार का यह विचार है कि सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों के अनुसार युनाइटेड किंगडम की सरकार को अल्बानिया की सरकार के साथ उन शर्तों के संबंध में एक समझौता करना चाहिए था जिसके अधीन दोनों पक्षकार सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों के अनुरूप अपना विवाद अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करते ।

अतः अल्बानियां सरकार द्वारा यह निष्कर्ष निकालना न्यायोचित है कि युनाइटेड किंगडम की सरकार द्वारा अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष आवेदनपत्र प्रस्तुत करके अल्बानियां की सरकार के विरुद्ध कार्यवाही प्रारम्भ किया जाना न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 36, पैरा 1 के विपरीत है ।

4. अल्बानियां की सरकार सुरक्षा परिषद् द्वारा की गई सिफारिशों को पूर्णतया स्वीकार करती है और वह युनाइटेड किंगडम की सरकार द्वारा की गई कार्यवाही में अनियमितता के होते हुए भी न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए तैयार है ।

लेकिन अल्बानियां की सरकार स्पष्ट शब्दों में उस रीति पर, जो युनाइटेड किंगडम की सरकार ने सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों को लागू करने के लिए न्यायालय के समक्ष मामला प्रस्तुत करने के लिए अपनाई है और विशेषकर उस निर्वचन पर, जो युनाइटेड किंगडम की सरकार ने सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों के आबद्धकर स्वरूप के सम्बन्ध में चार्टर के अनुच्छेद 25 का निर्वचन करने का प्रयास किया है, आक्षेप करती है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अल्बानियां की सरकार के प्रत्युत्तर में युनाइटेड किंगडम की सरकार ने 19 जनवरी, 1948 को न्यायालय के समक्ष अपना कथन प्रस्तुत किया। उस कथन में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया था कि—

(क) युनाइटेड किंगडम की सरकार ने 13 मई, 1947 के अपने आवेदन द्वारा मामले को अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करके सुरक्षा परिषद् द्वारा की गई सिफारिशों का पूर्णतया अनुपालन किया है। उस आवेदन में उसने न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 40, पैरा 1 और न्यायालय के नियमों के अनुच्छेद 32, पैरा 2 के अनुसार विवाद की विषयवस्तु और पक्षकारों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है।

(ख) अल्बानियां की सरकार ने युनाइटेड किंगडम की सरकार द्वारा न्यायालय के समक्ष आवेदन करने के पश्चात्, 22 जुलाई, 1947 के अपने पत्र में यह कथन किया है कि वह सुरक्षा परिषद् द्वारा की गई सिफारिशों को पूर्णतया स्वीकार करती है और यह कि वह न्यायालय के समक्ष हाजिर होने और मामले में न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार करने के लिए तैयार है।

(ग) अल्बानियां की सरकार का यह पत्र तथा सुरक्षा परिषद् को 9 अप्रैल, 1947 का संकल्प न्यायालय के अध्यक्ष द्वारा ऐसे दस्तावेज के रूप में स्वीकार कर लिया गया था जिससे किसी राज्य के, जो कि स्टेट्यूट का पक्षकार नहीं है, न्यायालय के समक्ष हाजिर होने के लिए सुरक्षा परिषद् द्वारा अधिकथित शर्तों का समाधान हो जाता है।

(घ) इन परिस्थितियों में 31 जुलाई, 1947 का आदेश देने और इस विवाद के विचारण के लिए आगे कार्यवाही करने की न्यायालय की अधिकारिता स्थापित हो जाती है। स्टेट्यूट के अनुच्छेद 36, पैरा 1 के अधीन न्यायालय की अधिकारिता में वे सभी मामले आ जाते हैं जो पक्षकार उसे निर्दिष्ट करते हैं और इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि न्यायालय के समक्ष हाजिर होने के लिए हकदार कौन-से राज्य न्यायालय को निर्दिष्ट नहीं कर सकते। युनाइटेड किंगडम की सरकार ने 13 मई, 1947 के आवेदन द्वारा और अल्बानियां की सरकार ने 2 जुलाई, 1947 के पत्र द्वारा स्पष्टतया प्रस्तुत विवाद न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है। ये दोनों दस्तावेजें 'विशेष करार' के रूप में स्वीकार की जाएं या न की जाएं परंतु इन्हें 'निर्देश' तो कम-से-कम माना ही जाना चाहिए। विशेष करार की आवश्यकता नहीं है... ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(ङ) स्टेट्यूट के अनुच्छेद 40 में केवल उस औपचारिक आधार के बारे में बताया गया है जिस पर न्यायालय द्वारा ऐसे मामले में कार्यवाही की जानी होती है जहां अनुच्छेद 36, पैरा 1 द्वारा अधिकारिता स्थापित हो गई हो। स्टेट्यूट या न्यायालय के नियमों में ऐसी कोई बात नहीं है जो आवेदन द्वारा औपचारिक रूप कार्यवाहियां संस्थित करने से रोका हो, चाहे न्यायालय की अधिकारिता पक्षकारों द्वारा किए गए 'निर्देश' द्वारा या 'विशेष करार' द्वारा स्थापित हो गई हो तदनुसार युनाइटेड किंगडम की सरकार ने आवेदन द्वारा इस मामले को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करके ठीक ही कार्यवाही की है।

(च) इसके अतिरिक्त, वस्तुतः दोनों पक्षकारों के बीच करार किया गया था यह करार सुरक्षा परिषद् के 9 अप्रैल, 1947 के संकल्प का अनुपालन करते हुए युनाइटेड किंगडम की सरकार द्वारा (13 मई, 1947 के आवेदन द्वारा) अधिकारिता स्वीकार करने से हुआ था कि आवेदन में वर्णित विवाद्यक न्यायालय को निर्दिष्ट किए जांए। इस करार में वे सभी आवश्यक बातें हैं जो 'विशेष करार' में होनी चाहिए और वह स्टेट्यूट के अनुच्छेद 40 के पूर्णतया अनुरूप है।

(छ) यदि प्रस्तुत कार्यवाहियों के प्रारम्भ किए जाने की रीति में कोई औपचारिक अनियमितता थी तो यह अनियमितता दूर हो गई है क्योंकि अल्बानियां की सरकार ने 2 जुलाई, 1947 के अपने पत्र द्वारा किसी संभव आक्षेप का अधित्यजन कर दिया है और न्यायालय की अधिकारिता को स्वीकार कर लिया है।

(ज) एक बार अधिकारिता स्वीकार कर लेने पर अल्बानियां की सरकार उसे तत्पश्चात् अस्वीकार नहीं कर सकती।

(झ) अध्यक्ष का 31 जुलाई, 1947 का आदेश स्पष्टतया इस आधार पर दिया गया था कि अल्बानिया की सरकार ने निश्चित रूप से अधिकारिता स्वीकार कर ली थी, और यही वस्तुतः तथ्य भी है। अतः अब अल्बानिया की सरकार अधिकारिता से सम्बन्धित प्रश्न पुनः नहीं उठा सकती।

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 2 जुलाई, 1947 का अल्बानियां का पत्र, उसमें वर्णित आरक्षण के होते हुए भी, आवेदन पत्र को ग्राह्यता और न्यायालय की अधिकारिता संबंधी सभी कठिनाइयों को दूर कर देता है। अल्बानियां की सरकार ने अपने पत्र में यह कथित किया है कि वह यूनाइटेड किंगडम की सरकार द्वारा की गई कार्यवाही में अनियमितता के होते हुए भी न्यायालय के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समक्ष उपस्थित होने के लिए तैयार है। इस पत्र में प्रयुक्त भाषा का इससे भिन्न अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि अल्बानिया की सरकार ने न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार करके प्रक्रियात्मक अनियमितता के आधार पर आवेदन की ग्राह्यता के बारे में आक्षेप करने के अधिकार का अधित्यजन कर दिया है।

2 जुलाई, 1947 के पत्र में अल्बानिया ने घोषणा की है कि वह सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों को पूर्णतया स्वीकार करती है कि विवाद न्यायालय के स्टेट्यूट के उपबन्धों के अनुसार न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। और उसने इस मामले के लिए न्यायालय की अधिकारिता को स्वीकार किया है। अतः यह पत्र न्यायालय की अधिकारिता की स्वैच्छिक और अविवादास्पद स्वीकृति का द्योतक है।

पक्षकारों की सहमति द्वारा ही न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त होती है किंतु न तो स्टेट्यूट में और न ही नियमों में यह अपेक्षित है कि सहमति किसी विशिष्ट में अभिव्यक्त की जानी चाहिए।

अल्बानियां की सरकार की यह दलील कि आवेदन स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वह न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 40, पैरा 1 और अनुच्छेद 36, पैरा 1 के उपबंधों के प्रतिकूल फाइल किया गया है, मुख्य रूप से इस उपधारणा पर आधारित है कि आवेदन द्वारा कार्यवाहियां संस्थित करना केवल वहीं संभव है जहां अनिवार्य अधिकारिता विद्यमान हो और जहां अनिवार्य अधिकारिता विद्यमान न हो वहां कार्यवाहियां केवल विशेष करार द्वारा ही संस्थित की जा सकती हैं।

यह मत किसी भी उद्धृत पाठों के अनुसार न्यायोचित नहीं है। नियमों के अनुच्छेद 32, पैरा 2 में आवेदक से यह अपेक्षित नहीं है कि आत्यन्तिक आवश्यकता के रूप में आवेदन में वह उपबन्ध विनिर्दिष्ट करे जिसके आधार पर उसने न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार की है बल्कि अपेक्षित केवल यह है कि 'जहां तक संभव हो' वह इन उपबधों को विनिर्दिष्ट करे। यथार्थ निबंधनों और उसमें अन्तर्निहित कारणों से स्पष्टतया यह विवक्षित है कि आवेदन द्वारा कार्यवाहियां संस्थित करना अनन्य रूप से अनिवार्य अधिकारिता के लिए आरक्षित क्षेत्र नहीं है।

न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि पक्षकार संयुक्त रूप से कोई कार्यवाही या विशेष करार करें। न्यायालय की अधिकारिता पक्षकारों द्वारा अलग-अलग कार्यवाही संस्थित करके भी स्वीकार की जा सकती है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किसी विशिष्ट मामले में किसी राज्य द्वारा स्टेट्यूट के अधीन न्यायालय की अधिकारिता के स्वीकार किए जाने का यह मतलब नहीं है कि उसे कतिपय औपचारिकताओं का पालन करना होगा जैसा कि पहले से विशेष करार का किया जाना ।

यद्यपि सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों से स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि मामले को न्यायालय के समक्ष लाने के लिए पक्षकारों द्वारा कार्यवाही करना आवश्यक है तथापि उनमें यह विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है कि यह कार्यवाही संयुक्त रूप से की जानी चाहिए । इसके अलावा न्यायालय के समक्ष मामला प्रस्तुत करने की पद्धति उन पाठों द्वारा विनियमित की जाती है जो न्यायालय की कार्यपद्धति को लागू होते हैं जैसा कि सुरक्षा परिषद् ने अपनी सिफारिशों में कहा था । अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय किसी ऐसी कार्यवाही को अनियमित घोषित नहीं कर सकता जो इन पाठों के किसी उपबन्ध द्वारा प्रवारित नहीं हैं ।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले में न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय की अधिकारिता पक्षकारों की सहमति पर आधारित है । यह सहमति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रदान की जा सकती है । प्रस्तुत मामले में अल्बानिया की सरकार ने सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों को तथा न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना भी स्वीकार करके परोक्ष रूप से न्यायालय की अधिकारिता को स्वीकार कर लिया था ।

—: o :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

9. राज्य उत्तराधिकार

जब किसी राज्य का कोई प्रदेश उसकी प्रभुता और आधिपत्य से निकलकर दूसरे राज्य को प्राप्त होता है तो उस प्रदेश का प्राप्तकर्त्ता राज्य उत्तराधिकारी कहलाता है । ओपेनहाइम के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तियों (राज्यों) का उत्तराधिकार उस समय होता है जब एक या अनेक राज्य दूसरे राज्य या उसके क्षेत्र में परिवर्तन आने के कारण उसका स्थान ले लेते हैं । उत्तराधिकार का सिद्धान्त प्रधान रूप से वैयक्तिक कानून का सिद्धान्त है । अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन यह सिद्धान्त तब लागू होता है जब राज्य की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन हो जाता है और राज्य के अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व का ह्रास हो जाता है और उसका स्थान दूसरा राज्य ले लेता है । कभी-कभी अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व का ह्रास आंशिक होता है यथा जब किसी राज्य का कोई भाग दूसरे राज्य के आधिपत्य में आ जाता है या स्वतंत्र राज्य बन जाता है या बना दिया जाता है यथा इजराइल और बंगलादेश । कभी-कभी अन्तरराष्ट्रीय व्यक्तित्व का पूर्ण ह्रास हो जाता है । उदाहरण के लिए 1947 में भारत में ब्रिटिश राजसत्ता की समाप्ति पर भारत और पाकिस्तान दो राज्यों का अभ्युदय हुआ और एक अन्तरराष्ट्रीय व्यक्ति से दो अन्तरराष्ट्रीय व्यक्ति निर्मित हुए । इसी तरह 1901 में ब्रिटेन ने विजय द्वारा दक्षिणी अफ्रीकी प्रजातन्त्र को अपने राज्य में मिला लिया था । सामान्यतः राज्य उत्तराधिकार युद्ध और संधि द्वारा सम्पादित होता है ।

राज्य उत्तराधिकार निम्न स्थितियों को प्रभावित करता है : (i) पूर्व स्थापित संधियों के कर्त्तव्यों और अधिकारों को, (ii) राज्य के अन्तरराष्ट्रीय दायित्वों को, तथा (iii) वैयक्तिक सम्पत्ति और अधिकारों को । निम्न अध्याय में दिए गए निर्णयों में इन्हीं प्रश्नों पर विचार किया गया है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वेस्ट रैण्ड सेण्ट्रल गोल्ड माइनिंग कम्पनी लिमिटेड बनाम किंग
(West Rand Central Gold Mining Co. Ltd. *vs.* The King)

(1905) 2 के० बी० 391.

यह मामला अन्तरराष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि के सम्बन्धों के बारे में एक नजीर के रूप में माना जाता है। इसमें अन्तरराष्ट्रीय विधि की प्रकृति और स्रोत के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण अभिकथन किए गए हैं। यह मामला विजय द्वारा राज्य क्षेत्र के समर्पण से उत्पन्न विजेता के दायित्वों के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण प्रमाण स्थापित करता है। इसमें इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि राष्ट्रीय न्यायालय राज्यकृत्यों से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचारण नहीं कर सकते।

* * * *

वेस्ट रैंड सेण्ट्रल गोल्ड माइनिंग कम्पनी इंग्लैण्ड की एक रजिस्ट्रीकृत कम्पनी थी। यह दक्षिण अफ्रीका के ट्रांसवाल में सोने की खुदाई करती थी। इस कम्पनी के सोने के दो पार्सल दक्षिण अफ्रीकी गणराज्य के अधिकारियों द्वारा पकड़ लिए गए। विधि के अधीन सरकार उसका मूल्य अदा करने या सोना वापस करने के लिए आबद्ध थी। इसके कुछ समय बाद 11 अक्तूबर, 1899 को बोअर युद्ध छिड़ गया और युद्ध के परिणामस्वरूप दक्षिण अफ्रीका को ब्रिटेन ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। कम्पनी ने उत्तराधिकारी राष्ट्र से पराजित राष्ट्र द्वारा पकड़ा गया सोना वापस लौटाने या उसका मूल्य चुकाने की मांग की तथा इंग्लैण्ड के न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। कम्पनी ने निम्नलिखित तर्क दिए :—

1. ब्रिटेन पराजित राष्ट्र के उत्तराधिकारी के रूप में उसके सारे कर्तव्यों के लिए उत्तरदायी है।
2. अन्तरराष्ट्रीय विधि इंग्लैण्ड की विधि का अंग है।
3. जिन अधिकारों और बाध्यताओं से पराजित राष्ट्र आबद्ध होता है वे अधिकार और बाध्यताएं विजयी राष्ट्र के राष्ट्रीय न्यायालयों द्वारा पूर्णतया संरक्षित होने चाहिएं।

न्यायालय ने कम्पनी के तर्कों को अस्वीकार करते हुए किंग के पक्ष में निर्णय दिया।

मुख्य न्यायाधिपति एल्वरस्टोन के अनुसार "अन्तरराष्ट्रीय विधि में निश्चितता तथा स्थिरता का अभाव है। वह सभ्य राष्ट्रों के मतैक्य पर आधारित है। वह किसी एक संहिता या समझौते में अभिव्यक्त नहीं है। उसे सुस्पष्ट करारों के उपबन्धों में प्राप्त किया जा सकता है किन्तु

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जहां स्पष्ट करार नहीं है वहां राज्यों द्वारा पारस्परिक व्यवहार में किए गए कार्यों से विकसित प्रथा के प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया जाता है ।"

विद्वान् लेखकों द्वारा अन्तरराष्ट्रीय विधि के सम्बन्ध में अभिव्यक्त विचारों से निश्चित मतों की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त हुआ है । लेकिन बहुत से अवसरों पर लेखकों की रचनाओं से यह प्रकट होता है कि नैतिक दृष्टिकोण से राष्ट्रों का पारस्परिक व्यवहार क्या होना चाहिए । किन्तु उन्हें उनके अपने विचारों की अभिव्यक्ति ही माना जा सकता है । इसके विपरीत उनकी अभिव्यक्तियों में नियमों की घोषणा का अभाव होता है अर्थात् उनकी अभिव्यक्ति से यह ज्ञान नहीं होता कि कोई प्रथा सार्वभौमिक रूप से इस प्रकार स्वीकृत या मान्य हो गई है कि उसे उचित रूप से विधि कहा जा सके । लेखकों ने विशिष्ट संधियों के अनुबन्धों को ही अन्तरराष्ट्रीय विधि का स्वीकार्य साक्ष्य मानकर विधि के रूप में प्रस्तुत किया है जो अधिक विश्वसनीय नहीं है ।

इन विद्वानों के मतों के आधार पर ही यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन विजयी राष्ट्र पराजित राष्ट्र की बाध्यताओं को पूरा करने के लिए आबद्ध होता है । किन्तु इसका समर्थन नहीं किया जा सकता । विजेता प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्र शान्ति स्थापित करते समय पराजित राष्ट्र की आर्थिक बाध्यताओं के सम्बन्ध में कोई भी शर्त, जो वह उचित समझे, लगा सकता है । यह पूर्ण रूप से उसकी इच्छा पर है कि वह किस हद तक उन आर्थिक बाध्याताओं को स्वीकार करे । यह सुझाव दिया गया था कि यद्यपि शान्ति स्थापित करते समय प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्र अपने दायित्वों को सीमित कर सकता है तथापि यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह सभी दायित्व अपने ऊपर लेता है और बाद में उन पर कोई सीमा नहीं लगाई जा सकती । इस सुझाव के स्वीकार किए जाने में कठिनाइयां हैं क्योंकि विजयी राष्ट्र के बहुत से ऐसे संविदात्मक दायित्व हो सकते हैं जिनके विद्यमान होने का उसे उस समय ज्ञान ही न हो । यदि कोई विजयी राष्ट्र सार्वजनिक घोषणा द्वारा या अभिसमय (कन्वेन्शन) द्वारा कोई ऐसा वचन देता है जो किसी विशिष्ट दायित्व के निराकरण से असंगत है तो सद्भाव द्वारा ही उसके निराकरण को रोका जा सकता है । अतः यह मानने का कोई कारण दिखाई नहीं देता कि पराजित राष्ट्र के साथ हुई संविदाओं के प्रति मौन उसकी स्वीकृति का द्योतक है ।

विजेता राज्य पराजित राज्य के दायित्वों को स्वीकार करने के सम्बन्ध में ऐसी शर्तें लगा सकता है जैसी वह उचित समझे, और इस स्वीकृति के सम्बन्ध में केवल वही निर्णय कर सकता है, इस प्रस्थापना को "ग्रोसियस" (Grotius) ने स्पष्टतया स्वीकार किया है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक तर्क यह दिया गया था कि पराजित राज्य को अपने में समाहित करते समय विजेता प्रभुत्वसम्पन्न अपने दायित्वों की सीमा निर्धारित कर सकता है किन्तु बाद में उसे उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार नहीं होगा। किन्तु यह तर्क किसी नजीर पर आधारित नहीं है। किसी समय पुराने लेखकों ने यह मत अवश्य व्यक्त किया था कि विजेता राज्य द्वारा ली गई आस्तियों की सीमा तक उसे पराजित राज्य के ऋणों का भुगतान करना चाहिए। किन्तु यह उन लेखकों का अपना नैतिक मत था। शान्ति और राज्यक्षेत्रों के अध्यर्पण के अनेक मामले उद्धृत किए गए थे जिनमें अध्यर्पण स्वीकार करने वाले या शुरू में जीतने वाले देशों में दायित्वों के निर्वहन के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध किए हैं किन्तु वे दो राष्ट्रों की अभिव्यक्त सहमति पर आधारित हैं और इनसे इस तर्क का समर्थन नहीं होता कि जो दायित्व अभिव्यक्त रूप से इन संधियों में स्वीकार नहीं किए गए हैं उनके पालन के लिए विजेता आबद्ध होता है। इस सम्बन्ध में विकसित प्रथा में भी किसी प्रकार की एकरूपता नहीं है। इन लेखकों द्वार अभिव्यक्त मतों पर जो भी दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है किन्तु वे इंग्लैण्ड के न्यायालयों द्वारा कई वर्षों से मान्य विधि से असंगत है। कैन्एबैल बनाम हाल[1] में लार्ड मैन्सफील्ड ने कहा था कि आत्मसमर्पण स्वीकार करना या न करना सम्राट के प्राधिकार में है। यदि वह उस क्षेत्र के निवासियों को अपने आश्रय में लेने, उन्हें सुरक्षा प्रदान करने और उन्हें सम्पत्ति रखने का अधिकार देना स्वीकार करता है तो वह उसके लिए ऐसे निबन्धन और शर्तें भी निर्धारित कर सकता है जिन्हें वह उचित समझे। वह शान्ति के लिए संधि भी कर सकता है; वह चाहे तो विजित क्षेत्र को छोड़ भी सकता है अथवा उसे अपने निबन्धनों के अनुसार रख भी सकता है। संधियों में जो विशेष अनुबन्ध किए जाते हैं उनका अन्तरराष्ट्रीय सामान्य विधि के साक्ष्य के रूप में बहुत ही कम महत्व होता है। फिर भी बहुत सी ऐसी संधियों के उपबन्धों के प्रति निर्देश किया गया था जिनमें राज्यक्षेत्रों का अध्यर्पण किया गया है किन्तु वे विजय के कारण अध्यर्पण के सम्बन्ध में नहीं है। अध्यर्पण स्वीकार करने वाले राज्य द्वारा अध्यर्पित राज्यक्षेत्रों के दायित्वों को स्वीकार किए जाने के मामलों के प्रति भी निर्देश किया गया था किन्तु शान्तिपूर्ण अध्यर्पण और विजय द्वारा अध्यर्पण में भिन्न-भिन्न प्रश्न उठते हैं। अतः विजयी प्रभुत्वसम्पन्न विजित क्षेत्र को समाहित करते समय जिन दायित्वों को स्वीकार करता है उनके लिए वह आबद्ध होता है अन्य दायित्वों के लिए नहीं।

एक तर्क यह भी दिया गया था कि अन्तरराष्ट्रीय विधि इंग्लैण्ड की विधि का अंग है। किन्तु इस तर्क का विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है। अन्तरराष्ट्रीय

[1] (1774) 1 कॉप 204, 209.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विधि वे नियम हैं जिन्हें सभ्य देशों की सामान्य सहमति प्राप्त है और जिन्हें इंग्लैण्ड की स्वीकृति भी प्राप्त हो जाती है और सामान्य रूप से उन्हें हम अन्य राष्ट्रों के साथ व्यवहार के लिए स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार सर्वस्वीकृत नियमों को हमारे देश की न्यायालय उन अभियोगों में लागू करते हैं जिनमें अन्तरराष्ट्रीय विधि के उपयोग की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु उपर्युक्त नियमों को राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहार में ऐसी मान्यता प्राप्त होनी चाहिए जो सन्तोषजनक ढंग से साक्ष्य द्वारा सिद्ध की जा सके अथवा वे ऐसी प्रकृति के होने चाहिएं कि उन्हें सभी राष्ट्रों की स्वीकृति मिल गई हो ताकि कोई राष्ट्र उन्हें निराकृत न कर सके। किन्तु इन विधि शास्त्रियों द्वारा, चाहे वे कितने ही विख्यात या विद्वान हों, अभिव्यक्त मतों को अन्तरराष्ट्रीय विधि के रूप में मान्यता नहीं दी जा सकती जब तक कि उन्हें अन्तरराष्ट्रीय करारों द्वारा स्पष्ट रूप से मंजूरी प्राप्त नहीं हो जाती अथवा विभिन्न राष्ट्रों के व्यवहार में बार-बार प्रयोग किए जाने से व्यवहारिक रूप से उनका अन्तरराष्ट्रीय विधि के भाग के रूप में विकास नहीं हो जाता। अन्तरराष्ट्रीय विधि उन नियमों या प्रथाओं का समूह है जिन्हें सभ्य राष्ट्रों ने अपने पारस्परिक व्यवहार में आबद्धकर स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार लार्ड मैन्सफील्ड की इस अभिव्यक्ति का कि अन्तर-राष्ट्रीय विधि इंग्लैण्ड की विधि का अंग है, अर्थ उस विधि से है जिसे प्रत्यक्ष रूप से इंग्लैण्ड द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और जिसे अन्तरराष्ट्रीय करारों द्वारा तथा राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा विधि के भाग के रूप में स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। वह केवल विधि शास्त्रियों द्वारा अभिव्यक्त मत ही नहीं है जिसके विकसित प्रथा के रूप में इंग्लैण्ड द्वारा स्वीकृत किए जाने का कोई साक्ष्य नहीं है और जो उसके न्यायालयों द्वारा स्वीकृत विधि के विपरीत है।

तीसरे तर्क का कि विजयी राज्य पराजित राज्य के व्यवहारों और बाध्यताओं से आबद्ध होता है तथा उन्हें न्यायालय द्वारा विजयी राज्य से पूरा कराया जा सकता है, खण्डन करते हुए न्यायाधिपति ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रार्थी की ओर से इसे अस्वीकृत नहीं किया गया है कि विजयी राज्य पराजित राज्य के प्रति कोई भी शर्त, जो वह उचित समझे, लगा सकता है। किन्तु इस विषय में ध्यान देने योग्य बात यह है कि विजयी राज्य की बाध्यताएं दो प्रकार की होती हैं। एक तो व्यक्ति विशेष की निजी सम्पत्ति के प्रति जो विजय से पूर्व उत्पन्न होती हैं और दूसरी व्यक्तिगत संविदाओं से उत्पन्न अधिकारों के प्रति जो विजय के उपरान्त उत्पन्न होते हैं। ये दोनों, जहां तक विजयी राज्य की बाध्य-ताओं का सम्बन्ध है, एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। पहले प्रकार की बाध्यताओं की पूर्ति के लिए राज्य की विजय का कोई प्रभाव नहीं होता किन्तु दूसरे के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्बन्ध में अन्तर है क्योंकि विजयी राज्य पराजित राज्य द्वारा की गई व्यक्तिगत संविदात्मक दायित्वों की पूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं है ।

सन् 1793 से अब तक ऐसी बहुत सी नजीरें उपलब्ध हैं जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जो विषय संधि के आधार पर या राज्यकृत कार्य के रूप में क्राउन द्वारा अवधारित किए जाने वाले होते हैं वे देश के न्यायालयों की अधिकारिता के अध्यधीन नहीं होते और उनके अधीन अर्जित अधिकारों को इन न्यायालयों द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता । **रुस्तमजी बनाम सान्ज़ी**[1] में लार्ड कोलरिज ने यह अभिनिर्धारित किया था कि क्वीन द्वारा संधि किए जाने के दौरान और उसे कार्यान्वित करते समय जो कार्य किए जाते हैं वे प्रभुत्वसम्पन्न हैसियत में और अन्तर्निहित प्राधिकार के अधीन किए जाते हैं और राष्ट्रीय न्यायालयों के नियंत्रण से परे होते हैं अतः उसके कार्यों का उसके अपने न्यायालयों द्वारा परीक्षण नहीं किया जाएगा । इस मामले में भी प्रार्थी का कोई ऐसा अधिकार ज्ञात नहीं होता जो सम्राट के विरुद्ध इस न्यायालय या किसी भी राष्ट्रीय न्यायालय में अभियोग चला कर प्रवर्तित किया जा सके ।

पिटीशन नामंजूर कर दिया गया ।

टिप्पणी ।—इस मामले में न्यायालय ने निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है :—

1. अन्तरराष्ट्रीय विधि उन नियमों का समूह है जो अन्तरराष्ट्रीय करारों में उपलब्ध है या जिन्हें प्रथा के रूप में सभ्य राष्ट्रों ने अपने पारस्परिक व्यवहार में आबद्धकर स्वीकार कर लिया है ।
2. अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम के रूप में मान्यता स्थापित किए जाने के लिए यह दिखाया जाना आवश्यक है कि वह अन्तरराष्ट्रीय करारों द्वारा स्वीकार कर लिया गया है अथवा रूढ़ि के रूप में राज्यों के पारस्परिक व्यवहार में निरन्तरता के आधार पर स्वीकृत अन्तरराष्ट्रीय विधि के अंश के रूप में विकसित हो गया है ।
3. विद्वान् लेखकों द्वारा अन्तरराष्ट्रीय विधि के सम्बन्ध में व्यक्त विचार उस समय तक मान्यता प्राप्त नहीं करते जब तक उन्हें अन्तरराष्ट्रीय करारों में अथवा निरन्तरता के आधार पर राज्यों के पारस्परिक व्यवहार में आबद्धकर प्रथा का स्वरूप प्राप्त नहीं हो जाता । विद्वान लेखकों द्वारा अभिव्यक्त मतों में अकसर नैतिक दृष्टिकोण पाया जाता है कि किसी परिस्थिति में राज्यों का व्यवहार क्या होना चाहिए तथा उनमें नियमों की घोषणा का अभाव होता है अतः जब तक उन्हें उपरोक्त मान्यता प्राप्त नहीं होती तब तक उन्हें अन्तरराष्ट्रीय विधि के साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता ।
4. अन्तरराष्ट्रीय विधि इंग्लैण्ड की विधि का अंग है । किन्तु न्यायालयों द्वारा उसे तभी लागू किया जा सकता है जब प्रत्यक्ष रूप से इंग्लैण्ड द्वारा उसे स्वीकृति

[1] (1876) 2 क्यू० बी० 69

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रदान कर दी गई है। इस मत की पुष्टि करते हुए लार्ड अटकिन ने **कमर्शियल एण्ड एस्टेट्स कम्पनी ऑफ इजिप्ट बनाम बोर्ड ऑफ ट्रेड**[1] के मामले में कहा था कि अन्तरराष्ट्रीय विधि अपने स्वरूपाधीन राष्ट्रीय न्यायालयों में मान्यता प्राप्त अधिकारों का प्रदायन नहीं कर सकती है। केवल वही अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम जिन्हें राष्ट्रीय विधि में समाहित होने की मान्यता मिल गई है राष्ट्रीय न्यायालयों में अधिकारों एवं दायित्वों के प्रश्न उठाए जाने के लिए अधिकृत हैं। **दि क्रिस्टिना**[2] के मामले में निर्णय देते हुए लार्ड मैकमिलन ने कहा था कि हमारे देश की राष्ट्रीय विधि में अन्तरराष्ट्रीय विधि के अपनाए जाने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी विधि को सभ्य अन्तरराष्ट्रीय समुदाय की सामान्य स्वीकृति प्राप्त हो गई हो जिसे व्यवहार के नियम के रूप में संधि, अभिसमयों तथा न्यायिक निर्णयों में अपनाया गया हो। इस देश के न्यायालयों द्वारा उन्हें प्रवर्तित करने से पूर्व यह देखना आवश्यक है कि उन्हें पारस्परिक तथा सामान्य स्वीकृति प्राप्त हो गई है। **चुंग ची च्युंग बनाम किंग**[3] के मामले में लार्ड एटकिन ने कहा था कि यह हमेशा याद रखा जाना चाहिए कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों को न्यायालय द्वारा प्रवर्तित किए जाने के लिए तब तक कोई बंधता प्राप्त नहीं है जब तक कि वे हमारी अन्तरराष्ट्रीय विधि का अंग नहीं बन जाते हैं। उन्हें ऐसी कोई बाह्य शक्ति प्राप्त नहीं है जो हमारे प्रक्रियात्मक या मौलिक विधि पर अपने नियमों को लागू कर सके। न्यायालय यह स्वीकार करता है कि ऐसे नियम विद्यमान हैं जिन्हें राज्य अपने पारस्परिक व्यवहार के लिए आबद्धकर स्वीकार करते हैं। किन्तु किसी न्यायिक प्रश्न के उत्पन्न होने पर वे यह मालूम करते हैं कि अन्तरराष्ट्रीय विधि का सुसंगत नियम क्या है और उसे उस सीमा तक अपनी विधि में समाहित स्वीकार कर लेते हैं जहां तक वह अभिनियमित विधि या न्यायिक निर्णयों द्वारा निर्धारित विधि से असंगत नहीं है। **कोरोक्राप्ट लिमिटेड बनाम पैन अमेरिकन एयरवेज लिमिटेड**[4] के मामले में अन्तरराष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि के सम्बन्ध में यह अभिनिर्धारित किया था कि संसद् के अधिनियमों का निर्वचन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वे अन्तरराष्ट्रीय विधि के विपरीत न हों। किन्तु इसी निर्वचन के सम्बन्ध में हाउस ऑफ लार्ड्स ने **कोलियो डीलिंग बनाम इंग्लैण्ड रेवेन्यू कमिश्नर**[5] के मामले में कहा था कि निर्वचन का यह नियम वहां लागू नहीं होगा जहां परिनियम स्पष्ट और शंका रहित है।

---

1 (1925) 17 के० बी० 271.
2 (1938) ए० सी० 485.
3 (1939) ए० सी० 160.
4 (1969) 1 क्यू० बी० 616.
5 (1962) ए० सी० 1.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समाहित का सिद्धान्त ब्लैकस्टोन ने अपनी चतुर्थ टीका के अध्याय 5 में स्वीकार किया था। जहां उन्होंने कहा था कि अन्तरराष्ट्रीय विधि अपने पूर्ण रूप में 'कामन ला' में समाहित है और राष्ट्रीय विधि के अंग के रूप में धारित है किन्तु **सम्राट बनाम कैन**[1] में इसे स्वीकार नहीं किया गया जहां न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अन्तरराष्ट्रीय विधि इंग्लैण्ड की विधि का वहीं तक अंग है जहां तक उसे संसदीय अधिनियम अथवा न्यायालयों के निर्णयों में अपना लिया गया है। इसी मत की पुष्टि न्यायाधिपति निक्सन द्वारा **चाओं च्युंग चिंग बनाम सम्राट**[2] के मामले में की गई है जिसमें कहा गया है कि ब्लैकस्टोन का मत आधार रहित है। किन्तु अन्य मामलों में उनके मत को स्वीकार किया गया है।

जमोरा[3] के मामले में अन्तरराष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि के सम्बन्ध के दूसरे पहलू पर विचार किया गया था तथा न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि इस देश के न्यायालय उन कार्यकारी आदेशों को मानने के लिए आबद्ध नहीं हैं जो अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों को परिवर्तित करते हैं। यद्यपि वे उन संसदीय अधिनियमों को लागू होंगे जो अन्तरराष्ट्रीय विधि को भंग करते हैं या उनके विपरीत हैं।

भारत ने इस सम्बन्ध में वही परम्परा अपनाई है जो इंग्लैण्ड में है यह तथ्य **डालमिया दादरी सीमेन्ट कम्पनी बनाम आयकर आयुक्त**[4] से स्पष्ट हो जाता है। 1 अप्रैल, 1935 में जींद राज्य के शासक ने उक्त कम्पनी को सीमेन्ट निर्माण करने का एकाधिकार प्रदान किया था। जींद राज्य एक प्रसंविदा द्वारा पेप्सू और पटियाला में नए राज्य में शामिल हो गया। प्रसंविदा में यह उपबन्धित था कि नए राज्य में शामिल राज्यों के कर्तव्य और दायित्व संघ के हो जाएंगे। 1948 में जब इस कम्पनी पर पटियाला राज्य के सामान्य आयकर की दर से आयकर की मांग की गई तो उसने अपने पुराने अधिकारों को संघ के विरुद्ध प्रवर्तित कराना चाहा। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विलयन की संधि राज्यकृत है जिसे राष्ट्रीय न्यायालय प्रवर्तित नहीं कर सकते। विलयन की संधि द्वारा प्रदत्त अधिकारों को राष्ट्रीय विधि द्वारा आत्मसात किए जाने पर ही प्रवर्तित कराया जा सकता है।

---

1. (1876) 2 एक्स० डी० 63.
2. (1948) 77 सी० एल० आर० 449.
3. (1916) 2 ए० सी० 77.
4. ए० आई० आर० 1955 पेप्सू 3.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार राष्ट्रीय विधि तथा अन्तरराष्ट्रीय विधि के सम्बन्धों के बारे में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **श्री कृष्ण शर्मा बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] में मत व्यक्त किया है। इस मामले में न्यायालय ने एंग्लो-तिब्बत ट्रेड रेग्यूलेशन, 1914 तथा उसके बाद की विधि में उत्पन्न असंगतियों पर विचार करते हुए कहा था कि यदि बाद के परिनियम संधिगत अन्तरराष्ट्रीय विधि से असंगत है तो न्यायालय अधिनियमित विधि को लागू करेंगे। किन्तु विधि का निर्वचन इस प्रकार करेंगे कि वह अन्तरराष्ट्रीय विधि के विपरीत न हो। किन्तु यदि अन्तरराष्ट्रीय विधि से प्राप्त कर्त्तव्य और दायित्व स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय विधि के विपरीत हैं तो राष्ट्रीय विधि ही मान्य होगी।

उपरोक्त निर्णयों तथा **इण्डियन नैशनल स्टीमशिप कम्पनी बनाम मौक्स कौलजाम**[2] के मामले से यह स्पष्ट है कि न्यायालय अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों को तभी लागू करते हैं जब वे संवैधानिक रूप से अधिनियमित विधि के विपरीत न हों। किन्तु जहां वे उनसे विपरीत होते हैं वहां उन्हें विधि द्वारा मान्य प्रक्रिया से स्वीकृत किए जाने पर ही लागू किया जा सकता है। देखिए—**बेरूबारी**[3] का मामला विजयी राष्ट्र पराजित राष्ट्र के दायित्वों और बाध्यताओं को स्वीकार करने के लिए आबद्ध नहीं है। वह उन्हें स्वीकार करते समय स्वैच्छानुकूल शर्तें निर्धारित कर सकता है और केवल उन्हीं से आबद्ध होगा जिन्हें उसने स्वीकार किया है। विजयी राष्ट्र की बाध्यताएं दो प्रकार के होते हैं। पहले व्यक्ति विशेष की व्यक्तिगत सम्पत्ति के प्रति और दूसरे पराजित राष्ट्र द्वारा स्वीकृत संविदात्मक दायित्वों से उत्पन्न व्यक्तिगत अधिकारों के प्रति। प्रथम प्रकार की बाध्यताओं की पूर्ति में राज्य की विजय का कोई प्रभाव नहीं होता जब तक दूसरे प्रकार की बाध्यताओं के प्रति वह उत्तरदायी नहीं है जब तक वह उन्हें स्वीकार नहीं करता।

पेमी छोबड़ बनाम भारत संघ[4] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान की थी। इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं—20 दिसम्बर, 1961 को गोवा, दमन और दीव के भारतीय सीमा में स्थित पुर्तगाली क्षेत्र को भारत सरकार ने सैनिक कार्यवाही द्वारा जीत कर भारतीय क्षेत्र घोषित कर दिया। प्रार्थी को, जो पहले पुर्तगाली क्षेत्र का नागरिक था इस कार्यवाही से तीन मास पूर्व तीस लाख पौंड का सामान आयात करने की अनुमति प्राप्त हो

---

1. ए० आई० आर० 1954 कलकत्ता 591.
2. ए० आई० आर० 1955 कलकत्ता 491.
3. ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 1.
4. ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 442.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गई थी जो 180 दिन के लिए वैध थी तथा जिसका नवीकरण भी किया जा सकता था। परिणामस्वरूप उसने विदेशी कम्पनियों की माल की खरीदारी के लिए आदेश-पत्र जारी कर दिया तथा बहुत-सा अग्रिम भुगतान भी कर दिया। नई सरकार द्वारा नवीकरण अस्वीकार करने पर उसने अपने अधिकारों के प्रवर्तन के लिए न्यायालय में पिटीशन फाइल किया।

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि भारत ने सैनिक कार्यवाही द्वारा पुर्तगाली क्षेत्र का अधिग्रहण किया था तथा ऐसे मामले में भूतपूर्व प्रभुत्वसम्पन्न द्वारा प्रदत्त अधिकारों को व्यक्ति अपने साथ नहीं लाता है। नए प्रभुत्वसम्पन्न की प्रजा के रूप में उन्हें केवल वे अधिकतर प्राप्त होते हैं जो उसके द्वारा उसे प्रदत्त किए जाते हैं या पूर्ववर्ती प्रभुत्वसम्पन्न द्वारा प्रदत्त अधिकारों को वह मान्यता देता है। यह नियम पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका है कि एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य को किसी क्षेत्र अध्यर्पण का कार्य राज्यकृत है तथा पूर्ववर्ती प्रभुत्वसम्पन्न की प्रजा उन्हीं अधिकारों को प्रवर्तित करा सकती है जिन्हें नया प्रभुत्वसम्पन्न मान्यता प्रदान करता है। नए प्रभुत्वसम्पन्न अधिकार उसके द्वारा मान्य दायित्वों पर आधारित होते हैं।

प्रस्तुत मामले में सैनिक गवर्नर के 30 दिसम्बर, 1961 के अध्यादेश से स्पष्ट है कि नए प्रभुत्वसम्पन्न ने प्रार्थी को प्रदत्त अनुज्ञप्ति के आधार पर आयात को मान्यता नहीं दी; जब तक कि अनुज्ञप्ति के अधीन आयात की जाने वाली सामग्री समुद्री मार्ग में न हो या उसके संबंध में विदेशी मुद्रा प्रदान न कर दी गई हो। चीफ सिविल एडमिनिस्ट्रेटर द्वारा गोवा के चेंबर आफ कामर्स के अध्यक्ष को जारी किए गए पत्र में यह उपदर्शित था कि व्यष्टिक मामलों को उनके गुणागुण पर निर्णीत किया जाएगा। इससे स्पष्ट है कि नए प्रभुत्वसम्पन्न ने सभी आयात अनुज्ञप्तियों को मान्यता नहीं दी थी बल्कि उसे कुछ विशेष मामलों पर गुणा-गुण के आधार पर निर्णय करने का अधिकार था और प्रार्थी का मामला उन मामलों में नहीं था। अतः पिटीशन अस्वीकार कर दिया गया।

डालमिया दादरी सीमेण्ट कम्पनी बनाम आयकर आयुक्त[1] के मामले में न्यायालय ने अब यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रसंविदा का निर्माण एक राज-नैतिक निर्णय है जो प्रभुत्वसम्पन्न द्वारा किया गया एक राज्यकृत है तथा राष्ट्रीय न्यायालयों में उन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती। इसी प्रकार का मत उच्चतम न्यायालय द्वारा **विरेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[2] में अपनाया गया था।

—:0:—

1. ए० आई० आर० 1955 पेप्सू 3.
2. ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 447.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

10. प्रत्यर्पण

प्रत्यर्पण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अधीन जब एक राज्य का व्यक्ति दूसरे राज्य में दण्ड प्रक्रिया से बचने के लिए भाग जाता है और वह राज्य जब उसकी वापसी की मांग करता है जिसमें दण्ड प्रक्रिया से वह बचना चाहता है तो दूसरा राज्य उस राज्य की प्रार्थना पर उसे वापस कर देता है। किन्तु वह व्यक्ति जिसके प्रत्यर्पण की मांग की गई है उस पहले राज्य की विधि के अधीन अभियुक्त सिद्ध हो चुका हो और उसे उसके मामले पर विचारण का अधिकार होना चाहिए ।

प्रत्यर्पण के सिद्धान्त का विकास समस्त राज्यों में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने में सहयोग प्रदान करने की भावना से हुआ। कोई अपराधी दण्ड के बिना न रह जाए, इसलिए गोथिमथ ने यह कथन किया था कि प्रत्येक राज्य का यह कर्त्तव्य है कि या तो वह अपराधी को स्वयं दण्ड दे या ऐसे राज्य को लौटा दे जहां उसने अपराध किया है। किन्तु राज्यों के व्यवहार से स्पष्ट होता है कि उन्होंने ऐसा कोई दायित्व स्वीकार नहीं किया है और इस सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय विधि का कोई नियम भी प्राप्त नहीं होता। सामान्य रूप से प्रत्यर्पण का दायित्व द्विपक्षीय सन्धियों द्वारा निर्धारित किया जाता है और कभी-कभी ऐसी सन्धि न होने पर भी राज्य अपने अधिकार का अधित्यजन करके अपराधी को उस राज्य द्वारा मांग किए जाने पर लौटा देते हैं। किन्तु प्रत्येक अवस्था में लौटाने से पूर्व राज्य अपने यहां की न्यायिक प्रक्रिया द्वारा अपने को आश्वस्त कर लेते हैं कि मांगा जाने वाला व्यक्ति यथार्थ में अभियुक्त है और दण्ड का अधिकारी है ।

प्रत्यर्पण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राज्य दूसरे राज्य की प्रार्थना पर ऐसे व्यक्ति को, जो अपराध करने के बाद उसके क्षेत्र में पहुंच गया है, उसके विचारण और दण्डित किए जाने के लिए सौंप देता है ।

राज्यों के व्यवहार से तथा उनकी राष्ट्रीय विधियों से अन्तरराष्ट्रीय विधि की प्रत्यर्पण पद्धति के निम्नलिखित नियम पाए जाते हैं :—

1. प्रत्यर्पण के नियम सन्धियों द्वारा निर्धारित होते हैं ।
2. केवल उन्हीं अपराधों के लिए प्रत्यर्पण किया जाता है जिनका संन्धि में उल्लेख होता है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

3. प्रत्यर्पण, सन्धि की शर्तों के अधीन प्रत्यर्पण की मांग प्रस्तुत किए जाने पर तथा सन्धिगत अन्य औपचारिकताओं की पूर्ति के बाद किया जाता है ।

4. जिस व्यक्ति पर अभियोग चलाया जाना हो वह प्रथमदृष्टया अपराधी होना चाहिए और उसके अपराधी होने का पर्याप्त साक्ष्य मौजूद होना चाहिए ।

5. प्रत्यर्पणकर्त्ता राज्य अपनी न्याय-प्रक्रिया द्वारा आश्वस्त होने पर कि प्रत्यर्पण की मांग किए जाने वाला व्यक्ति दण्ड का भागी है, प्रत्यर्पण स्वीकार करता है ।

6. अपराधी पर केवल उसी अपराध के लिए अभियोग चलाया जा सकता है जिस अपराध के लिए प्रत्यर्पण की मांग की गई है ।

7. जिस अपराध के लिए अभियोग चलाए जाने हेतु किसी अपराधी के प्रत्यर्पण की मांग की गई हो वह अपराध प्रत्यर्पणकर्त्ता देश में भी अपराध होना चाहिए ।

8. राजनैतिक तथा धार्मिक प्रकृति के अपराधों तथा सैनिक अपराधियों को प्रत्यर्पणीय नहीं माना जाता ।

9. कांटीनेण्टल विधि पद्धति का परिपालन करने वाले देश यथा जर्मनी, फ्रान्स आदि अपने नागरिकों को अप्रत्यर्पणीय मानते हैं क्योंकि विदेशों में उनके द्वारा किए गए अपराधों के लिए वे अपने देश की अधिकारिता के अधीन माने जाते हैं तथा वे स्वयं उन्हें दण्डित करते हैं । किन्तु सभी देशों की एक सी प्रथा नहीं है । यथा इंग्लैण्ड अपने नागरिकों का सन्धि के दायित्वों के अधीन प्रत्यर्पण करता है ।

आगे दिए गए निर्णयों में प्रत्यर्पण सम्बन्धी अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों अथवा अन्तरराष्ट्रीय प्रथा पर प्रकाश डाला गया है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कस्तोनी का मामला
(In re Castioni)

(1891) 1 क्यू० बी० 149.

कस्तोनी एक स्विस नागरिक था। वह एक विद्रोही दल का सदस्य था जो टिसिनो कैण्टन में सत्ता हथियाने के लिए प्रयत्नशील था। एक दिन उसके दल के सदस्यों ने नगरपालिका भवन पर आक्रमण कर दिया। उन्हें भवन के अन्दर जाने से रोका गया। इस अवरोध को दूर करने के लिए उसने गोली चला दी जिससे टिसिनो कैण्टन की राज्य परिषद् का एक सदस्य मारा गया। इसके बाद कस्तोनी इंग्लैण्ड भाग गया। अतः स्विस सरकार ने ब्रिटिश सरकार से उसके प्रत्यर्पण की मांग की। उसके प्रत्यर्पण का मामला मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया। मजिस्ट्रेट ने उसे हत्या का दोषी पाया तथा उसका राजनैतिक अपराधी होना अस्वीकार करते हुए प्रत्यर्पण को उचित ठहराया। इस निर्णय के विरुद्ध कस्तोनी ने (खण्ड) डिवीजन न्यायालय में बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट की मांग की। न्यायालय ने उसे राजनैतिक अपराधी स्वीकार करते हुए छोड़ दिए जाने का आदेश जारी किया।

यह मामला ब्रिटेन-स्विटजरलैण्ड 1870 प्रत्यर्पण सन्धि से सम्बन्धित है। इंग्लैण्ड के प्रत्यर्पण अधिनियम, 1870 की धारा 33 में उपबन्धित है कि राजनैतिक प्रकृति के अपराध के लिए या उस प्रकृति के अपराध के लिए अभियोजित तथा दण्डित किए जाने के लिए प्रत्यर्पण नहीं किया जाएगा।

न्यायालय ने कहा कि इस मामले को इस अधिनियम में प्रयुक्त शब्दों के अर्थान्तर्गत लाए जाने के लिए यह दिखाया जाना आवश्यक है कि वह कार्य राजनैतिक गतिविधि को बढ़ाने या सहायता पहुंचाने के आशय से या राजनैतिक प्रयोजन से सार्वजनिक उपद्रव के रूप में या शासन तन्त्र को हथियाने के उद्देश्य से दो पक्षकारों के बीच उत्पन्न विवाद में राजनैतिक रूप से भाग लेकर किया गया था।

इस मामले में यह स्पष्ट है कि कस्तोनी प्रारम्भ से ही विद्रोही दल का सक्रिय सदस्य था जो सरकार के विरुद्ध कार्य और आक्रमण कर रहा था। अतः अब देखने की बात यह है कि क्या तथ्यों से यह स्पष्ट है कि वह उन व्यक्तियों में से एक था जो राजनैतिक उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए हिंसात्मक कार्यों में संलग्न थे। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि तथ्यों से यह

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट है कि जब उपद्रवकारियों ने नगरपालिका भवन पर आक्रमण किया वह उनमें से एक था और जब उन्हें अन्दर जाने से रोका गया तो उसने गोली चलाई अतः युक्तियुक्त अनुमान यह है कि उसने यह सोचकर गोली चलाई कि वह अपने दल के उद्देश्य को आगे बढ़ाएगा अर्थात् उसने वह गोली राजनैतिक उद्देश्य से आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए चलाई थी। अतः वह अधिनियम के अधीन राजनैतिक अपराधी है और मुक्त किए जाने योग्य है।

* * * *

टिप्पणी:—इस मामले में राजनैतिक अपराधियों का प्रत्यर्पण न किए जाने के नियम की पुष्टि की गई है तथा राजनैतिक अपराध की प्रकृति और परिधि का वर्णन किया गया है। राजनैतिक अपराध की व्याख्या करते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपराधिक कार्य इस श्रेणी में आते हैं।

* * * *

म्युलीर का मामला, (1894) 2 क्यू० बी० 435 में बन्दी के अराजकतावादी कार्य को सरकार विरोधी होते हुए भी सभी नागरिकों के विरुद्ध मानकर राजनैतिक प्रकृति का नहीं माना गया था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि "कोई अपराध राजनैतिक तभी कहा जा सकता है जब राज्य में दो या अधिक दल हों और प्रत्येक दल सत्ता प्राप्त करने में प्रयत्नशील हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया गया अपराध राजनैतिक प्रकृति के अन्तर्गत आएगा।"

इस मामले में राजनैतिक अपराध की व्याख्या करते हुए न्यायालय ने कहा कि राजनैतिक सत्ता प्राप्ति के लिए किए गए अपराध ही इस श्रेणी में आते हैं।

* * * *

आर० बनाम गवर्नर, बोस्टन प्रिजन, (1955) 1 क्यू० बी० 540 में न्यायालय कस्तोनी के मामले में राजनैतिक अपराध की व्याख्या की उपेक्षा करके "निमित्त और भय" को उसकी परख निर्धारित किया था।

कोल्जेनेस्की के मामले में, एट एल 1 क्यू० बी० 1954 (1 ऑल इंग्लैण्ड लॉ रिपोर्ट्स 31 (1955) में केवल "साम्यवाद के विपरीत विचारधारा को राजनैतिक अपराध स्वीकार किया गया था।" जबकि **सचट्स्क बनाम इजराइल सरकार,** (1964) ए० सी० 556, में कस्तोनी की व्याख्या को मान्यता देते हुए उसकी व्यापकता पर संदेह व्यक्त किया गया था। इस सम्बन्ध में अमरीकन न्यायिक मत के लिए देखिए **गोन्जालेज का मामला,** 58 ए० जे० आई० एल० (1964) पृष्ठ 1911.

साहित्य

एल० सी० ग्रीन—पोलिटीकल आफेन्सेज वार क्राइमन एण्ड एक्स्ट्राडीशन 11 इण्टरनेशनल एण्ड कम्परेटिव लॉ क्वार्टरली, (1962) पृष्ठ 329–54.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कतिर बनाम फेडरल पब्लिक प्रासीक्यूटर
(Ktir *vs.* Federal Public Prosecutor)

सुप्रीम कोर्ट ऑफ स्विटजरलैण्ड (1961) 34 आई० एल० आर० 143.

कतिर एक फ्रान्सीसी अल्जीरियन था। वह स्विटजरलैण्ड में अवैध रूप से रह रहा था। उस पर फ्रान्स में एक अल्जीरियन की हत्या का आरोप था। फ्रान्स सरकार ने फ्रान्को-स्विस सन्धि, 1869 के अधीन उसके प्रत्यर्पण की मांग की। किलर का तर्क था कि वह अल्जीरियन नेशनल लिब्रेशन फ्रन्ट का सदस्य है और मृतक फ्रन्ट का विश्वासघाती था और उसका मुह बन्द करने के लिए उसे समाप्त करना फ्रन्ट की कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक था। उसने एक तर्क यह भी प्रस्तुत किया कि फ्रन्ट फ्रान्स के साथ युद्धस्थिति में है और उसने युद्ध के दौरान एक शत्रु को मारा है अतः उसके प्रत्यर्पण का अर्थ उसको शत्रु के हाथों में सौंपना है।

सुप्रीम कोर्ट ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त ने हत्या राजनैतिक उद्देश्य से नहीं की थी बल्कि राजनैतिक कारणों के आधार पर की थी जिससे अल्जीरिया की स्वतन्त्रता आन्दोलन को किसी प्रकार बढ़ावा नहीं मिला है अतः उसका कृत्य त्रास उत्पन्न करने और बदले की भावना से प्रेरित था। अतः अपराधी का प्रत्यर्पण किया जा सकता है। किन्तु प्रत्यर्पण इस शर्त पर प्राधिकृत किया जाता है कि फ्रन्ट की कार्यवाहियों के लिए उस पर अभियोग नहीं चलाया जाएगा।

सन्धि के अनुच्छेद 1 और 2 में यह उपबन्धित है कि प्रत्यर्पण वहीं सम्भव होगा जहां कोई कार्य फ्रान्स और स्विस दोनों की विधि के अन्तर्गत दण्डनीय है तथा सन्धि में उल्लिखित अपराधों की व्याख्या के अन्तर्गत है और राजनैतिक अपराध उसके अन्तर्गत नहीं आएंगे। राजनैतिक अपराध वे कार्य हैं जो यद्यपि स्वयं में साधारण अपराध हैं किन्तु उन परिस्थितियों के कारण, जिनमें वे किए जाते हैं तथा अपने उद्देश्यों के कारण राजनैतिक प्रकृति के हो जाते हैं। ऐसे कार्य राजनैतिक भावना से प्रेरित होकर सत्ता हथियाने के लिए या सभी विरोधों को दबाने वाली सत्ता से अलग होने के लिए किए जाते हैं तथा राजनैतिक उद्देश्यों से प्रत्यक्ष तथा घनिष्ट रूप से सम्बन्धित रहते हैं।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रतिवादी के इस तर्क को कि फ्रन्ट और फ्रान्स के बीच युद्ध चल रहा है अतः उसका कार्य युद्ध-कार्य है और वह स्विस प्रत्यर्पण अधिनियम, 1892 की धारा 4 के अधीन अप्रत्यर्पणीय है, को अस्वीकार करते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि फ्रान्को-स्विस प्रत्यर्पण सन्धि में ऐसा कोई अपवाद नहीं है तथा हत्या कभी भी युद्ध-अपराध नहीं माना गया है।

* * * *

जहां तक अपराध के राजनैतिक प्रकृति के होने का तर्क है यह बताया जाना आवश्यक है कि फ्रन्ट अल्जीरिया में सत्ता प्राप्त करने के लिए लड़ रहा था और उसकी कार्यवाही का विस्तार फ्रान्स तक था तथा उसकी अन्तर्निहित राजनैतिक प्रकृति है। प्रस्तुत साक्ष्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कतिर ने हत्या राजनैतिक उद्देश्य के लिए नहीं बल्कि राजनैतिक कारणों से की थी। किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि उसका कार्य मुख्य रूप से राजनैतिक प्रकृति का था। इस निष्कर्ष की पुष्टि के लिए यह दिखाना होगा कि फ्रन्ट के उच्च हितों की रक्षा तथा संगठन के राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हत्या ही एकमात्र साधन था। किन्तु यह इस मामले में सिध्द नहीं होता। यथार्थतः दिखाया यह गया है कि मृतक ने फ्रन्ट के साथ विश्वासघात कर उसके हितों को धक्का पहुंचाया था और फ्रन्ट के इन हितों की रक्षा के लिए उसकी हत्या ही एक मात्र साधन था। किन्तु यह नहीं दिखाया जा सकता है कि हत्या से किसी भी प्रकार से अल्जीरिया की स्वतंत्रता को बढ़ावा मिला था। यह हत्या निश्चित रूप से त्रास पैदा करने तथा बदले की भावना से की गई थी अतः सन्धि के अधीन राजनैतिक प्रकृति का अपराध नहीं है; अतः अपराधी प्रत्यर्पणीय है।

* * * — *

सन्धि के अनुच्छेद 8 में यह उपबन्धित है कि प्रत्यर्पण में प्रार्थनीय अपराध या उससे प्रत्यक्षतः सम्बद्ध अपराध के अतिरिक्त अन्य किसी अपराध के लिए अभियोजन या विचारण नहीं किया जा सकता है जब तक कि अभियुक्त स्वेच्छया या स्पष्ट सहमति प्रदान नहीं करता और उस सहमति की सूचना प्रत्यर्पण करने वाली सरकार को नहीं दे दी जाती है या यदि वह अपराध सन्धि के अन्तर्गत नहीं है तो प्रत्यर्पण करने वाली सरकार से पूर्व सहमति प्राप्त कर ली गई है। यह आरक्षण उन राजनैतिक अपराधों पर लागू होता है जिनके लिए प्रत्यर्पण स्वीकृत नहीं किया जाता।

* * * *

कतिर ने यह तर्क दिया है कि वह अल्जीरियन नेशनल लिब्रेशन फ्रन्ट का सदस्य है और उसी के लिए उसने हत्या में भाग लिया था तथा वह फ्रन्ट के काडर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का संगठनकर्ता और धनसंग्रहकर्ता है। अन्तिम दो कार्य फ्रन्च पैनल कोड की धारा 88 के अन्तर्गत राजनैतिक अपराध हैं अतः प्रत्यर्पण इस शर्त के साथ प्रदान किए जाने योग्य है कि उसका इन अपराधों के लिए विचारण और अभियोजन नहीं किया जाएगा।

* * * *

टिप्पणी:—इस मामले में राजनैतिक अपराध की व्याख्या करते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य में संलग्न दल के हितों की रक्षा और संगठन के राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किए गए कार्य राजनैतिक प्रकृति के कार्यों के अन्तर्गत आते हैं और यदि उस दल के कार्य राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत आपराधिक कार्य हैं तो वे राजनैतिक अपराधी हैं और प्रत्यर्पणीय नहीं हैं।

प्रत्यर्पण में प्रार्थनीय अपराध या उससे प्रत्यक्षतः सम्बद्ध अपराध के अतिरिक्त किसी अन्य अपराध के लिए अभियोजन नहीं चलाया जा सकता जब तक कि अभियुक्त स्वेच्छया या स्पष्ट सहमति प्रदान नहीं कर देता। उस सहमति की सूचना प्रत्यर्पण वाली सरकार को भी दी जानी चाहिए या उसके लिए उसकी पूर्व सम्मति प्राप्त कर ली जानी चाहिए।

* * * *

इचमैन बनाम अटर्नी जनरल ऑफ इजराइल, (1962) 36 आई० एल० आर० 277 के मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि न्यायालय की अधिकारिता के लिए इसका कोई महत्व नहीं है कि अपराधी न्यायालय की अधिकारिता में किस प्रकार लाया गया है।

यू० एस० बनाम रौशर, (1886) 119 यू० एस० 407 के मामले में अभियुक्त को ब्रिटेन से हत्या के लिए प्रत्यर्पण किया गया था किन्तु उस पर मार पीट तथा गम्भीर चोट पहुंचाने आदि के अन्य अभियोग चलाए जा रहे थे। सुप्रीम कोर्ट के यह अभिनिर्धारित किया था कि प्रत्यर्पण की प्रथा सन्धि पर आधारित होती है लेकिन कभी कभी राष्ट्र सौजन्यतावश अपने स्वविवेकानुसार अभ्यापन प्रदान कर देते हैं। जहां एक व्यक्ति किसी विशेष अपराध के लिए प्रत्यर्पित किया जाता है वहां उसे उसके किसी अन्य अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता। यदि किसी अन्य अभियोग के लिए प्रत्यर्पण कर्ता की अनुमति के बिना उसे अभियोजित किया जाता है तो वह प्रत्यर्पणकर्ता के सद्भाव को धोखा देता है। सरकारें गम्भीर अपराधों के लिए ही प्रत्यर्पण प्रदान करती हैं। छोटे-छोटे राजनैतिक अपराधों के लिए नहीं तथा वह विशेष अभियोग के प्रमाणों से सन्तुष्ट होने के बाद प्रत्यर्थी के विरुद्ध चलाए जाने वाले अभियोजन सम्बन्धी कुछ सीमाओं के अधीन प्रत्यर्पण प्रदान करती है।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ्रांस बनाम ग्रेट ब्रिटेन, परमानेन्ट कोर्ट आफ इन्टरनेशनल आर्बिट्रेशन 1911—सावरकर एक भारतीय क्रान्तिकारी था और उसे इंग्लैण्ड से भारत लाया जा रहा था जिससे कि उस पर मुकदमा चलाया जा सके। जब पोत फ्रान्सीसी क्षेत्र मार्सिलीज के बन्दरगाह पर था सावरकर भाग गया और फ्रान्स की पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया। फ्रान्स की पुलिस ने सावरकर को ब्रिटिश पोत के कप्तान को सौंप दिया। बाद में फ्रान्स ने ब्रिटिश सरकार से सावरकर को इस आधार पर वापस करने की मांग की कि उसकी वापसी में प्रत्यर्पण सम्बन्धी नियमों का पालन नहीं किया गया है। ब्रिटेन द्वारा वापस किया जाना अस्वीकार किए जाने पर मामला हेग स्थायी मध्यस्थ अधिकरण को सौंप दिया गया। अधिकरण ने यह अधिनिर्धारित किया था कि यदि अभियुक्त बिना उचित प्रक्रिया के प्रत्यर्पित कर दिया जाता है तो उस अनियमितता के कारण प्राप्तकर्ता को उसे वापस करने का कोई दायित्व अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन नहीं है।

* * * *

मद्रास **बनाम** सी० जो० मेनन ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 517 के मामले में सिंगापुर सरकार द्वारा श्री मेनन के प्रत्यर्पण की मांग भारत सरकार द्वारा की गई थी। मद्रास सरकार ने फ्यूजिटिव आफेन्डर्स ऐक्ट, 1881 के अधीन उसका मामला मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया। मेनन द्वारा इस अधिनियम की वैधता को चुनौती दिए जाने पर मामला उच्च तथा बाद में उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि सम्बन्धित विधि पर किसी भारतीय अधिनियम के अभाव में संविधान के अनुच्छेद 372 के आधार पर उक्त अधिनियम के अभियुक्त के विरुद्ध लागू नहीं किया जा सकता।

* * * *

इससे यह सिद्धान्त प्रतिपादित होता है कि प्रत्यर्पण तभी किया जा सकता है जब प्रत्यर्थी को उस देश की, जहां से प्रत्यर्पण की मांग की गई है, विधि द्वारा इसका अधिकार न प्रदान किया जाए अर्थात् राष्ट्रीय विधायन द्वारा प्रत्यर्पण प्राधिकृत न कर दिया जाए।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जॉन फैक्टर बनाम एच० सी० डब्ल्यू० लौबन हैमर
(John Factor v. H. C. W. Laubenheimer)

इस मामले में प्रार्थी का प्रत्यर्पण ब्रिटिश सरकार द्वारा अमरीका की सरकार से मांगा गया था। उस पर आरोप था कि उसने जानते हुए भी धोखा देकर सम्पत्ति अर्जित की थी। उस समय वह अमरीका के एलीनोस राज्य में रह रहा था। सन् 1889 के अभिसमय तथा 1842 की सन्धि में वह प्रत्यर्पणीय अपराध था किन्तु एलीनोस राज्य में इस प्रकार का आचरण अपराध नहीं था। उसने अपने प्रत्यर्पण की मांग सरकार द्वारा स्वीकार किए जाने के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की। उसका तर्क यह था कि चूंकि उसका अपराध एलीनोस राज्य में अपराध नहीं है अतः वह अप्रत्यर्पणीय है।

* * * *

यद्यपि सन् 1889 के अभिसमय तथा 1842 की सन्धि में निर्दिष्ट अपराध उस देश में, जहां भगोड़ा पाया जाता है, अपराध होना चाहिए किन्तु बहुत से अन्य मामलों में, जिनमें प्रार्थी पर अधिरोपित अपराध भी है, यह सीमा लागू नहीं होती। इसकी पुष्टि न केवल राजनयिक पत्र व्यवहार से बल्कि सन्धि में प्रयुक्त शब्दों से भी होती है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब समान किस्म के अपराधों के तकनीकी अन्तर पर विचार किया जा रहा हो तो इस प्रकार की सन्धियों का निर्वचन सहज अर्थ के आधार पर किया जाना चाहिए।

यद्यपि अन्तरराष्ट्रीय विधि में सन्धि से भिन्न किसी आधार पर प्रत्यर्पण को मान्यता नहीं दी जाती है तथापि कोई भी सरकार, सन्धिगत कर्त्तव्य न होते हुए भी, अपने देश के संविधान एवं विधि के अधीन स्वेच्छया भगोड़े को उस देश, जहां से वह भागा है, द्वारा प्रत्यर्पण की मांग के किए जाने पर, उसको अर्पण करने के अपने अधिकार का प्रयोग करती है तो ऐसा करना उसका नैतिक कर्त्तव्य है। ऐसा करने का विधिगत कर्त्तव्य सन्धि से ही निर्मित होता है।

* * * *

टिप्पणी:—इस मामले में न्यायालय ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि किसी अपराधी को प्रत्यर्पित करने का विधिगत कर्त्तव्य सन्धि द्वारा स्थापित होता है किन्तु वह अपराध, जिसके लिए प्रत्यर्पण की मांग की गई प्रत्यर्पणकर्त्ता राज्य में भी अपराधी हो। तथा राज्यों का नैतिक कर्त्तव्य है कि प्रत्यर्पण मांग करने वाले राज्य के साथ तत्सम्बन्धी सन्धि न होते हुए भी अपने संविधान एवं विधि के अधीन न्याय के लिए भगोड़े अपराधी का उस अपराध के लिए भी प्रत्यर्पण करे जो उसके राज्य में अपराध न हो।

* * * *

——: ● :——

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

11 राजनयिक उन्मुक्तियां और विशेषाधिकार

प्रत्येक राज्य का प्रभुत्व एक निश्चित भू-भाग पर होता है जिस पर उसकी सर्वोच्च सत्ता स्थापित रहती है और उसकी विधियां उस क्षेत्र में स्थित सम्पत्ति और वहां के निवासियों पर आबद्धकर होती हैं । राज्यों का यह अधिकार अन्य राज्यों के अपवर्जन में होता है । राज्यों का यह राज्यक्षेत्रीय प्रभुत्व उन सभी क्षेत्रों पर होता है जो प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं यथा समुद्र तटीय क्षेत्र, वायु मण्डल तथा भू-भाग। राज्यों को अपने इस क्षेत्र पर अधिकारिता अन्तरराष्ट्रीय विधि की सीमाओं के अधीन पूर्ण होती हैं । इस अधिकारिता के कुछ अपवाद भी हैं यथा विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न, राजनयिक प्रतिनिधि और दुतावास/राजनयिक प्रतिनिधियों और विदेशी राज्य-प्रमुख को अति प्राचीन काल से कुछ उन्मुक्तियां और विशेषाधिकार अन्तरराष्ट्रीय रूढ़ि विधि द्वारा प्रदान किए गए हैं। कुछ समय पूर्व तक विधि शास्त्रियों द्वारा इन उन्मुक्तियों और विशेषाधिकारों का आधार अधिकारितावाह्य का सिद्धान्त माना गया है । इसके अनुसार उन्हें राज्य की अधिकारिता के बाहर माना जाता है । ओपेनहाइम ने इस सिद्धान्त को उचित नहीं माना है। आस्ट्रेलियन सुप्रीम कोर्ट ने भी "एक्स पार्टी पैट्रोफ" के मामले में 1971 में इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया था । वर्तमान विचारधारा के अनुसार राजनयिकों के "कार्यों" के सुचारू संचालन के सिद्धान्त पर यह उन्मुक्तियां और विशेषाधिकार स्वीकार किए गए हैं । इन्हें अब 1961 के वियाना अभिसमय में संहिताबद्ध कर दिया गया है। राजनयिक प्रतिनिधियों को निम्नलिखित उन्मुक्तियां और विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं —

1. व्यक्तिगत सुरक्षा, अनुच्छेद 29।
2. आपराधिक न्यायालयों की अधिकारिता से उन्मुक्ति, अनुच्छेद 31।
3. निवास स्थान सम्बन्धी उन्मुक्तियां, अनुच्छेद 22 और 30।
4. साक्षी के रूप में प्रस्तुत किए जाने से उन्मुक्ति, अनुच्छेद 31 पैरा 2।
5. करों से उन्मुक्तियां अनुच्छेद 23, 34 और 36।
6. राजनयिकों को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर अधिकारिता प्राप्त होती है ।
7. दुतावास सम्बन्धी कार्यों के सम्बन्ध में सूचना भेजने की स्वतंत्रता, अनुच्छेद 27।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

8. स्थानीय सैनिक उत्तरदायित्वों से छूट, अनुच्छेद 35।

9. स्थानीय राज्यक्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक यात्रा करने का अधिकार, अनुच्छेद 26।

10. अधीनस्थ कर्मचारियों की उन्मुक्तियों और विशेषाधिकारों का अधित्यजन करने का अधिकार, अनुच्छेद 32।

आगे दिए गए कुछ मामलों में इन उन्मुक्तियों तथा विशेषाधिकारों को न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मिगहिल बनाम जोहोर का सुल्तान
(Mighell *V.* Sultan of Johore)

कोर्ट ऑफ अपील (1894) 1 क्यू० बी० 149.

इस मामले में यह विनिश्चित किया गया है कि क्या किसी अन्य देश में रहते हुए किसी स्वतन्त्र प्रभुत्वसम्पन्न शासक द्वारा उस देश के किसी नागरिक के साथ वचनभंग किए जाने पर उसके विरुद्ध फाइल किए गए वाद के सम्बन्ध में उस देश के न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त है ।

* * * *

प्रतिवादी जोहोर का सुलतान था जो अल्बर्ट बेकर के नाम से इंग्लैण्ड में रहता था । तभी उसका परिचय मिगहिल से हो गया । अल्बर्ट ने मिगहिल से विवाह करने का वचन दिया था किन्तु बाद में उसने अपना वचन निभाने से इन्कार कर दिया । इस पर मिगहिल ने अल्बर्ट बेकर के विरुद्ध वचन भंग के लिए न्यायालय में वाद फाइल किया । जोहोर के सुल्तान अर्थात् अल्बर्ट बेकर ने इसका प्रतिवाद किया और कहा कि वह प्रभुत्वसम्पन्न स्वतन्त्र शासक है और उस पर न्यायालय को कोई अधिकारिता नहीं है । न्यायालय ने विदेश मन्त्रालय से इस तथ्य के सम्बन्ध में सूचना की मांग की । विदेश मन्त्रालय ने न्यायालय को सूचित किया कि प्रतिवादी मलाया राज्य का स्वतन्त्र शासक है और सम्राट के साथ उसके सन्धिगत सम्बन्ध हैं । अतः खण्ड न्यायालय ने कार्यवाही रोकने के आदेश जारी कर दिए जिसे अपील न्यायालय ने भी स्वीकृति प्रदान कर दी ।

* * * *

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि—

1. इस देश के न्यायालयों को विदेशी स्वतन्त्र प्रभुत्वसम्पन्न के सम्बन्ध में अधिकारिता प्राप्त नहीं है जब तक कि वह स्वयं वाद नहीं लाता या न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार नहीं करता ।
2. यदि कोई विदेशी शासक किसी भिन्न नाम से साधारण नागरिक की भांति उस देश में रहता है तो वह न्यायालय की अधिकारिता में नहीं आ जाता, न ही इसका यह अर्थ है कि वह न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार करता है ।
3. विदेशी शासक की स्थिति के सम्बन्ध में विदेश मन्त्रालय का प्रमाण पत्र निश्चायक प्रमाण है ।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न की स्थिति के बारे में जांच करे, विदेश मन्त्रालय या उपनिवेश कार्यालय का प्रमाणपत्र इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक प्रमाण है । न्यायालय की अधिकारिता के सम्बन्ध में बड़े और छोटे राज्यों के प्रभुत्वसम्पन्नों की स्थिति समान है । विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न की उन्मुक्ति के प्रश्न पर **पालिमेण्ट बेल्ज के मामले में**[1] विचार किया गया था । उस मामले में यह अधिकथित किया गया था कि चूंकि प्रत्येक प्रभुत्वसम्पन्न पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होता है और चूंकि अन्तरराष्ट्रीय शिष्टाचार इस बात के लिए उत्प्रेरित करता है कि प्रत्येक प्रभुत्वसम्पन्न राज्य को हर एक अन्य प्रभुत्वसम्पन्न राज्य की स्वतन्त्रता और गरिमा का सम्मान करना चाहिए, इसलिए हर एक राज्य अपने न्यायालयों के माध्यम से किसी प्रभुत्वसम्पन्न पर या किसी अन्य राज्य के राजदूत पर या किसी अन्य राज्य की लोक सम्पत्ति पर, जिसका उपयोग जन साधारण के लिए किया जाता हो, अथवा किसी राजदूत की सम्पत्ति पर अपनी राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता का प्रयोग नहीं करता चाहे वह प्रभुत्वसम्पन्न, राजदूत या सम्पत्ति उस देश के राज्यक्षेत्र में हो और इस कारण उसकी अधिकारिता के अध्यधीन हो । किन्तु कोई स्वतन्त्र प्रभुत्वसम्पन्न स्वयं वाद लाकर न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार कर सकता है । अतः न्यायालय को वादी द्वारा लाए गए प्रस्तुत मामले को विचारण करने की अधिकारिता नहीं है ।

* * * *

टिप्पणी :—डफ्फ डेवेलपमेण्ट कम्पनी बनाम कलाण्टन सरकार/(1924) ए० सी० 797/ के मामले में हाउस ऑफ लार्डस ने यह अभिनिर्धारित किया था कि किसी प्रभुत्वसम्पन्न पर उसकी सहमति के बिना इंग्लैण्ड के न्यायालयों को अधिकारिता प्राप्त नहीं होगी । इसी सिद्धान्त की पुष्टि "**रहमतउल्ला बनाम निजाम हैदराबाद**/(1958) ए०सी० 379/में की गई है" ।

* * * *

किसी प्रभुत्वसम्पन्न को यह उन्मुक्ति न केवल सार्वजनिक कार्यों के लिए बल्कि उसके निजी कार्यों के लिए भी प्राप्त होती है । निम्नलिखित दशाओं में, इंग्लैण्ड के न्यायालयों को ऐसे व्यक्तियों या सम्पत्ति पर अधिकारिता प्राप्त है :—

1. जहां प्रभुत्वसम्पन्न ने स्वयं कार्यवाही प्रारम्भ की हो या स्वेच्छया न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार की हो । **सुल्तान ऑफ जोहोर बनाम अबूबकर**, (1950) ए० सी० 318; **डिकिन्सन बनाम डिल सोलर**, (1930) 1 के० बी० 376 ।

1. (1880) 5 पी० डी० 197 ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

2. जहां कुछ सम्पत्ति या निधि, जिसमें उसका हित है तथा जो साम्या दावे का विषय है तथा वह प्राइवेट व्यक्ति या निगम के अधिकार में है वहां उस पर न्यायालय की अधिकारिता उसी सीमा तक होगी जिस सीमा तक अधिकारिता विदेशी राज्य को प्राप्त होगी ।

3. जहां प्रभुत्वसम्पन्न ब्रिटिश प्रजाजन भी है और वह कार्य अपनी निजी हैसियत से करता है यद्यपि यहां अनुमान यह लगाया जाएगा कि उसने वह कार्य प्रभुत्वसम्पन्न रूप में किए हैं । **ड्यूक ऑफ वर्नसविक** बनाम **सम्राट हैनोवर** 2 एच० सी० एल० 1 ।

4. जहां प्रभुत्वसम्पन्न ने उस राज्य में स्थावर सम्पत्ति अर्जित की है और उसके कार्य उस सम्पत्ति के संबंध में हैं । यह अधिकारिता कदाचित भूमि पर अधिकारिता के सिद्धान्त पर आधारित है । माना यह जाएगा कि उसने भूमि अर्जित करके अपने विशेषाधिकार का अधित्यजन कर दिया है । दि चारखि, 4 ए० एण्ड ई० पृष्ठ 97; **टेलर** बनाम **बैस्ट**, (14 सी० बी० 487) ।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दि क्रिस्टिना
(The Cristina)

हाऊस ऑफ लार्डस् (1838) ए० सी० 485.

इस मामले में विचाराधीन प्रश्न यह था कि क्या किसी प्रभुत्वसम्पन्न या उसकी सम्पत्ति पर दूसरे राज्य के न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त है।

क्रिस्टिना एक स्पेनिश पोत था जो बिल्बाओं में रजिस्ट्रीकृत था। उसके स्पेन छोड़ने के पश्चात् और कार्डिफ्फ पहुंचने के पूर्व स्पेन की रिपब्लिकन सरकार ने बिल्बाओ पतन में रजिस्ट्रीकृत सभी पोतों के अधिगृहीत किए जाने के आदेश जारी कर दिए। जब क्रिस्टिना कार्डिफ्फ पतन में था तब उसे अधिग्रहण आदेश प्राप्त हुए। क्रिस्टिना के स्वामियों ने अधिग्रहण आदेश के विरुद्ध सर्वबन्धी रिट फाइल करके यह दावा किया कि चूंकि वे क्रिस्टिना के एक मात्र स्वामी हैं इसलिए उसका कब्जा उन्हें दिलाया जाए। स्पेन की सरकार सशर्त उपस्थित हुई और उस कार्यवाही के खारिज किए जाने का तर्क प्रस्तुत किया क्योंकि उसमें विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न राज्य को पक्षकार बनाया गया था। प्रथम बार के न्यायालय, अपील न्यायालय और हाऊस ऑफ लार्डस् ने स्पेन सरकार का समर्थन किया।

इस सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय विधि के दो सुस्थापित सिद्धान्त हैं, पहला यह है कि किसी देश के न्यायालय किसी विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी कार्यवाही में, चाहे वह कार्यवाही स्वयं उसके विरुद्ध की गई हो या उससे विनिर्दिष्ट सम्पत्ति या नुकसानी वसूल करने के लिए की गई हो, पक्षकार नहीं बनाएंगे। दूसरा यह है कि न्यायालय उस प्रभुत्व सम्पन्न की, चाहे वह उस कार्यवाही का पक्षकार है या नहीं, उस सम्पत्ति को अभिगृहीत या प्रतिधृत नहीं करेंगे जो उसकी है या जो उसके कब्जे या नियन्त्रण में है। इस मामले में वादियों ने रिट फाइल करके स्पेनिश सरकार को प्रत्यक्ष रूप से पक्षकार बनाया है। चूंकि इस मामले में ऐसे पोत को गिरफ्तार करके वादियों को कब्जा दिलाए जाने की मांग की गई है जो किसी अन्य प्रभुत्वसम्पन्न राज्य के अधिग्रहण आदेश के अधीन उसके नियन्त्रण में है इसलिए न्यायालय ऐसी कार्यवाही को चालू नहीं रख सकता और पोत को गिरफ्तार करके वादियों को उसका कब्जा नहीं दिला सकता।

* * * *

एक अन्य न्यायाधिपति के मतानुसार—अन्तरराष्ट्रीय विधि के साधारण सिद्धान्तों के अनुसार किसी प्रभुत्वसम्पन्न राज्य के बारे में यह माना जाता है कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह दूसरे प्रभुत्वसम्पन्न राज्य की अधिकारिता से उन्मुक्त होता है। कभी-कभी इस सिद्धान्त के बारे में यह कहा जाता है कि यह सिद्धान्त अन्तरराष्ट्रीय शिष्टाचार एवं शालीनता से उत्पन्न हुआ है किन्तु अब इसके बारे में यह माना जाता है कि यह राष्ट्र समुदाय द्वारा स्वीकृत अन्तरराष्ट्रीय विधि का नियम है। यह नियम इस सिद्धान्त पर आधारित है कि कोई राज्य किसी दूसरे प्रभुत्वसम्पन्न राज्य पर अधिकारिता का दावा नहीं कर सकता' अथवा यह इस परिस्थिति पर भी आधारित माना जा सकता है कि साधारणतया राष्ट्रीय न्यायालय का निर्णय किसी विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न राज्य के विरुद्ध प्रवर्तित नहीं किया जा सकता। और यदि प्रवर्तित करने का प्रयास किया जाता है तो वह अमैत्रीपूर्ण कार्य माना जा सकता है किन्तु कोई विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न अपनी सहमति से इस नियम का अधित्यजन कर सकता है और न्यायालय से अपने अधिकारों के प्रति न्यायनिर्णयन करवा सकता है। यह सिद्धान्त युनाइटेड किंगडम के न्यायालयों द्वारा अनेक ऐसे मामलों में लागू किया गया है जिनके तथ्य इस मामलों के तथ्यों के समरूप थे। किन्तु यह सिद्धान्त उन्हीं प्रभुत्वसम्पन्न राज्यों द्वारा लागू किया जाता है जिन्हें युनाइटेड किंगडम की सरकार ने ऐसी मान्यता दी हैं और प्रस्तुत मामले में जहां तक स्पेन का सम्बन्ध है वह ऐसा प्रभुत्वसम्पन्न राज्य है।

"यदि यह रिट मन्जूर कर लिया जाता है तो इसका अर्थ स्पेन की सरकार को आदेशित करना होगा कि वह या तो न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी के रूप में उपस्थित हो या अनुपस्थिति के दोष के आधार पर एकपक्षीय निर्णय होने दे। इस प्रकार उसे दो विकल्प प्रदान किए गए हैं कि या तो वह न्यायालय की अधिकारिता को स्वीकार करे या कब्जा छोड़े। इस प्रकार विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न से कहा जा रहा है कि वह या तो अपनी सम्पत्ति का या अपनी स्वतन्त्रता का बलिदान कर दे। अतः इस प्रकार के रिट को प्रभुत्वसम्पन्न राज्य के विरुद्ध उसकी सहमति के बिना विरुद्ध बहाल नहीं रखा जा सकता जब तक कि वह अपनी सहमति न प्रकट कर दे। अतः ऐसे प्रभुत्वसम्पन्न को अधिकार है कि यदि वह अभ्यापति करके रिट अपास्त करने के लिए आवेदन कर सकता है या अन्य उपयुक्त प्रक्रिया अपना सकता है"।

प्रस्तुत मामले में क्रिस्टिना का अधिग्रहण एक प्रभुत्वसम्पन्न राज्य के आदेश के अधीन किया गया था इसलिए इस देश के न्यायालय उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि किसी राज्य के प्रभुत्वसम्पन्न अथवा उसकी सम्पति के सम्बन्ध में उसकी सहमति के बिना दूसरे देश के न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त नही होगी। इस मामले में अवधारित सिद्धान्त

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्रिटिश न्यायालयों के पूर्व निर्णयों के अनुरूप है। **वावासिऊट बनाम क्रुप**, (1878) 9 चांसरी डिवीजन 351, में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विदेशी शासकों की सम्पत्ति के सम्बन्ध में न्यायालय को अधिकारिता नहीं होगी।

पार्लियामेन्ट बैल्ज, (1880) 5 पी० डी० 197, में बेलजियम के डाकवाही पोत के, जो व्यापार में भी प्रयोग किया जाता था ब्रिटिश पोत डेरिंग से टकरा जाने पर उसके विरुद्ध क्षतिपूर्ति का वाद लाया गया था। नौसेना अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि "ब्रिटिश न्यायालय को किसी प्रभुत्वसम्पन्न शासक, उसके व्यक्तियों तथा सम्पत्ति पर अधिकारिता नहीं है"। किन्तु "ओहियो बनाम हेलवरिंग, 293 यू० एस० 360," के मामले में अमरीका के सुप्रीम कोर्ट ने यह अभिनिर्धारित किया था कि "यह उन्मुक्ति प्रभुत्वसम्पन्न के व्यापारिक कार्यों पर लागू नहीं होगी।"

* * * *

अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में वर्तमान समय में दो विचारधाराओं को मान्यता दी जा रही है। एक विचारधारा के, जिसे रूढ़िवादी भी कहा जा सकता है, अनुसार किसी राज्य के प्रभुत्वसम्पन्न को उसके राज्य कृत्यों तथा प्राइवेट कृत्यों के लिए उसकी अनुमति के बिना किसी वाद में किसी विदेशी न्यायालय में पक्षकार नहीं बनाया जा सकता। इस विचारधारा का पालन ब्रिटिश, अमरिकन कामनवैल्थ देशों, चेकोस्लावाकिया तथा पोलैण्ड सहित अन्य बहुत से देशों के न्यायालयों द्वारा किया गया है।[1] दूसरी विचारधारा के, जिसे संकुचित विचारधारा भी कहा जाता है, अनुसार किसी प्रभुत्वसम्पन्न को केवल उसके राज्य कृत्यों के लिए उन्मुक्ति प्राप्त होती है व्यक्तिगत या निजी कृत्यों के लिए नहीं। इस विचारधारा का पालन ब्राजील, इटली, बेल्जियम, इजिप्ट, स्विटजरलैण्ड, फ्रांस, रुमानिया, पीरु, डेन्मार्क आदि देशों के न्यायालयों द्वारा किया गया है। इंग्लैण्ड, रूस तथा अन्य साम्यवादी देशों को छोड़कर अब अधिकतर देश दूसरी विचारधारा को मानने लगे हैं।[1]

---

1 विलियम डब्यू० बिशप—इण्टरनेशनल लॉ, केसेज एण्ड मैटेरियल्स, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 568-69.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डिकिन्सन बनाम डेल सोलर
(Dickinson *vs.* Del Solar)
(1930) 1 के० बी 376.

एमितियो डेल सोलर लन्दन में पीरु दूतावास में प्रथम सचिव के पद पर कार्य कर रहा था। एक दिन जब वह अपनी मोटर कार से जा रहा था तो रोबर्ट एडमण्ड डिकिन्सन उससे क्षतिग्रस्त हो गया। उसने डेल सोलर, प्रतिवादी, द्वारा उपेक्षापूर्ण ढंग से मोटर कार चलाने के कारण हुई क्षति के लिए उसके विरुद्ध नुकसानी का वाद फाइल कर दिया। ज्यूरी ने प्रतिवादी को दोषी पाकर नुकसानी के रूप में 856 पाउण्ड की राशि निर्धारित कर दी। तदनुसार न्यायालय ने अपना निर्णय दिया कि प्रतिवादी एमितियो डेल सोलर अपीलार्थी रोबर्ट एडमण्ड डिकिन्सन को नुकसानी के रूप में 856 पाउण्ड की राशी का संदाय करे। प्रतिवादी ने अपनी मोटर कार का तृतीय पक्षकार मोबाइल एण्ड जनरल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड से बीमा करवाया हुआ था और उसने उस तृतीय पक्षकार के विरुद्ध यह घोषणा करने के लिए न्यायालय से अनुरोध किया कि नुकसानी के रूप में जितनी राशि का संदाय करने के लिए उसे आदेश दिया गया है उतनी राशि की क्षतिपूर्ति के लिए वह हकदार है। तृतीय पक्षकार, कम्पनी ने अपनी प्रतिरक्षा में यह अभिकथित किया कि यद्यपि वादी क्षतिग्रस्त हुआ है तथापि वह प्रतिवादी के विरुद्ध वाद नहीं ला सकता क्योंकि उसे पीरु के दूतावास के प्रथम सचिव होने के नाते सिविल प्रक्रिया से उन्मुक्ति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त कम्पनी ने पालिसी की अन्य शर्तों के भंग किए जाने का भी तर्क प्रस्तुत किया। प्रतिवादी ने कम्पनी के अभिकर्ता को व्यक्तिगत रूप से बता दिया था कि दूतावास ने हस्तक्षेप करके उसे उन्मुक्ति की मांग करने से मना कर दिया है क्योंकि जब दुर्घटना घटी थी उस समय मोटर का प्रयोग निजी प्रयोजन के लिए किया जा रहा था न कि शासकीय प्रयोजन के लिए। इसके बाद कम्पनी प्रतिवादी की ओर से न्यायालय में हाजिर हुई और कुछ अन्य कदम भी उठाए और अन्त में जब पर्याप्त रूप से यह स्पष्ट कर दिया गया कि प्रतिवादी राजनयिक विशेषाधिकार का अभिवाक् नहीं कर सकता तब प्रतिवादी के अधिवक्ता ने कम्पनी को मार्च 5, 1929 के एक पत्र द्वारा सूचित किया कि इस मामले में वह स्वयं पीरु दुतावास के मिनिस्टर से मिल चुका है और उन्होंने प्रथम सचिव को दिए गए आदेशों को दोहराया कि वह उन्मुक्ति की मांग नहीं कर सकता। अतः इस सम्बन्ध में डेल सोलर को कोई राजनयिक विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है और यदि वह चाहे तो भी उसके लिए विशेषाधिकार का दावा करना संभव नहीं है। इसके उपरांत कम्पनी के अधिवक्ता और डेल सोलर के अधिवक्ता के बीच और पत्र व्यवहार हुआ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डेल सोलर की ओर से यह दलील दी गई कि राजनयिक उन्मुक्ति ऐसा विशेषाधिकार है जो किसी विदेशी प्रभुत्व संपन्न को प्राप्त होता है वह चाहे तो उसका अधित्यजन कर सकता है। राजनयिक अभिकर्ताओं को अपने प्रभुत्वसम्पन्न से अधिक उन्मुक्तियां प्राप्त नहीं होती। इस मामले में अभिकर्ता ने न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर उसकी अधिकारिता को स्वीकार किया है और उसने ऐसा अपनी वरिष्ठ अधिकारी के अनुदेशों के अनुसार किया है। अतः अब कम्पनी प्रतिवादी से यह नहीं कह सकती कि वह अब भिन्न रूख अपनाए।

कम्पनी की ओर से यह दलील दी गई कि प्रतिवादी डेल सोलर द्वारा राजनयिक विशेषाधिकार के अधित्यजन कर देने से ही कम्पनी मोटर कार की पालिसी के लिए दायित्वाधीन नहीं है। पालिसी के निबन्धनों के अधीन प्रतिवादी को कम्पनी के अहित में या उसके हितों के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं करना चाहिए और उसे हर प्रकार से कम्पनी की सहायता करनी चाहिए। ऐसा न करने से पालिसी के निबन्धनों का भंग होता हैं। प्रतिवादी अपने विशेषाधिकार के कारण किसी ऐसे कार्य के लिए दायी नहीं है जिसके लिए यहां रहने वाला कोई ब्रिटिश नागरिक दायी होगा। अतः प्रभावपूर्ण अधित्यजन नहीं किया गया है जो अधिकार प्रतिवादी को प्राप्त है वे पालिसी के अधीन कम्पनी को अन्तरित हो गए हैं और केवल कम्पनी ही राजनयिक विशेषाधिकार का अधित्यजन करने के लिए सम्मति प्रकट कर सकती है। अतः प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णय प्रवृत्त करने के लिए उसके विशेषाधिकार के कारण कम्पनी के विरुद्ध निष्पादन कार्यवाहियां नहीं की जा सकतीं।

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि राजनयिक अभिकर्ताओं को, उनके विशेषाधिकार के कारण, दोषपूर्ण कार्यों के लिए विधिक दायित्व से उन्मुक्ति नही मिलती। सही मत यह है कि इंग्लैण्ड के न्यायालयों में उनके विरुद्ध वाद नहीं लाए जा सकते जब तक कि वे न्यायालयों की अधिकारिता स्वीकार नहीं कर लेते। राजनयिक विशेषाधिकार से विधिक दायित्वों से उन्मुक्ति नहीं मिल जाती, उससे तो केवल स्थानीय अधिकारिता से छूट मिल जाती है। विशेषाधिकार तो उस प्रभुत्वसम्पन्न का होता है जिसके द्वारा राजनयिक अभिकर्ता प्रत्यापित किया जाता है, और उसका अधित्यजन प्रभुत्वसम्पन्न या अभिकर्ता के वरिष्ठ अधिकारी की मंजूरी से किया जा सकता है।[1] प्रस्तुत मामले में प्रतिवादी ने न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर अपने विशेषाधिकार का अधित्यजन कर दिया है।[2] चूंकि प्रतिवादी न्यायालय में उपस्थित हो कर उसकी

[1] टेलर बनाम बैस्ट (1854) 14 सी०बी० 487; स्वरेज का मामला, (1918) चांसरी 176, 193.

[2] डफ्फ डेवेलपमेण्ट कम्पनी बनाम क्लाण्टन सरकार, (1924) ए०सी० 97, 830.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिकारिता स्वीकार कर चुका है अतः अब वह विशेषाधिकार की मांग नहीं कर सकता। यदि प्रतिरक्षा के रूप में उसके द्वारा विशेषाधिकार का अभिवाक् किया भी गया होता तो उसे न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता। डेल सोलर इस मामले में अपने मन्त्री के अनुदेशों का पालन करने के लिए आबद्ध था। अतः इन परिस्थितियों में डेल सोलर ने पालिसी की किसी भी शर्त को भंग नहीं किया है और निर्णय से स्पष्टतया विधिक दायित्व स्थापित होता है जिसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए कम्पनी ने करार किया है।

* * * *

यह दलील भी दी गई थी कि विशेषाधिकार के कारण डेल सोलर के विरुद्ध निष्पादन आदेश जारी नहीं किया जा सकता है। इस पर न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि इस देश में निष्पादन आदेश तब तक जारी नहीं किया जा सकता जब तक डेल सोलर राजनयिक अभिकर्ता रहता है तो सम्भवतः यह उस समय जारी किया जा सकता है जब वह विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति न रहे और इस निर्णय के आधार पर उसके विरुद्ध पीरु में कभी भी वाद लाया जा सकता है। अतः कम्पनी दायित्वाधीन हैं।

* * * * *

टिप्पणी :—जब कोई राजनयिक विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति समुचित अधिकारिता के न्यायालय के समक्ष कोई वाद लाता है तो वह उस मामले में अपनी उन्मुक्ति खो बैठता है। किन्तु ऐसे मामले में भी उसके विरुद्ध न्यायालय द्वारा निष्पादन आदेश जारी नहीं किए जा सकते जब तक कि अधित्यजन करने में समर्थ प्राधिकारी द्वारा उसके लिए सहमति प्रदान नहीं कर दी जाती। उस राजनयिक विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति का राज्य ही अधित्यजन आदेश देने का उचित अधिकारी है। [धारा 32 वियना अभिसमय 1961.]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आर बनाम केण्ट

(R. *vs.* Kent)

(1941) 110 एल० जे० के० बी० 268.

यह मामला किसी राजदूतावास में नियोजित कर्मचारी के सेवा से पदच्युत कर दिए जाने और गिरफ्तार कर लिए जाने पर राजदूत द्वारा उसके राजनयिक विशेषाधिकारों के अधित्यजन से सम्बन्धित है।

* * * *

अपीलार्थी लन्डन में युनाइटेड स्टेट्स के राजदुतावास में कोड क्लर्क के रूप में नियोजित था। 21 मई, 1940 को अमरीकी सरकार द्वारा उसे सेवा से पदच्युत कर दिया गया और उस पर आफिशियल सीक्रेट्स ऐक्ट, 1911 और 1920 के अधीन तथा कुछ अभिलेखों की चोरी के आरोप लगाए गए और उसे गिरफ्तार कर लिया गया। 20 या 21 मई को अमरीकी राजदूत ने उसके राजनयिक विशेषाधिकार अधित्यजित कर दिए। न्यायालय ने उसके राजनयिक उन्मुक्तियों के दावे को अस्वीकार कर उसे 7 वर्ष के कारावास का दण्ड दिया। उस निर्णय के विरुद्ध उसने अपील की।

* * * *

अपीलार्थी का मुख्य तर्क यह था कि वह अपने समस्त सेवाकाल में राजनयिक विशेषाधिकारों का हकदार रहा है और तत्पश्चात् काफी समय तक अपने देश वापस जाने के प्रबन्ध के लिए युक्तियुक्त समय तक उन विशेषाधिकारों का हकदार है तथा उसकी सरकार द्वारा उनका अधित्यजन प्रभावहीन है।

न्यायालय ने इस तर्क को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि अपीलार्थी ने जिस विशेषाधिकार का दावा किया है वह ऐसा विशेषाधिकार है जो राजदूत से व्युत्पन्न होता है और विधि की दृष्टि से वह उसका विशेषाधिकार है और अन्ततोगत्वा उस राज्य का विशेषाधिकार है जो राजदूत को भेजती है। यह ऐसा विशेषाधिकार है जो 1708 के अधिनियम द्वारा घोषित किए जाने के पूर्व मूलतः अन्तरराष्ट्रीय शिष्टाचार पर आधारित था। यह विशेषाधिकार राजदूत का विशेषाधिकार होता है किसी व्यक्ति का नहीं। अतः राजदूत या सरकार द्वारा अधित्यजित किए जाने के समय से वह समाप्त हो जाता है और सम्पृक्त व्यक्ति साधारण व्यक्तियों की भांति विधि की कार्यवाही के प्रति उत्तरदायी हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो इसके बहुत विचित्र परिणाम हो सकते हैं कि राजदूत के कर्मचारिवृन्द का कोई सदस्य, जिसे पदच्युत कर दिया गया है और जिसके

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्बन्ध में विशेषाधिकारों का अधित्यजन कर दिया गया है, अनिश्चित काल तक जिसे युक्तियुक्त समय कहा जा सकता है उस देश की विधि से बचा रह सकता है ।

* * * *

टिप्पणी—इस मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी अधिकारी के पदच्युत हो जाने पर उसके विशेषाधिकार तत्काल समाप्त हो जाते हैं किन्तु **मसरुस बनाम गेडवान,** (1899) 2 क्यू० बी० 352 और **स्वरेज,** (1918) 1 चांसरी 178 में युक्तियुक्त समय दिए जाने के उपबन्ध की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि विशेषाधिकार राजदूत या उसके कर्मचारिवृन्द के सदस्यों का कार्यकाल समाप्त होने पर लागू होते हैं पदच्युत होने पर नहीं ।

सही सिद्धान्त 1939 में अमरीका के डिस्ट्रिक्ट कोर्ट द्वारा **कोलम्बिया जिला बनाम एल० पेरिस** में, (1939) 33 ए० जे० आई० एल० 87 भी लागू किया गया था ।

पद त्याग के बाद अपने देश वापस जाने के लिए पर्याप्त समय प्रदान किए जाने का उपबन्ध वियना अभिसमय 1961 अनुच्छेद 39 में किया गया है ।

* * * *

घोष बनाम डी रोजारियो, (1963) 1 क्यू० बी० 106 के मामले में भारतीय उच्चायुक्त की सेवा से एक कर्मचारी के मुक्त कर दिए जाने पर सेवा काल में उसके द्वारा दिए गए वक्तव्यों के लिए मानहानि का वाद लाया गया था किन्तु न्यायालय में वाद के लम्बित रहने के दौरान उस कर्मचारी ने पुनः भारतीय उच्चायुक्त को सेवा स्वीकार कर राजनयिक उन्मुक्तियां प्राप्त कर ली । इस मामले में प्रश्न यह था कि क्या वाद प्रारम्भ हो जाने पर और पुनः उन्मुक्तियां प्राप्त कर लेने पर वाद जारी रखा जा सकता है । इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि जो उन्मुक्तियां वाद प्रारम्भ किए जाने के समय प्राप्त थीं वे वाद जारी रहने के सम्बन्ध में भी उपलब्ध रहेंगी । अतः वाद चालू नहीं रखा जा सकता ।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बर्गमैन बनाम डी साईस
(Bergman v. De Sieyes)

डिस्ट्रिक्ट कोर्ट, सदर्न डिस्ट्रिक्ट ऑफ न्यूयार्क, (1946) 71 एफ० सप्लीमेण्ट 334.

प्रतिवादी बोलिविया में फ्रांस का मिनिस्टर था। जब वह फ्रांस से न्यूयार्क के रास्ते बोलिविया जा रहा था तो न्यूयार्क में वादी की ओर से उस पर सिविल आदेशिका की तामील की गई। प्रतिवादी ने अपनी राजनयिक उन्मुक्तियों का अभिवाक् प्रस्तुत किया और न्यायालय ने उसे स्वीकार करके कार्यवाही समाप्त कर दी।

* * * *

इंग्लिश तथा अमरीकन मामलों तथा पाठ्य पुस्तकों का पुनर्विलोकन करने से स्पष्ट है कि—

(1) विदेशी मंत्री, उस देश के, जिसके लिए वह प्रत्यायित है, सिविल और दाण्डिक प्रभुत्व सम्पन्न शासक का प्रतिनिधि है जो निस्संदेह ऐसी उन्मुक्ति का हकदार है और न्यायालयों की अधिकारिता की अधीनता से मंत्री के रूप में उसके कार्यों के सम्पादन में हस्तक्षेप होगा।

(2) विदेशी मंत्री दूसरे देश में अपने पद के स्थान को या वहां से अपने देश को जाते हुए मार्ग में इतर देश से निर्विघ्न यात्रा का हकदार है और उसी आधारों पर इतर देश के न्यायालयों की अधिकारिता से वैसी ही उन्मुक्ति का हकदार है जैसी उसे तब प्राप्त होती यदि वह उस देश में निवास करता होता। अतः उसके विरुद्ध वादी द्वारा की गई कार्यवाही समाप्त कर दी गई।

* * * *

टिप्पणी:—राजनयिकों की यात्रा सम्बन्धी उन्मुक्ति का सिद्धान्त वियाना अभिसमय, 1961 के अनुच्छेद 40 में उपबन्धित कर दिया गया है।

* * * *

देखिए -- होल बुंब बनाम हेण्डरसन, (1839) 6 न्यूयार्क सुपर कोर्ट 619 और विलमन बनाम ब्लैन्की, (1899) 56 न्यूयार्क सुपर कोर्ट 582, यू० एस० बनाम रोशल, (1960) 191 एफ० सप्लीमेण्ट 663। ग्वाटेमाला का राजदूत बेल्जियम और नीदरलैण्ड जाते हुए निजी कार्य से न्यूयार्क में रुक गया था। न्यायालय ने उस मामले में राजनयिक उन्मुक्ति का अभिवाक् अस्वीकार कर दिया था क्योंकि वह पदभार गृहण करने या अपने देश वापस जाते समय राज्य के कार्य करने के लिए वहां नहीं रुका था।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आर बनाम मदान

(R. *v.* Madan)

(1961) 2 क्य० बी० 1.

अभियुक्त व्यक्ति भारतीय उच्चायुक्त के कार्यालय में लिपिक के रूप में नियोजित था और वह राजनयिक उन्मुक्तियों का हकदार था। उस पर झूठे बहाने से रेलवे का मासिक टिकट प्राप्त करने का आक्षेप लगाया गया और सुपुर्दगी की कार्यवाहियों में उसके सालिसिटर ने यह कहा कि उसने अपनी उन्मुक्ति का अधित्यजन कर दिया है। उसके सिद्धदोष ठहराए जाने के पश्चात् परिवीक्षा अधिकारी से पूछा गया कि उच्चायुक्त का क्या मत है। जाँच के पश्चात् उसने न्यायालय को सूचित किया कि उच्चायुक्त के कार्यालय के एक प्रतिनिधि का विचार है कि वह उन्मुक्ति का हकदार है। उपाध्यक्ष का यह विचार था कि विशेषाधिकार का अधित्यजन कर दिया गया है और इतने समय बाद उस प्रक्रम पर उसे उठाना उचित नहीं हैं। तपश्चात् उप-उच्चायुक्त ने कॉमनवैल्थ रिलेशन्स कार्यालय को सूचित किया कि अभियुक्त को 1952 के अधिकार के अधीन उन्मुक्ति प्राप्त है किन्तु न्यायिक कार्यवाही में किसी प्रकार की बाधा न पड़े इस दृष्टि से और विशेष मामले के रूप में उच्चायुक्त उन्मुक्ति का अधित्यजन करने के लिए तैयार है बशर्ते कि उच्चायुक्त के हितों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और भविष्य में इसे उदाहरण के रूप में स्वीकार न किया जाए। अभियुक्त ने अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील की जिसे उसके पक्ष में स्वीकार कर लिया गया।

* * * *

राजनयिक उन्मुक्ति के हकदार व्यक्ति के विरुद्ध की गई सिविल कार्यवाहियां वस्तुतः अधिकारिता के बिना कार्यवाहियां हैं और वे तब तक अकृत और शून्य हैं जब तक कि न्यायालय को अधिकारिता प्रदान किए जाने के लिए उनका विधिमान्य रूप से अधित्यजन नहीं कर दिया जाता। यह अधित्यजन उस व्यक्ति द्वारा अपने अधिकारों के पूर्ण ज्ञान के साथ किया गया अधित्यजन होना चाहिए और वह अधित्यजन प्रश्नगत राज्य के मुख्य प्रतिनिधि द्वारा या उसकी ओर से किया गया होना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विशेषाधिकार का हकदार व्यक्ति विशेषाधिकार का अधित्यजन नहीं कर सकता जब तक कि वह सम्पृक्त देश के प्रतिनिधि के लिए या उसकी ओर से अभिकर्ता के रूप में ऐसा नहीं करता, यह अधित्यजन राज्य के प्रतिनिधि का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधित्यजन होना चाहिए। प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी के विरुद्ध की गई कार्यवाही अधिकारिता के बिना थी तथा उप-उच्चायुक्त द्वारा अधित्यजन भूतलक्षी प्रभाव का नहीं हो सकता।]

* * * *

टिप्पणी.—रिपब्लिक ऑफ बोलिविया एक्सप्लोरेशन सिण्डीकेट के मामले में, (1914) 1 चांसरी 139, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि लन्दन में पीरु राजदूतावास का द्वितीय सचिव अपने सम्राट या राजदूत की अनुमति के बिना अपने विशेषाधिकार का अधित्यजन नहीं कर सकता है।

चुंग चू चियुंग बनाम किंग, (1939) ए०सी० 160, में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि क्षेत्रीय अधिकारिता के अधिकारी अधीनस्थ व्यक्तियों की उन्मुक्तियों और विशेषाधिकारों का अधित्यजन्य कर सकता है।

* * * *

वियाना कन्वेन्शन ऑन डिपलोमेटिक रिलेशन्स, 1961 के अनुच्छेद 31 के अनुसार राजनयिकों को दाण्डिक अधिकारिता से उन्मुक्ति प्रदान की गई है और अनुच्छेद 32 के अनुसार सिविल और दाण्डिक विषयों में उन्मुक्ति का अधित्यजन राजनयिक को भेजने वाले राज्य द्वारा किया जाता है।

—: ● :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जोहोर का सुल्तान बनाम अबूबकर तुनकु अरिस बन्दाहार
(Sultan of Johore v. Abubakar Tunku Aris Bendahar)

प्रिवी काउन्सिल (1952) ए० सी० 318.

इस मामले में विचारणीय प्रश्न यह था कि जब कोई प्रभुत्वसम्पन्न शासक न्यायालय में वाद लाता है तो क्या उस वाद के निर्णय के विरुद्ध की गई अपील या वाद में वह अपनी उन्मुक्ति की मांग कर सकता है।

* * * *

जापान द्वारा सिंगापुर के अधिभोग के समय जोहोर के सुल्तान ने जापान के एक न्यायालय से यह निर्णय करवा लिया कि वह सिंगापुर में स्थित कुछ भूमियों का एकमात्र हिताधिकारी स्वामी है। सिंगापुर के परिमोचन के पश्चात् जापानी निर्णय और सिविल कार्यवाहियां अध्यादेश, 1946 (जैपेनीज़ जजमेण्ट्स एण्ड सिविल प्रोसीडिंग्ज़ ऑर्डिनेंस, 1946) द्वारा उन कार्यवाहियों के जिनमें जापानी न्यायालयों द्वारा डिक्रियां दी गई थीं, पक्षकारों को या ऐसे व्यक्तियों को, जिन पर ऐसी डिक्रियों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था, उन डिक्रियों को अपास्त कराने की कार्यवाही प्रारम्भ करने या उनके विरुद्ध अपील करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई थी।

सुल्तान के पुत्र अबूबकर तथा अन्य व्यक्तियों ने उक्त अध्यादेश के अधीन जापानी न्यायालय की डिक्री अपास्त करने या उसके विरुद्ध अपील करने की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए आरम्भिक समन निकलवाकर कार्यवाहियां प्रारम्भ कर दी। सिंगापुर के उच्च न्यायालय में सुल्तान ने इस कार्यवाही के अपास्त किए जाने और उसे इस आधार पर रोके जाने का प्रयास किया कि वह स्वतन्त्र प्रभुत्वसम्पन्न था। न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि सुल्तान प्रभुत्वसम्पन्न है तथापि उसने जापानियों के अधिभोग काल में जापानी न्यायालय के समक्ष कार्यवाही प्रारम्भ कर अपनी उन्मुक्ति का अधित्यजन कर दिया है।

सुल्तान ने उस निर्णय के विरुद्ध सिंगापुर के अपील न्यायालय (सिंगापुर कोर्ट ऑफ अपील) में अपील की किन्तु वह खारिज कर दी गई और जुडिशियल कमेटी ने इस निर्णय को पुष्ट कर दिया। इस मामले में तीन मुख्य प्रश्न उठाए गए थे। पहला प्रश्न यह था कि क्या अपीलार्थी को विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न मान लिया जाए, दूसरा प्रश्न यह था कि यदि उसे विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न मान लिया जाए तो क्या उसने अपनी उन्मुक्ति का अधित्यजन कर दिया था, जिससे कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह प्रत्यर्थी के आरम्भिक समनों पर की गई कार्यवाहियों के रोके जाने का हकदार न रहे, और तीसरा प्रश्न यह था कि यदि दोनों प्रश्नों का उत्तर अपीलार्थी के पक्ष में दिया जाता है तो क्या इस प्रभुत्वसम्पन्न उन्मुक्ति का विस्तार इतना है कि ऐसे मामले में, जिसमें कार्यवाहियां न्यायालय की अधिकारिता के भीतर स्थित स्थावर सम्पत्ति के हकदार होने के उसके दावे से सम्बन्धित हों, न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित हो जाए ।

* * * *

1 फरवरी, 1951 को सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ने मलय राज्यों के शासकों (जिन में से सुल्तान भी एक था) को एक पत्र लिखा जिसमें स्पष्टतया यह कहा गया था कि सम्राट् उन्हें स्वतन्त्र शासकों के रूप में मान्यता देता है । न्यायालय ने उस पत्र में जो कुछ लिखा गया था, उसे स्वीकार कर लिया और इस प्रकार प्रमाणित तथ्य की न्यायिक अवेक्षा कर ली । न्यायालय ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया कि अपीलार्थी सुसंगत समय पर युनाइटेड किंगडम की सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त स्वतन्त्र प्रभुत्वसम्पन्न था और उसे मुकदमेबाजी के सम्बन्ध में उन्मुक्तियां प्राप्त थीं । अतः पहले प्रश्न का उत्तर अपीलार्थी के पक्ष में दिया गया ।

दूसरा प्रश्न अधित्यजन से सम्बन्धित है । जापानी न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां स्वयं अपीलार्थी ने आरम्भ की थीं और स्वयं ही न्यायालय की अधिकारिता का अवलम्ब लिया था । वादी के रूप में उसने न्यायालय से डिक्री प्राप्त की थी कि वह प्रश्नगत सम्पत्तियों का एकमात्र हिताधिकारी स्वामी है । अतः यदि इस विनिश्चय को उलटवाने की दृष्टि से प्रत्यर्थियों ने जो कदम उठाए हैं वे अपीलार्थी द्वारा अभिप्राप्त विनिश्चय को उलटने की अधिकारिता रखने वाले न्यायालय के समक्ष अपील की प्रकृति की कार्यवाहियां हैं तो वह अपील की इन कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी बनाए जाने पर आक्षेप नहीं कर सकता क्योंकि आरम्भिक न्यायालय में उसने जो आरम्भिक दलील दी थी उससे वह अपील किए जाने पर अधिकारिता स्वीकार करने के लिए आबद्ध है । इसके विपरीत यदि डिक्री को उलटने के लिए सिंगापुर के उच्च न्यायालय के समक्ष दिया गया प्रत्यर्थियों का आवेदन 'नई' कार्यवाही है, तो अपीलार्थी का यह आक्षेप कि वह विदेशी प्रभुत्वसम्पन्न है, वहां तक अभिभावी होगा जहां तक कि नई कार्यवाही उसकी प्रभुत्वसम्पन्न उन्मुक्ति के प्रतिकूल है ।

यहां प्रत्यर्थियों का आवेदन उसी विषय अर्थात् सम्पत्तियों में उसके हक से सम्बन्धित है जो अपीलार्थी द्वारा जापानी न्यायालय में उठाया गया था । 1946 का अध्यादेश के अनुसार जापान के न्यायालयों की डिक्रियों के विरुद्ध अपील के रूप में आवेदन किया जा सकता है । इस अध्यादेश में डिक्रियों के पुनर्विलोकन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का उपबन्ध किया गया है ताकि उन्हें पुष्ट, उपान्तरित या उल्टा जा सके। प्राधिकृत प्रक्रिया पहले ही आरम्भ की गई कार्यवाही को जारी रखने की ही प्रक्रिया है और यह नई और सुभिन्न कार्यवाही नहीं है। निस्सन्देह किसी प्राधिकारी द्वारा स्थापित अधिकरण के लिए किसी भिन्न और पूर्वतन अधिकारी द्वारा स्थापित अधिकरण के विनिश्चयों के विरुद्ध अपील न्यायालय के रूप में कार्य करना अनियमित सा है किन्तु 1946 के अध्यादेश में ऐसी ही व्यवस्था की गई है। अन्यथा प्राइवेट अधिकारों को प्रभावित करने वाला जापानी न्यायालय द्वारा दिया गया गलत विनिश्चय सम्भवतः कभी ठीक नहीं हो पाएगा। प्रस्तुत मामले में जापानी न्यायालय ने यह विनिश्चय किया था कि जो विलेख अपीलार्थी द्वारा पहले निष्पादित किए गए थे और जिनका तात्पर्य सिंगापुर में उसकी प्राइवेट सम्पत्ति को अन्य व्यक्तियों को हस्तान्तरित करना था, वे अविधिमान्य थे और अभी भी सम्पत्तियां अपीलार्थी की हैं। इस विवाद्यक के विनिश्चार्थ हक के प्रश्न को लागू करने के लिए उचित विधि वही है जो जापान द्वारा अधिभोग किए जाने से पहले थी और अधिभोग में ले लिए जाने से ही अधिभोग में ले लिए गए क्षेत्र की विधि परिवर्तित नहीं हो जाती, परिवर्तन तो केवल न्यायालय और न्यायाधीशों का होता है जिन्हें विधि लागू करनी होती है। अतः वह प्रश्न, जो प्रत्यर्थियों द्वारा निकाले गए आरम्भिक समनों द्वारा उठाया गया था और जिसका अवधारण सिंगापुर के उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है, यह है कि क्या जापानी न्यायालय का विनिश्चय सही है या गलत और यह अवधारित करने के लिए अपीलार्थी को सारतः उन कार्यवाहियों की अपील में प्रत्यर्थी बनाया गया है और जो 1946 के अध्यादेश के आधार पर उन कार्यवाहियों के नैरन्तर्य में हैं जो स्वयं अपीलार्थी ने संस्थित की थीं और हर प्रकार से वे कार्यवाहियां उसी स्थिति में हैं जैसी कि अध्यादेश की धारा 3 के अनुसार अपील की है। अतः अपीलार्थी के बारे में यह माना जाना चाहिए कि उसने प्रत्यर्थी द्वारा चालू की गई कार्यवाहियों में अपने आपको न्यायालय की अधिकारिता में समर्पित कर दिया था।

चूंकि यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अपीलार्थी ने अपने आपको प्रत्यर्थी द्वारा चालू की गई कार्यवाहियों में न्यायालय की अधिकारिता में समर्पित कर दिया था इसलिए तीसरे प्रश्न पर विचार करना सुसंगत नहीं है।

* * * *

टिप्पणी :—इस निर्णय में इस सिद्धान्त की पुष्टि की गई है कि जब कोई प्रभुत्व-सम्पन्न न्यायालय के समक्ष कोई वाद लाता है तब वह उस वाद के संबंध में अपनी उन्मुक्तियों का अधित्यजन कर देता है अर्थात् यह माना जाता है कि उसने अपने आपको न्यायालय की अधिकारिता में समर्पित कर दिया है।

— :⊙: —

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

12. शक्ति प्रयोग

शक्ति शब्द का प्रयोग साधारणतया विस्तृत अर्थों में किया जाता है। इसके अन्तर्गत न केवल सशस्त्र सेना का प्रयोग, बल्कि युद्ध और अन्तरराष्ट्रीय विवादों के सुलझाने के लिए प्रयोग की जाने वाली अन्य कार्यवाहियां भी शामिल हैं।

राज्यों की उत्पत्ति के साथ ही शक्ति प्रयोग के अधिकार को उनका अन्तर्निहित अधिकार स्वीकार किया गया है। प्रभुत्व की विचारधारा के विकास के बाद वह उसका एक अभिन्न अंग माना गया है। इस अनन्य अधिकार के अनियंत्रित प्रयोग को निर्बन्धित करने के लिए समय-समय पर विद्वानों द्वारा मत व्यक्त किए जाते रहे हैं। प्रारम्भ में उचित और अनुचित युद्धों की विचारधारा का विकास हुआ और उनके माध्यम से कुछ निर्बन्धन स्थापित किए गए। ज्यों-ज्यों अन्तरराष्ट्रीय संबंधों की उपयोगिता का अनुभव करके राज्य एक दूसरे के समीप आते गए और अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार में पारस्परिक निर्भरता बढ़ती गई उसके साथ ही इन निर्बन्धनों को दृढ़ करने का प्रयास किया जाता रहा है। इस दिशा में कैरोलाईन के मामले में राज्यों के आत्म-सुरक्षा के अधिकार पर कुछ निर्बन्धनों का विकास किया गया और उन्हें स्वीकार किया गया। इसी प्रकार "नैलीला" के मामले में प्रत्यर्पण के अधिकार की समता का अभिनिर्धारण तथा स्पष्टीकरण किया गया। इसी प्रकार युद्ध के नियमों का विकास भी इसी उद्देश्य से किया गया।

इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम प्रथम विश्व युद्ध से प्रताड़ित तथा उसकी विनाश लीला से प्रभावित और शान्ति में मानव कल्याण को देखने वाले राष्ट्रों, नेताओं और विद्वानों ने राष्ट्र संघ का निर्माण करके उठाया। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर राष्ट्र संघ की स्थापना की गई तथा युद्ध करने के अधिकार को अन्तरराष्ट्रीय संस्था के नियंत्रण के अधीन करने का प्रयास किया गया। किन्तु राष्ट्र संघ के कार्यान्वित किए जाने पर जब उन्होंने पाया कि जो कुछ किया गया है वह पर्याप्त नहीं है तो उन्होंने 1928 में "पैक्ट ऑफ पैरिस" के नाम से केल्लोग्ग-ब्रियाण्ड संधि का प्रारूप तैयार किया। इस संधि द्वारा इस अन्तरराष्ट्रीय रूढ़ि विधि का विकास किया गया कि युद्ध मानवता के विरुद्ध अपराध है तथा राज्य आक्रामिक युद्ध को अपने राज्य की नीति नहीं बनाएंगे। किन्तु इसके अन्तर्गत भी राज्यों ने अपने आत्म सुरक्षा के लिए युद्ध करने के अपने अधिकार को सुरक्षित रखने की घोषणा की। इन सब प्रयासों के बावजूद द्वितीय विश्व युद्ध हुआ। परिणामस्वरूप 51 राष्ट्रों ने मिलकर 1945 में संयुक्त

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राष्ट्र संघ की स्थापना की । इसके चार्टर की प्रस्तावना में व्यक्तिगत शक्ति के प्रयोग को रोकने के लिए सामूहिक कार्यवाही किए जाने की घोषणा की गई है । इसके सिद्धान्तों के अनुच्छेद 2, पैरा 4 में राज्यों द्वारा पारस्परिक व्यवहार में किसी राज्य की क्षेत्रीय अखण्डता तथा राजनैतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध तथा चार्टर के सिद्धान्तों के विरुद्ध शक्ति प्रयोग को प्रतिबन्धित किया गया है। यहां शक्ति शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों में किया गया किन्तु उसकी व्यापकता के संबंध में मतैक्य नहीं है किन्तु इस बात को सभी स्वीकार करते हैं कि उसके अन्तर्गत शस्त्र संबंधी शक्ति के सभी प्रयोगों को प्रतिबन्धित किया गया है । इसकी पुष्टि चार्टर के अनुच्छेद 51 में उपबन्धित आत्म-सुरक्षा के अधिकार की सीमा से हो जाती है । इस अधिकार का केवल सशस्त्र आक्रमण होने पर उपलब्ध होना स्वीकार किया गया है और उसकी वैधता का निश्चय भी अन्तरराष्ट्रीय समाज पर रखा गया है। कार्फ्यू चैनल के मामले में राज्यों के शक्ति प्रयोग के अधिकार की व्याख्या की गई है ।

शक्ति प्रयोग संबंधी कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर न्यूरेम्बर्ग निर्णय में भी विचार किया गया है तथा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अवैध शक्ति प्रयोग मानवता के विरुद्ध दण्डनीय अपराध है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कैरोलाइन का मामला
(The Caroline Case)

(1808) 6 राव 461.

मूर—डाइजेस्ट ऑफ इण्टरनेशनल लॉ, भाग 2, पृष्ठ 412.

मैक्नायर—इण्टरनेशनल लॉ ओपीनियन्स, भाग 2, पृष्ठ 229.

इस मामले में आत्म-सुरक्षा के सिद्धान्त की सीमाओं का निर्धारण किया गया है।

* * * *

सन 1837 में फेनियन विद्रोही नियागरा नदी के अमरीकी तट के समीप एक द्वीप पर अड्डा बना कर कनाडा पर आक्रमण किया करते थे और ब्रिटिश क्षेत्र में घुसकर विद्रोह फैलाते थे। इन आक्रमणों पर युद्ध सामग्रियों के प्रेषण में वे कैरोलाइन पोत का प्रयोग करते थे। परिणामस्वरूप ब्रिटिश सैनिकों को उस पोत को पकड़ने के लिए भेजा गया। एक रात्रि को जब वह आक्रमण की तैयारी में अमरीकी तट की ओर था पकड़ लिया गया और उसे ब्रिटिश क्षेत्र में ले आने के लिए उस पर ब्रिटिश अधिकारी बैठा दिया गया किन्तु पोत द्वारा अवरोध उपस्थित किए जाने पर उसे नियागरा प्रपात के बहाव में छोड़ दिया गया। परिणामस्वरूप वह नष्ट हो गया।

अमरीका सरकार ने ब्रिटेन की इस कार्यवाही पर विरोध प्रकट किया और प्रतिकर की मांग की। ब्रिटेन ने शक्ति के प्रयोग को उचित बताते हुए कहा कि यह कार्यवाही आत्म-सुरक्षा में की गई थी। ब्रिटेन ने यही शिकायत की कि अमरीका की सरकार ने शत्रुतापूर्ण चढ़ाइयों को अपने क्षेत्र में योजनाबद्ध करने दिया तथा उन्हे रोकने का कोई प्रयास नहीं किया बल्कि कनाडा की सुरक्षा के विरुद्ध चलाए जाने वाले इस आन्दोलन को अमरीकी नागरिकों द्वारा पोषित होने दिया। अमरीका की सरकार ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा कि ब्रिटेन का कार्य आत्मसुरक्षा की आवश्यकता से प्रेरित नहीं था तथा वह आक्रमण रात्रि के समय एक यात्री पोत पर किया गया था जबकि वह अमरीका के क्षेत्र में था अतः यह आक्रमण अमरीकी क्षेत्र पर था। अमरीका के सचिव वेबस्टर ने ब्रिटिश सरकार को भेजे गए अपने पत्र में आगे कहा कि आत्म-सुरक्षा की कार्यवाही वहीं विधिसम्मत मानी जा सकती है जहां इस आवश्यकता की पुष्टि हो कि विपक्षी की कार्यवाही से सुरक्षा के लिए अत्यधिक खतरा उत्पन्न हो जाने से तुरन्त शक्ति का प्रयोग किया जाना आवश्यक था तथा कार्यवाही करने के लिए बातचीत करने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या अन्य उपाय अपनाने का समय नहीं था। इसके साथ यह दिखाया जाना भी आवश्यक है कि आवश्यकता से अधिक अनुपात में शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है। ब्रिटेन ने आत्म-सुरक्षा के सिद्धांत की आवश्यकता, तत्वों एवं सीमाओं को स्वीकार करते हुए कहा कि उसे और कोई कार्यवाही या साधन चुनने का अवसर नहीं था क्योंकि अमरीका की सरकार ने पहले ही अपनी असमर्थता प्रकट कर दी थी। आक्रमण होने वाला था अतः बातचीत का कोई समय नहीं था तथा ऐसी कोई कार्यवाही नहीं की गई जो अवसर की आवश्यकता से अधिक हो क्योंकि ब्रिटिश सेना की कार्यवाही उसको बहाव में छोड़ देने तक सीमित थी जिससे कि आक्रमणकारी अपने पहुंचने के साधन से वंचित रह जाएं। अन्ततः अमरीका की सरकार ने इन स्पष्टीकरणों को स्वीकार कर लिया तथा ब्रिटेन द्वारा माफी मांग लेने पर मामला मित्रतापूर्ण ढंग से सुलझ गया।

* * * *

टिप्पणी:--इस मामले में आत्मरक्षा के अधिकार की निम्नलिखित सीमाएँ निश्चित की गई हैं--

(1) आत्मरक्षा की कार्यवाही वहीं विधिसम्मत मानी जा सकती है जहां विपक्षी की कार्यवाही से सुरक्षा के लिए अत्यधिक खतरा उत्पन्न हो जाए तथा तुरन्त सशक्त कार्यवाही की हो।

(2) कार्यवाही करने के लिए बातचीत या अन्य उपाय द्वारा सुरक्षा बनाए रखने का समय न हो।

(3) शक्ति का उपयोग आवश्यकता से अधिक अनुपात में न किया जाए।

* * * *

सम्बन्धित साहित्य

वावेट—राइट ऑफ सेल्फ डिफेन्स (1958); ब्राउनले—यूज़ ऑफ फोर्स बाई स्टेट्स अण्डर इण्टरनेशनल लॉ (1963); वेटमैन—सेल्फ डिफेन्स इन इण्टरनेशनल लॉ, 37 वर्जीनिया लॉ रिव्यू 1095 (1951); कुंज—इण्डिवीजुअल एण्ड कलैक्टिव सेल्फ डिफेन्स इन आर्टीकिल 51 ऑफ दि चार्टर ऑफ यूनाइटेड नेशन्स, 41 ए० जे० आई० एल० 1947; केलसन—इण्डिवीजुअल एण्ड कलैक्टिव सेल्फ डिफेन्स अण्डर दि चार्टर ऑफ युनाइटेड नेशन्स, 42 ए० जे० आई० एल० 783; (1948).

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दि नौलीला

(The Naulilaa)

स्पेशल आरबिट्रल ट्रायब्युनल : जर्मनी—पुर्तगाल 1928

2 आर० आई० ए० ए० 1012.

इस मामले में प्रतिशोध के जो दबावपूर्ण ढंग से विवादों के सुलझाने का अन्तरराष्ट्रीय विधि का एक मान्य तरीका है, सिद्धान्त की व्याख्या की गई है तथा उसकी सीमाओं का निर्धारण किया गया है।

* * * *

अक्तूबर, 1914 को जर्मन साउथ अफ्रीका का एक सनिक दल पुर्तगाली अफ्रीका के क्षेत्र में घुस गया। पुर्तगाल उस समय एक तटस्थ देश था। पुर्तगाल की नौलीला चौकी पर जर्मन और पुर्तगाली अधिकारियों में बातचीत हुई। बातचीत में जर्मन दुभाषिये की अक्षमता के कारण भ्रम उत्पन्न हो गया और गोली चल गई। इस कांड में जर्मनी के दो अधिकारी और दो कर्मचारी मारे गए। इसका बदला लेने तथा पुर्तगाल को दंड देने के लिए जर्मन साउथ वेस्ट अफ्रीका के गवर्नर ने एक सैनिक टुकड़ी पुर्तगाल क्षेत्र में भेजी। उस टुकड़ी ने पुर्तगाली सनिकों को, जो अंगोला क्षेत्र में विद्रोह को दमन करने के लिए भेजी जा रही थी, रोक रखा तथा नौलीला क्षेत्र पर कब्जा करके पुर्तगाली सेना को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया। बाद में जर्मन सेना के हटने पर विद्रोहियों ने उस क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया। पुर्तगाल ने इस कार्यवाही के बाद जर्मन वाणिज्य दूत को अपने क्षेत्र से निकाल दिया।

पुर्तगाल ने जर्मनी की इस आक्रामक कार्यवाही पर विरोध प्रकट किया तथा जर्मनी से प्रतिकर की मांग की।

मामला विशेष माध्यस्थम अधिकरणके समक्ष निम्नलिखित बातों के विनिश्चयार्थ प्रस्तुत किया गया :—

(i) इस घटना के संबंध में जर्मनी किस सीमा तक उत्तरदायी है।

(ii) क्या उसके द्वारा की गई कार्यवाही वैध है ?

(iii) इन सभी कार्यवाहियों के संबंध में वह कहां तक उत्तरदायी है।

* * * *

जर्मनी का यह तर्क था कि उसके द्वारा की गई प्रतिशोध की कार्यवाही अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार तथा न्यायसंगत थी। जर्मनी ने प्रतिशोध ी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व्याख्या करते हुए कहा कि यह आहत राज्य द्वारा दोषी राज्य के अन्तरराष्ट्रीय विधिविरुद्ध कार्यों को ठीक किए जाने की मांग की पूर्ति न होने पर, प्रतिक्रिया स्वरूप की गई आत्म सहायता की कार्यवाही है। ऐसी कार्यवाही के परिणाम-स्वरूप दोनों राज्यों के बीच अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम लुप्त हो जाते हैं। वे केवल मानवता और दोनों राज्यों के बीच व्यवहार्य सद्भाव के नियमों से सीमित होते हैं। वह कार्यवाही जब तक अन्तरराष्ट्रीय विधि के विरुद्ध पूर्व कार्यों पर आधारित नहीं होती, विधिविरुद्ध होती है। यह दोषी राज्य के कृत्यों से हुई हानि की पूर्ति, आगे अपराध न करने और विधि का पालन करने की मांग करने के पश्चात् की जा सकती है तथा यह आवश्यक नहीं कि ऐसी कार्यवाही अपराध के अनुपात में होनी चाहिए।

अधिकरण ने जर्मनी के तर्क को अस्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि जर्मनी के अधिकारियों की मृत्यु पुर्तगाली प्राधिकारियों द्वारा अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल किए गए किसी कार्य का परिणाम नहीं है जो जर्मनी को प्रतिशोध की कार्यवाही करने का अधिकार प्रदान करता हो। "तटस्थ राज्य" को अपने क्षेत्र में शस्त्र लेकर घुस आने वाले किसी युद्धमान राज्य को निशस्त्र करके देश से बाहर निकाल देने का अधिकार है।

जहां तक जर्मन वाणिज्य दूत को हटाने का प्रश्न है वह कार्यवाही जर्मनी द्वारा आक्रमण करने के बाद की गई थी। यह कार्य शिकायत का विषय हो सकता है, अमैत्रीपूर्ण माना जा सकता है तथा राजनयिक प्रतिवेदन का विषय हो सकता है किंतु जब ऐसी कार्यवाही किसी तटस्थ देश द्वारा अपने प्रभुत्व का प्रयोग करते हुए की जाती है तब वह अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल नहीं होती और न ही उसके विरुद्ध प्रतिशोध के नाम पर युद्ध सादृश्य आक्रामक कार्यवाही को न्यायसंगत कहा जा सकता है।

प्रतिशोध की सीमाओं का निर्धारण करते हुए अधिकरण ने कहा कि— यथार्थतः प्रतिशोध की प्रथम आवश्यकता यह है कि पहले अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल कार्य किया गया हो। किंतु इस मामले में ऐसा नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रतिशोध की कार्यवाही की वैधता के लिए निम्नलिखित का पालन किया जाना आवश्यक है—

(1) पहले अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल किए गए कार्य के प्रतितोष की विधिवत मांग की गई हो और उसकी पूर्ति न की गई हो। अधिकारियों के बीच अपराध की सूचना का आदान-प्रदान किया जाना इसके लिए पर्याप्त नहीं है। इस मामले में जर्मन प्राधिकारियों ने प्रतितोष के लिए कोई विधिवत मांग नहीं की थी। अतः प्रतिशोध

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की कार्यवाही उचित नहीं कही जा सकती। पुनश्च सेना का प्रयोग केवल अत्यंत आवश्यकता की स्थिति में ही उचित माना जा सकता है।

(2) प्रतिशोध की कार्यवाही अपराध के अनुरूप आनुपातिक होनी चाहिए। यदि वह उस अपराध के, जिसके कारण प्रतिशोध की कार्यवाही की गई हुई है, अनुपात में नहीं है और अधिक है तो वह विधि विरुद्ध हो जाती है। अधिकांश विद्वानों का यह विचार है कि प्रतिशोध की कार्यवाही की विधिमान्यता के लिए उसे अपराध के अनुरूप होना चाहिए। प्रथम विश्व युद्ध के बाद विकसित अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार प्रतिशोध की कार्यवाही कुछ सीमित हो गई है, उसमें ज्यादती का प्रतिषेध किया गया है। अतः जर्मनी की आक्रामक कार्यवाही आनुपातिक एवं वैध नहीं मानी जा सकती।

अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि नौलीला पर जर्मनी की आक्रामक कार्यवाही को उपर्युक्त दोनों शर्तों का पालन न करने के कारण वैध प्रतिशोध की कार्यवाही नहीं कहा जा सकता। जर्मन द्वारा नौलीला पर की गई अनुचित आक्रामक कार्यवाही से मारे गए और घायल नागरिकों और सैनिकों से हुई क्षति की पूर्ति की पुर्तगाली मांग उचित है और जर्मनी उसकी पूर्ति के लिए उत्तरदायी हैं। पर्याप्त प्रमाण के अभाव में आंतरिक नागरिक विद्रोह के कारण हुई अन्य क्षति की पूर्ति के लिए जर्मनी उत्तरदायी नहीं है।

* * * *

टिप्पणी:--इस मामले में प्रतिशोध की कार्यवाही की सीमाओं का निर्धारण किया गया है। इसके अनुसार प्रतिशोध की कार्यवाही तभी विधिमान्य होती है जब निम्नलिखित शर्तें पूरी होती हों—

1. अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल पूर्व कार्य का होना।
2. उसके प्रतितोष की विधिवत मांग किया जाना और उसकी पूर्ति न होना।
3. प्रतिशोध की कार्यवाही अपराध के अनुरूप आनुपातिक होनी चाहिए।
4. सेना का प्रयोग अत्यन्त आवश्यकता की स्थिति में ही किया जा सकता है।

दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त तटस्थता के संबंध में है कि तटस्थ देश को उसकी सीमा में घुस आए युद्धमान देश के शस्त्र सैनिकों को निशस्त्र करके देश से बाहर निकालने का अधिकार है।

* * * *

सम्बन्धित साहित्य

रिप्राइजल्स एंड सेल्फ डिफेन्स : दि कस्टमरी लॉ बाई रावर्ट्स डब्ल्यू० टकर, ए० जे० आई० एल० (1972) पृष्ठ 586; बाबेट डिर्क—रिप्राइजल्स इनवाल्विंग रिकोर्स टु आर्म्ड फोर्स, 66 ए० जे० आई० एल० (1972) पृष्ठ 1.36.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कॉर्फू चैनल का मामला
(The Corfu Channel Case)

आई० सी० जे० रिपोर्ट्स 1949 पृष्ठ 4.

यह मामला जलडमरूमध्य के राज्यक्षेत्र, राज्यक्षेत्रीय प्रभुत्व के अतिक्रमण और शक्ति के प्रयोग के सम्बन्ध में है ।

15 मई, 1946 को ब्रिटिश युद्धपोत जब कॉर्फू चैनल के अल्बानिया के क्षेत्रीय जल से गुजर रहा था उस पर अल्बानिया की तटीय तोपों द्वारा गोलाबारी की गई । 22 अक्तूबर, 1946 को ब्रिटिश युद्धपोत जब कॉर्फू चैनल से गुजर रहे थे, तब समुद्र में फैली हुई सुरंगों से टकरा कर क्षतिग्रस्त हो गए और उनमें बैठे कई लोग मारे गए । 13 नवम्बर, 1946 को ब्रिटिश नौसेना की सुरंगे साफ करने वाली एक टुकड़ी ने अल्बानिया की सहमति के बिना चैनल में बिछाई गई सुरंगों को साफ कर दिया । युनाइटेड किंगडम की सरकार ने इस मामले को सुरक्षा परिषद् में उठाया । सुरक्षा परिषद् ने यह सिफारिश की कि दोनों पक्षकार अपना मामला अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करें ।

युनाइटेड किंगडम की सरकार ने यह मामला अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया । अल्बानिया की सरकार ने न्यायालय की अधिकारिता संबंधी आक्षेप उठाए जिन्हें अस्वीकार कर दिया गया । बाद में दोनों पक्षकारों के बीच हुए एक करार के अधीन यह मामला निम्नलिखित विवाद्यकों का निपटारा करने के लिए न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया कि (i) क्या अल्बानिया अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन उन विस्फोटकों के लिए उत्तरदायी है जो उसके राज्यक्षेत्रीय समुद्र में 22 अक्तूबर, 1946 को हुए थे, और जिनके परिणाम-स्वरूप काफी नुकसान हुआ था और अनेक लोग मारे गए थे, (ii) क्या युनाइटेड किंगडम ने 22 अक्तूबर तथा 12 और 13 नवम्बर, 1946 को अल्बानिया के राज्यक्षेत्रीय समुद्र में रायल नेवी के कार्यों के कारण अल्बानिया पीपल्स रिपब्लिक की प्रभुता का अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन अतिक्रमण किया है ।

अल्बानिया की सरकार ने सुरंगे बिछाए जाने की जानकारी और उससे हुए जान माल के नुकसान के उत्तरदायित्व को अस्वीकार कर दिया । न्यायालय ने प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर अल्बानिया की सरकार को उत्तरदायी ठहराया और यह अभिनिर्धारित किया कि—

1. मई, 1946 के बाद अल्बानिया की सरकार नॉ कॉर्फू चैनल की निरन्तर सतर्कता से चौकसी करती रही ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

2. सुरंगे बिछाने का कार्य 22 अक्तूबर के आस-पास किया गया था अतः यह कार्य उस समय हुआ जब कि अल्बानिया की सरकार सतर्कता से उसकी चौकसी कर रही थी ।

3. अल्बानिया की सरकार ने संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को 13 नवम्बर और 27 नवम्बर को तारें भेजकर ब्रिटिश नौ सेना की हरकतों और कार्यवाहियों की शिकायत करते हुए दृढ़ता से विरोध किया किन्तु उसने सुरंगे बिछाए जाने के संबंध में कुछ नहीं कहा जिससे प्रतीत होता है कि सुरंगों का बिछाया जाना अल्बानिया की सरकार की जानकारी में था ।

4. 13 नवम्बर की घटना के पश्चात् भी अल्बानिया की सरकार ने सुरंग बिछाए जाने की अधिसूचना जारी नहीं की और न ही उसके संबंध में कोई न्यायिक जांच कराई । जब कि ग्रीक सरकार ने 22 अक्तूबर की घटनाओं की जांच करने के लिए तत्काल जांच आयोग नियुक्त कर दिया था । अल्बानिया की सरकार ने इस प्रकार का कोई विनिश्चय नहीं किया जबकि राज्यक्षेत्र प्रभुत्वसम्पन्न के रूप में ऐसी जांच कराना अल्बानिया का कर्त्तव्य था । इससे यह उपदर्शित होता है कि अल्बानिया सरकार को उसकी जानकारी थी ।

5. सारन्द की खाड़ी और कॉर्फू चैनल में जहाजों के निरन्तर आवागमन से तथा उनकी भौगोलिक समाकृति के कारण उसमें सुरंगे बिछाया जाना आसानी से जाना जा सकता था और अल्बानिया का सुरक्षा दल उसको देख सकता था । क्योंकि सुरंग विशेषज्ञों के अनुसार किसी भी जहाज को सुरंगे बिछाने में दो ढाई घण्टे से कम समय नहीं लगा होगा और यह समय अल्बानिया के केप कीफाली और सेंट जॉर्ज मॉनेस्ट्री के सुरक्षा दल के ध्यान आकर्षण के लिए पर्याप्त था । अतः यह कार्य अल्बानिया की सरकार की जानकारी के बिना सम्पन्न किया जा सकना सम्भव नहीं है । । इन तथ्यों से स्पष्ट है सुरंगे बिछाए जाने की जानकारी अल्बानिया की सरकार को थी ।

इस जानकारी से उत्पन्न होने वाले उत्तरदायित्वों के संबंध में पक्षकारों में कोई विवाद नहीं है । अल्बानिया की सरकार ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि यदि 22 अक्तूबर की घटनाओं से पूर्व कॉर्फू चैनल में सुरंगे बिछाए जाने की जानकारी उसे होती और उसने समय पर ब्रिटिश जलयानों और साधारण पोत परिवहन को उसकी चेतावनी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न दी होती तो उसका उत्तरदायित्व उत्पन्न हो सकता था। 1907 के हेग सम्मेलन के अभिसमय 8 के अनुसार मानवता तथा समुद्रीय संचार की स्वतंत्रता के सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक राष्ट्र का यह कर्त्तव्य है कि वह जानबूझकर अपने राज्यक्षेत्र का दूसरे राज्यों के अधिकारों के प्रतिकूल कार्यों के लिए प्रयोग न करने दे।

वस्तुतः अल्बानिया ने सुरंग क्षेत्र की विद्यमानता के संबंध में न तो कोई अधिसूचना जारी की थी और न ही ब्रिटिश युद्धपोतों को उस खतरे की जिसकी ओर वे बढ़ रहे थे, कोई चेतावनी दी। जबकि ऐसी चेतावनी या सूचना देना सम्भव था क्योंकि युद्धपोतों के चैनल में प्रवेश करने की सूचना सुरक्षा चौकियों द्वारा दिए जाने के बाद उनके घटना स्थल तक पहुंचने में कम-से-कम दो घण्टे लगे होंगे और सूचना देने के लिए यह समय पर्याप्त था। अतः अल्बानिया द्वारा 22 अक्तूबर की दुर्घटना को रोकने के लिए कोई प्रयास न किए जाने के कारण वह दुर्घटना के लिए उत्तरदायी है।

* * * *

22 अक्तूबर तथा 12 और 13 नवम्बर, 1946 की ब्रिटिश कार्यवाही से अल्बानिया की प्रभुता के अतिक्रमण के संबंध में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया—

15 मई, 1946 को ब्रिटिश युद्धपोतों पर अल्बानिया के तट से गोलाबारी किए जाने पर युनाइटेड किंगडम की सरकार ने अल्बानिया की सरकार से तुरन्त अभ्यापत्ति की थी। किन्तु दोनों पक्षकारों में चैनल में अन्तरराष्ट्रीय नौ परिवहन के अहानिकर यात्रा के अधिकारों के संबंध में मतभेद था।

साधारणतया यह सर्वमान्य और अन्तरराष्ट्रीय रूढ़ि के अनुसार है कि राज्यों को शान्तिकाल में यह अधिकार प्राप्त हैं कि वे तटीय राज्य से पूर्व प्राधिकरण प्राप्त किए बिना खुले समुद्रों के दो भागों के बीच अन्तरराष्ट्रीय नौ परिवहन के लिए प्रयोग किए जाने वाले जलडमरूमध्य से अहानिकर यात्रा के लिए अपने युद्धपोतों को भेज सकते हैं। जब तक कि किसी अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय में अन्यथा विहित न किया हो किसी तटीय राज्य को उनका मार्ग अवरुद्ध करने का कोई अधिकार नहीं है।

अल्बानिया सरकार ने यह स्वीकार किया है कि नार्थ कॉर्फू चैनल भौगोलिक अर्थ में जलडमरूमध्य है; किन्तु यह स्वीकार नहीं किया है कि यह चैनल अन्तरराष्ट्रीय राज मार्ग की श्रेणी का है। इस संबंध में उसका कहना है कि इस मार्ग का महत्व तो केवल गौण है और वह महत्व खुले समुद्रों के दो भागों के बीच

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आवश्यक रास्ता भी नहीं है तथा कॉर्फू और सारन्दा पत्तनों के बीच इसका उपयोग प्रायः स्थानीय यातायात के लिए ही किया जाता है ।

अल्बानिया के तर्क को अस्वीकार करते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी जलडमरूमध्य के अन्तरराष्ट्रीय मार्ग होने की निश्चायक कसौटी उससे होकर गुजरने वाले यातायात की यात्रा या अन्तरराष्ट्रीय नौ परिवहन के लिए कम या अधिक महत्व के होने में नहीं है बल्कि उसकी खुले समुद्रों के दो भागों को जोड़ने वाली भौगोलिक स्थिति में है । और उसके अन्तरराष्ट्रीय मार्ग होने की निश्चायक कसौटी यह भी नहीं हो सकती कि वह जलडमरूमध्य खुले समुद्रों के दोनों भागों के बीच आवश्यक रास्ता नहीं है बल्कि एजीन और एड्रियाण्टिक समुद्रों के बीच एक वैकल्पिक मार्ग है । इसकी सही कसौटी यह है कि क्या चैनल का अन्तरराष्ट्रीय समुद्री यातायात के उपयोगी मार्ग के रूप में प्रयोग होता रहा है । 1 अप्रैल, 1936 और 31 दिसम्बर, 1937 के बीच इससे गुजरने वाले जहाजों तथा 80 वर्ष से ब्रिटिश नौ-सेना द्वारा तथा अन्य राज्यों की नौ-सेनाओं द्वारा इसके उपयोग किए जाने से उसके उपयोगी अन्तरराष्ट्रीय मार्ग होने की पुष्टि होती है । इसके अतिरिक्त यह केवल अल्बानिया के राज्यक्षेत्रीय समुद्र की ही भाग नहीं है बल्कि ग्रीक के राज्यक्षेत्रीय क्षेत्रीय समुद्र में भी आता है और इस जलडमरूमध्य का कॉर्फू पत्तन से आने-जाने का मार्ग होने के कारण ग्रीस के लिए उसका विशेष महत्व है । अतः नार्थ कॉर्फू चैनल अन्तरराष्ट्रीय राजमार्गों की श्रेणी का मार्ग है जिसमें होकर गुजरने का रास्ता शान्तिकाल में किसी तटीय राज्य द्वारा नहीं रोका जा सकता ।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि यूनाइटेड किंगडम की सरकार ने अल्बानिया के पूर्व प्राधिकरण के बिना चैनल में युद्धपोतों को भेजकर अल्बानिया की प्रभुता का अतिक्रमण नहीं किया है ।

इसके पश्चात् न्यायालय ने अल्बानिया की सरकार के इस तर्क पर विचार किया कि 22 अक्तूबर, 1946 को ब्रिटिश युद्धपोतों के कॉर्फू चैनल से गुजरने से उसके प्रभुत्व का अतिक्रमण हुआ है क्योंकि वह अहानिकर यात्रा नहीं थी । यह यात्रा साधारण यात्रा न होकर राजनैतिक मिशन था । पोत युद्धाभिनय कर रहे थे और वे हीरक रूप में मुठभेड़ विन्यास में चल रहे थे और उन पोतों पर सैनिक तैनात थे । तोपों की स्थिति भी अहानिकर यात्रा के लिए संगत नहीं थी । पोत युद्ध स्थिति में खड़े हुए सैनिक लेकर जा रहे थे । पोतों की संख्या और वे आयुधादि इतने अधिक थे कि उनसे अहानिकर यात्रा का उद्देश्य प्रकट नहीं होता था बल्कि यह प्रकट होता था कि उनका उद्देश्य अभित्रस्त करना है । पोतों को ये आदेश प्राप्त हुए थे कि वे तटीय रक्षोपायों का सम्प्रेक्षण करें और उनके बारे में रिपोर्टें दें और इन आदेशों का वस्तुतः पालन किया गया था ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

युनाइटेड किंगडम ने यह स्वीकार किया है कि 22 अक्तूबर को युद्धपोतों को जलडमरूमध्य से भेजने का उद्देश्य न केवल नौ परिवहन के प्रयोजनों के लिए यात्रा करना था बल्कि अल्बानिया की मनःस्थिति जानना था। क्योंकि राजनयिक स्तर पर किए गए पत्राचार से कोई स्पष्टीकरण नहीं हो सका था इसलिए युनाइटेड किंगडम की सरकार अन्य तरीकों से यह सुनिश्चित करना चाहती थी कि क्या अल्बानिया की सरकार अभी भी अपने अवैध मत पर दृढ़ है और दूसरों से अपना मत मनवाने के लिए चैनल से यात्रा करने वाले तोपों पर गोलियां चलाती है। यह 'मिशन' उस अधिकार की पुष्टि के लिए तैयार किया गया था जिसे अनुचित रूप से अस्वीकार कर दिया गया था। युनाइटेड किंगडम की सरकार यात्रा के अपने अधिकार से प्रविरत रहने के लिए आबद्ध नहीं थी।

अब इस प्रश्न पर विचार किया जाना रहता है कि क्या यात्रा के लिए अपनाई गई रीति अहानिकर यात्रा के सिद्धान्त से संगत थी।

साक्ष्य द्वारा यह दर्शित किया गया है कि पोत मुठभेड़ के विन्यास में नहीं जा रहे थे बल्कि पंक्तिबद्ध रूप में एक-दूसरे के पीछे जा रहे थे और उनकी तोपों की स्थिति भी ऐसी नहीं थी जो अहानिकर यात्रा के विपरीत हो। प्रथम विस्फोट होने तक उन्होंने युद्धाभिनय नहीं किया था। उनके सैन्यगठन में परिवर्तन विस्फोट के कारण और मानव जीवन की रक्षा तथा सुरंगों में फंसे हुए पोतों को बचाने के लिए किया गया था। जहां तक सैनिकों के युद्धस्थिति में तैनात होने का प्रश्न है, वे केवल इस दृष्टि से तैनात किए गए थे यदि कि उन पर पुनः गोलाबारी की गई तो वे तुरन्त प्रत्याक्रमण कर सकें। इस सावधानी के कार्य को अयुक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। अतः युनाइटेड किंगडम द्वारा अपनाए गए तरीकों से अल्बानिया के प्रभुत्व का अतिक्रमण नहीं होता है।

* * * *

युनाइटेड किंगडम की सरकार और अल्बानिया की सरकार के बीच किए गए विशेष करार में दूसरा प्रश्न रॉयल नैवी द्वारा अल्बानिया के राज्यक्षेत्रीय समुद्र में 12 और 13 नवम्बर, 1946 की कार्यवाही से संबंधित है। सुरंगे हटाने की इस कार्यवाही को पक्षकारों द्वारा 'ऑपरेशन रिटेल' नाम दिया गया है।

22 अक्तूबर, 1946 के विस्फोटों के पश्चात् युनाइटेड किंगडम की सरकार ने अल्बानिया की सरकार को एक पत्र भेजा जिसमें यह कहा गया था कि युनाइटेड किंगडम की सरकार शीघ्र ही कॉर्फू चनल की सफाई करना चाहती है। अल्बानिया की सरकार ने उस पत्र के उत्तर में यह कहा कि वह अपने राज्यक्षेत्रीय समुद्र में ऐसी कार्यवाही करने की अनुमति नहीं दे सकती। इसी बीच युनाइटेड किंगडम की सरकार के निवेदन पर इण्टरनेशनल सेण्ट्रल माइन क्लीयरेन्स बोर्ड

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने 1 नवम्बर, 1946 के अपने संकल्प द्वारा यह विनिश्चय किया कि अल्बानिया की सरकार की अनुमति से चैनल की और सफाई की जानी चाहिए। युनाइटेड किंगडम की सरकार ने अल्बानिया की सरकार को 10 नवम्बर, 1946 को सूचित किया कि सफाई का काम 12 नवम्बर, 1946 को किया जाएगा। 11 नवम्बर, 1946 को अल्बानिया की सरकार ने युनाइटेड किंगडम की सरकार के इस एकतरफा विनिश्चय का विरोध करते हुए अपने पत्र में लिखा कि इसकी अनुमति के बिना अल्बानिया के राज्यक्षेत्रीय समुद्र में चैनल में सफाई करने के काम के बारे में यह समझा जाएगा कि युनाइटेड किंगडम द्वारा जानबूझकर अल्बानिया के राज्यक्षेत्र और प्रभुत्व का अतिक्रमण किया जा रहा है।

इस पत्र-व्यवहार के बाद चैनल की सफाई का कार्य 12 और 13 नवम्बर, 1946 को किया गया। यह कार्य वायुयान वाहन, युद्धपोतों और अन्य युद्ध जलयानों की एक टुकड़ी के संरक्षण में किया गया था। जिस क्षेत्र की सफाई की गई थी वह अल्बानिया के राज्यक्षेत्रीय समुद्र में था और चैनल की उन सीमाओं के भीतर था जिनकी पहले सफाई की गई थी।

युनाइटेड किंगडम की सरकार ने यह स्वीकार किया है कि सुरंगे हटाने के लिए 'ऑपरेशन रिटेल' अल्बानिया सरकार की स्पष्टतः अभिव्यक्त इच्छा के विरुद्ध किया गया था। इस कार्य के लिए अन्तरराष्ट्रीय सुरंग सफाई संगठन की सम्मति नहीं ली गई थी और इसे अहानिकर यात्रा के अधिकार के प्रयोग के लिए न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। सिद्धान्ततः अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन इस बात की इजाजत नहीं है कि कोई राज्य दूसरे राज्य के राज्यक्षेत्रीय समुद्र में इतनी अधिक संख्या में युद्धपोत एकत्रित करे और उस राज्यक्षेत्रीय समुद्र की सफाई करे। युनाइटेड किंगडम की सरकार का कहना है कि सुरंगे हटाने का कार्य अत्यधिक आवश्यक था और उसका यह विचार था कि उसे किसी भी सम्मति लिए बिना ऐसा करने का अधिकार प्राप्त था। अपने मत का औचित्य प्रकट करने के लिए उसने दो कारण दिए हैं। पहला युनाइटेड किंगडम, फ्रांस, सोवियत यूनियन और युनाइटेड स्टेटस ऑफ अमेरीका के बीच हुआ 22 नवम्बर, 1945 का करार जिसके अधीन मैडटेरिनियन ज़ोन बोर्ड जैसे प्रादेशिक सुरंग सफाई संगठनों को सुरंगे हटाने के लिए सम्पृक्त राज्यों के परिक्षेत्रों को सैक्टरों में बांटने के लिए प्राधिकृत किया गया था। इस परिस्थिति का अवलम्ब लेते हुए कि कॉर्फू चैनल मैडिटेरिनियन बोर्ड द्वारा 5 नवम्बर, 1945 को अर्थात् ऊपर वर्णित करार पर हस्ताक्षर किए जाने से पूर्व ग्रीस को आबंटित सैक्टर में था, युनाइटेड किंगडम की सरकार ने नाव्य चैनल की पुनः सफाई करने के लिए हेलेनिक सरकार द्वारा दी गई अनुज्ञा प्रस्तुत की।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया क्योंकि नवम्बर, 1945 में चैनल की पुनः सफाई करने की आवश्यकता पर विचार नहीं किया गया था; स ् 1944 और 1945 में चैनल की जो सफाई की गई थी उससे यह समझा गया था कि चैनल पूर्ण रूप से सुरक्षित हो गई है। परिणामतः ग्रीस को प्रश्नगत सैक्टर का आबंटन और हेलेनिक सरकार की अनुज्ञा, दोनों ही नाम मात्र थे। इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि प्रश्नगत सेक्टर जब ग्रीस को आबंटित किया गया था तब अल्बानिया की सरकार से परामर्श नहीं किया गया था। जबकि चैनल अल्बानिया के राज्यक्षेत्रीय समुद्र में है।

किन्तु नौ परिवहन के लिए निरापद घोषित चैनल में, जिसके बारे में युनाइटेड किंगडम की सरकार को अन्य किसी सरकार के मुकाबले उसके निरापद होने का अधिक विश्वास था, 22 अक्तूबर, 1946 के विस्फोटों ने एक कठिन समस्या उत्पन्न कर दी थी जो कि सुरंग सफाई संगठनों के आदेशों के अधीन सुरंगे हटाने के भी कार्य से भिन्न थी। ये विस्फोट संदेहास्पद थे ; और उनसे उत्तरदायित्व का प्रश्न उत्पन्न हो गए थे। तदनुसार युनाइटेड किंगडम की सरकार ने इसी आधार को अपनी प्रतिरक्षा में प्रस्तुत किया। उसका कहना है कॉर्फू चैनल की सफाई का कार्य यथासम्भव शीघ्र किया जाना चाहिए क्योंकि इस बात की आशंका है कि अल्बानिया को सरकार द्वारा या सुरंगे बिछाने वालों द्वारा सुरंगे हटा ली जाएंगी और उनका नामोनिशान ही नहीं रहेगा। इस न्यायोचितता को दो सुभिन्न रूपों में, प्रथम हस्तक्षेप के नए सिद्धान्त और विशेष प्रकार से प्रयोग किए जाने वाले सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया जिसके माध्यम से हस्तक्षेप करने वाला राज्य दूसरे राज्य के राज्यक्षेत्र में साक्ष्य की प्राप्ति सुनिश्चित कर लेगा। जिससे कि वह उसे अन्तरराष्ट्रीय अधिकरण के समक्ष पेश कर सके और अपने कार्य को सुकर बना सके।

इस प्रकार की प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही की वैधता को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इस प्रकार के हस्तक्षेप के अधिकार की मान्यता देना शक्ति प्रयोग की नीति का प्रदर्शन है जिसका गत समय में बहुत दुरुपयोग हुआ है और वर्तमान समय में अन्तरराष्ट्रीय संगठन में कमियों के होते हुए भी इसे अन्तरराष्ट्रीय विधि में स्थान नहीं दिया जा सकता। इस मामले में हस्तक्षेप का जो विशिष्ट रूप होगा वह सम्भवतः कम ही ग्राह्य है क्योंकि वह केवल अति शक्तिशाली राज्यों के लिए ही आरक्षित होगा और उससे अन्तरराष्ट्रीय न्याय प्रशासन आसानी से विपर्यास्त हो सकता है।

युनाइटेड किंगडम ने कहा है कि 'ऑपरेशन रिटेल' आत्मसंरक्षा या आत्म-सहायता का एक ढंग था। न्यायालय ने इस तर्क को भी अस्वीकार कर दिया क्योंकि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वतंत्र राज्यों के बीच राज्यक्षेत्रीय प्रभुत्व के प्रति आदर अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध बनाए रखने के लिए एक आवश्यक आधार है। अल्बानिया की सरकार द्वारा विस्फोटों के बाद अपने कर्त्तव्यों का पालन करने में पूर्णतया असफल रहने और राजनयिक पत्र-व्यवहार में शिथिलता बरतने के कारण ही युनाइटेड किंगडम ने ऐसी कार्यवाही की है। किन्तु अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रति आदर सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि यह घोषित किया जाए कि ब्रिटिश नौ-सेना ने जो कार्यवाही की है उससे अल्बानिया के प्रभुत्व का अतिक्रमण होता है।

* * * *

—| ० |—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

13. शत्रु प्रकृति

युद्ध प्रारम्भ होने से उसके पक्षकार एक-दूसरे के शत्रु हो जाते हैं। इसी प्रकार उनकी प्रजा तथा उनमें रहने वाले व्यक्ति तथा सम्पत्ति शत्रुरूप धारण कर लेते हैं[1]। तटस्थ देशवासी इस प्रकृति में नहीं आते किन्तु जब वे किसी पक्षकार से सहयोग करने लगते हैं तो वे भी इस प्रकृति में आ जाते हैं[2]। इस सम्बन्ध में अभी तक अन्तरराष्ट्रीय विधि का कोई स्पष्ट नियम नहीं है कि सामान्यतः राज्यों ने इसी प्रथा का पालन किया है।

व्यक्तियों की शत्रु प्रकृति उनकी राष्ट्रीयता से नहीं उनके कार्य, व्यापार से मापी जाती है। एक अंग्रेज, जो कि एक शत्रु देश में अपना कार्य/व्यापार कर रहा है अपने व्यापारिक सम्बन्धों की वैधता या अवैधता के आधार पर विदेशी माना जाता है।[3] शत्रु सेना में काम करने वाले, उसे सहयोग देने वाले यथा संवाददाता, रसद पहुंचाने वाले, विनिषिद्ध वाहक, उसके व्यापारिक जहाजों के चालक या मल्लाह आदि।

शत्रु स्वामी के तथा शत्रु ध्वजधारी पोत, शत्रु अभिकर्त्ता के आदेश पर कार्यरत या सहयोग में संलग्न या निरीक्षण और तलाशी में अवरोध उत्पन्न करने वाले या उससे व्यापार करने वाले शत्रुरूप प्राप्त कर लेते हैं।

सम्पत्ति और सामग्री की शत्रुरूपता उसके स्वामी की प्रकृति पर आश्रित होती है। फ्रान्स, जर्मनी, इटली तथा अन्य यूरोपीय देश उसे राष्ट्रीयता के आधार पर निर्धारित करते हैं जबकि ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, जापान तथा हालैण्ड आदि निवास-स्थान के आधार पर।

निगमों की शत्रु प्रकृति उसके स्थायी निवास से होती है जहां उसका मस्तिष्क अर्थात् संचालकगण कार्यरत होते हैं और उसकी नीतियों का निर्धारण करते हैं।[4]

इस अध्याय में कम्पनी की शत्रु प्रकृति के नियम पर विचारण किया गया है।

---

1. 1939 शत्रु के साथ व्यापार अधिनियम, युनाइटेड किंगडम.
2. संयुक्त राज्य अमेरिका 1917 शत्रु के साथ व्यापार अधिनियम 1939.
3. लार्ड लिंडले, जान्सन व ड्राइफौनटीन कान्सालिडेटेड माइन्स लि०, (1907 ए० सी० 485, 505).
4. पिटकोवेट, लीडिंग केसेज आन इन्टरनेशनल लॉ, भाग 2, पृष्ठ 40, पांचवां संस्करण.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डेमलर कम्पनी लिमिटेड बनाम काण्टिनेण्टल टायर एण्ड रबर कम्पनी (ग्रेट ब्रिटेन) लिमिटेड

[Daimler Company Limited *v.* Continental Tyre and Rubber Company (Great Britain) Limited]

(1916) 2 ए० सी० 307

यह मामला निगमित कम्पनी की शत्रु प्रकृति से सम्बन्धित है।

* * * *

काण्टिनेण्टल टायर एण्ड रबर कम्पनी ब्रिटेन में निगमित कम्पनी थी। उसका रजिस्टर्ड कार्यालय लन्दन में था। इस कम्पनी के 90 प्रतिशत शेयर एक जर्मन कम्पनी के पास थे जो मोटर टायरों का निर्माण करती थी। एक शेयर कम्पनी के सेक्रेटरी के नाम था जो जर्मनी में पैदा हुआ था किन्तु इंग्लैण्ड में रहता था तथा जिसने 1910 में ब्रिटेन की नागरिकता प्राप्त कर ली थी। शेष सभी शेयर जर्मन नागरिकों के थे। कम्पनी के चार निदेशकों में से तीन निदेशक जर्मनी में थे और चौथा निदेशक इंग्लैण्ड में रहता था जो प्रथम युद्ध आरम्भ होने से पूर्व जर्मनी चला गया था।

इंग्लण्ड और जर्मनी के बीच युद्ध आरम्भ हो जाने के पश्चात् काण्टिनेण्टल कम्पनी ने डेमलर कम्पनी (अपीलार्थी) द्वारा स्वीकृत तीन विनिमय पत्रों की धनराशि की वसूली के लिए दावा किया था। ये विनिमय पत्र प्रत्यर्थी द्वारा युद्ध से पूर्व दिए गए माल के सम्बन्ध में थे। अपीलार्थी ने उस धनराशि का संदाय करने से इस आधार पर इन्कार कर दिया कि—

(1) प्रत्यर्थी कम्पनी तथा उसके निदेशक अन्यदेशीय शत्रु थे अतः दावे की धनराशि का संदाय करना शत्रु से व्यापार करना होगा।

(2) उक्त संदाय करने से ट्रेडिंग विद दि एनीमी ऐक्ट, 1914 के उपबन्धों का अतिक्रमण होगा।

प्रथम तथा अपील न्यायालय ने दावे को स्वीकार करके प्रत्यर्थी के पक्ष में निर्णय दिया। इस पर हाउस ऑफ लार्ड्स के समक्ष अपील की गई। हाउस ऑफ लार्ड्स ने अपील न्यायालय के निर्णयों को अस्वीकार कर दावे को अनिश्चित बताते हुए उसके आदेश को रद्द करके अपील को स्वीकार कर लिया।

लार्ड पार्कर ने निर्णय देते हुए कहा कि जब कार्यवाही संस्थित की गई थी उस समय वादी कम्पनी के सभी निदेशक जर्मन थे और वे जर्मनी में निवास करते

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे अतः वे सम्राट के शत्रु थे। सम्राट के शत्रु होने के नाते वे युनाइटेड किंगडम में निगमित कम्पनी के निदेशकों के रूप में किसी अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकते थे अतः वे इस कार्यवाही के संस्थित किये जाने का प्राधिकार देने के अयोग्य थे। कम्पनी का सेक्रेटरी निदेशकों द्वारा प्राधिकृत किए बिना वाद लाने का आदेश नहीं दे सकता। चूंकि निदेशकों ने सेक्रेटरी को ऐसा प्राधिकार नहीं दिया था अतः यह वाद कम्पनी के प्राधिकार के बिना लाया गया था। तथा न्यायालय को इस तथ्य की जानकारी होने पर अनुतोष देना अस्वीकार कर देना चाहिए।

अपीलाधीन निर्णय इस आधार पर दिया गया था कि इंग्लैण्ड में कम्पनीज़ ऐक्ट के अधीन रजिस्ट्रीकृत और यहीं पर कारबार करने वाली कम्पनी के साथ व्यापार करना शत्रु के साथ व्यापार करना नहीं कहा जा सकता। ऐसी कम्पनी इंग्लिश कम्पनी है और प्राकृतिक जन्में अंग्रेज के समान है तदनुसार न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उसे ऐसे ऋण को, जो उसे शोध्य है और ऐसी धनराशि का, जो उसकी अपनी है, संदाय शत्रु के साथ व्यापार करना नहीं है, चाहे उसके निदेशक कोई भी हों। न्यायालय के मत से इंग्लिश कम्पनी के शत्रु अधिकारी शत्रु बन जाने पर अपना पदधार छोड़ देते हैं और इसलिए कम्पनी पर उनका प्रभाव नहीं होता और उसके शत्रु शेयरधारक न तो उसके अभिकर्ता और न ही मालिक होते हैं। अतः वे विधि की दृष्टि से कोई प्रभाव नहीं डाल सकते।

एक निगम अपने सदस्यों से सुभिन्न एक विधिक व्यक्ति होता है इस पर कोई विवाद नहीं कर सकता। एक शेयरधारक का ऐसी कम्पनी के, जो शेयरों द्वारा सीमित है, साथ सम्बन्ध मालिक और अभिकर्ता या अभिकर्ता और मालिक का सम्बन्ध नहीं है। कम्पनी की आस्तियां उसकी अपनी आस्तियां हैं तथा उसके सेवकों और अभिकर्ताओं के कार्य उसके कार्य होते हैं जबकि उसके शेयरधारकों की, उस नाते, उन आस्तियों में कोई सम्पत्ति नहीं होती है और उन कार्यों के लिए उनका कोई व्यक्तिगत उत्तरदायित्व नहीं होता।

प्रकृत व्यक्ति, चाहे वह सम्राट के प्रजाजन किसी अंग्रेज से उत्पन्न हुआ हो, शत्रु के साथ कार्य करके शत्रु प्रकृति का हो सकता है और उसके दायित्व और अयोग्यता में शत्रु की प्रकृति के दायित्व और अयोग्यताएं बन जाती हैं और यदि वह शत्रु को सक्रिय रूप से सहायता करता है तो वह गद्दार है। यदि वह शत्रुओं के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रखता है या स्वेच्छया शत्रुओं के बीच निवास करता है तो भी वह शत्रु प्रकृति का हो जाता है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि ये नियम विधि द्वारा निगमित कृत्रिम व्यक्ति को कैसे लागू किए जा सकते हैं? कृत्रिम व्यक्ति के शत्रुओं के बीच स्वेच्छया निवास करने में क्या सदृश्यता है?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निगमन की व्यक्तित्वशून्यता उसे मुश्किल से ही प्रकृत व्यक्ति से अच्छी स्थिति में रख सकती है या निवास जैसी किसी स्थिति की समानता से अप्रभावित रख सकती है। किसी कम्पनी की कोई राष्ट्रीयता या निवास है यह तो मात्र कहने का ढंग है। यदि राष्ट्रीय विधि के अधीन उसके निगमन के स्थान से उसका निवास स्थिर हो जाता है तो निवास में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता जो वस्तुतः इस पद का खण्डन है और कम्पनी की दशा में निवास जीवित व्यक्ति के जन्म स्थान और नैसर्गिक निष्ठा के देश के समरूप होना चाहिए न कि निवास या वाणिज्यिक अधिवास के समरूप। फिर भी शत्रु प्रकृति इन्हीं अन्तिम बातों पर निर्भर करती है। अतः यह निष्कर्ष निकालना तर्कसंगत प्रतीत होता है कि शत्रु के साथ व्यापार करने के विरुद्ध नियम प्रकृत व्यक्ति को लागू करने के बजाए कृत्रिम व्यक्ति को लागू करने के लिए रजिस्ट्रीकरण या निगमन के स्थान या देश के अतिरिक्त कुछ अन्य बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। कम्पनी के संचालकों, निदेशकों, प्रबन्धकों, सचिव आदि द्वारा अपने-अपने प्राधिकार की परिधि के भीतर किए गए कार्य कम्पनी के कार्य होते हैं और निश्चित रूप से वे शत्रु प्रकृति के कार्य हो जाते हैं। इसी प्रकार उन व्यक्तियों की, जो उन अधिकारियों को बना और बिगाड़ सकते हैं, उनके आचरण को व्यवहित या अव्यवहित रूप से अधिप्रेरित कर सकते हैं, उनके कर्त्तव्य विहित कर सकते हैं और उनके विरुद्ध कार्यवाही कर सकते हैं, प्रकृति कम्पनी की शत्रु प्रकृति के प्रश्न में तात्विक हो सकती है। यदि यह निश्चित या निश्चायक न भी हो तो भी प्रथमदृष्टया सुसंगत अवश्य है क्योंकि इससे यह उपधारणा उत्पन्न होती है कि जो व्यक्ति कम्पनी के नाम से कार्य करते हैं वे वस्तुतः उन व्यक्तियों के नियंत्रण में होते हैं जिन्हें सन्तुष्ट करना उनके हित में है। ऐसा दृष्टिकोण प्रकृत और कृत्रिम व्यक्तियों की स्थिति में सामंजस्य स्थापित करता है।

इस विषय से सम्बद्ध विधि संक्षेप में निम्नलिखित रूप में प्रतिपादित की जा सकती है—

1. युनाइटेड किंगडम में निगमित कम्पनी विधि द्वारा सृजित विधिक सत्ता है। वह मन और अन्तरात्मा वाली प्रकृत व्यक्ति नहीं है। वह न तो निष्ठावान और न ही निष्ठाहीन हो सकती है। वह न तो शत्रु हो सकती है और न मित्र।
2. ऐसी कम्पनी उचित रूप से प्राधिकृत अभिकर्ताओं की मार्फत ही कार्य कर सकती है और जब तक वह इस प्रकार प्राधिकृत अभिकर्ताओं की मार्फत युनाइटेड किंगडम में कार्य करती रहती है और इस देश में या मित्र देश में उसका निवास रहता है तब तक उसे प्रथमदृष्टया मित्र समझा जाता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

3. ऐसी कम्पनी शत्रु प्रकृति की कम्पनी बन जाती है यदि उसके अभिकर्ता या उसके कार्यकलापों पर वस्तुतः नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति शत्रु देश में निवास करते हैं या अन्यत्र निवास करते हुए भी शत्रु का समर्थन करते हैं या उसके निर्देशानुसार या नियंत्रणाधीन कार्य करते हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई व्यक्ति जानते हुए ऐसी कम्पनी से व्यवहार करता है तो वह शत्रु से व्यवहार करता है।

4. व्यष्टिक शेयरधारकों की प्रकृति से स्वतः कम्पनी की प्रकृति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। शान्तिकाल में स्वीकृत रूप से ऐसा होता है, शान्ति काल में हर एक शेयरधारक ऐसे अधिकारों का, जो विधि के अनुसार शेयरधारक के रूप में उसकी हैसियत के आनुषंगिक है, प्रयोग और उपभोग करने के लिए स्वतंत्र है। यदि युद्धकाल में भी ऐसा न हो तो विलक्षण होगा, युद्धकाल में ऐसे सभी अधिकार और विशेषाधिकार प्रास्थगित रहते हैं। लेकिन व्यष्टिक शेयरधारकों की शत्रु प्रकृति और उनका आचरण इस प्रश्न के लिए तात्विक हो सकता है कि क्या कम्पनी के अभिकर्ता या उसके कार्यकलापों पर वस्तुतः नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति वस्तुतः शत्रुओं को समर्थन कर रहे हैं, उनसे अनुदेश ले रहे हैं या उनके नियंत्रणाधीन कार्य कर रहे हैं। यह तात्विकता उन शेयरधारकों की, जो शत्रु हैं, संख्या और उनके शेयरों के मूल्य के अनुसार बदल जाएगी। इस तथ्य से कि शत्रु शेयरधारकों को निकाल देने के पश्चात् शेष शेयरधारकों की संख्या कम्पनी की बैठकें करने अथवा निदेशकों या अन्य अधिकारियों को नियुक्त करने के लिए अपर्याप्त है, उसकी शत्रु प्रकृति के होने की उपधारणा बन जाएगी।

5. इसी प्रकार किसी कम्पनी को, जो युनाइटेड किंगडम में रजिस्ट्रीकृत है किन्तु जो उचित रूप से प्राधिकृत अभिकर्ताओं की मार्फत तटस्थ देश में कारबार चला रही और यहां या तटस्थ देश की निवासी है, प्रथम-दृष्ट्या मित्र समझा जाएगा।

6. ऐसी किसी कम्पनी को, जो युनाइटेड किंगडम में रजिस्ट्रीकृत है किन्तु यदि शत्रु देश में कारबार चलाती है, शत्रु माना जाएगा।

शत्रु के साथ व्यापार विधि द्वारा वहीं तक प्रतिबन्धित है जहां तक वह युद्धकाल में शत्रु को लाभ पहुंचाता है, शान्ति स्थापित होने के पश्चात् होने वाले लाभ पर वह प्रतिबन्ध लागू नहीं होगा।

* * * *

टिप्पणी:—इस मामले में एक कम्पनी की शत्रु प्रकृति का निर्धारण किया गया है। युद्धकाल में इस बात का बड़ा महत्व होता है। साधारण नियम यह है कि एक युद्धमान देश के राष्ट्रिक दूसरे युद्धमान देश के साथ युद्ध प्रारम्भ होने के पश्चात् शत्रु प्रकृति

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के हो जाते हैं। तटस्थ देश के राष्ट्रिक तब तक तटस्थ माने जाते हैं जब तक वे युध्यमान देश की ऐसी सेवा नहीं करते, जो तटस्थ सेवा के अधीन आती है, शत्रु देश में स्थायी निवास करते हुए, करों का संदाय करके या अन्य रीतियों से शत्रु की शक्ति बढ़ाने में अपना योगदान नहीं करते, शत्रु के साथ व्यापार नहीं करते या व्यापारिक सम्बन्ध नहीं रखते। यदि वे ऐसा कोई कार्य करते हैं तो वे शत्रु प्रकृति प्राप्त कर लेते हैं।

यदि किसी देश का राष्ट्रिक शत्रु के निदेशानुसार कार्य करता है, उसका समर्थन करता है, शत्रु के बीच स्वेच्छया निवास करता है, शत्रु के लिए या उसके साथ व्यापार करता है, तो वह शत्रु माना जाता है।

साधारणतया निगमों की शत्रु प्रकृति निर्धारित करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार दो मापदण्ड हैं—पहला, उनका निगमन का देश या अधिवास और दूसरा उनका नियंत्रण।

इस मामले में वे सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं जिनके अनुसार किसी कम्पनी को शत्रु प्रकृति की कम्पनी समझा जाता है। ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं :—

1. निगमित कम्पनी विधि द्वारा सृजित विधिक सत्ता है किन्तु वह मन और अन्तरात्मा वाली प्रकृति व्यक्ति नहीं है। वह न तो निष्ठावान हो सकती है और न ही वह निष्ठाहीन हो सकती है। वह न तो शत्रु हो सकती है और न ही मित्र।

2. ऐसी कम्पनी उचित रूप से प्राधिकृत अभिकर्ताओं की मार्फत ही कार्य कर सकती है और जब तक वह इस प्रकार कार्य करती रहती है अथवा उस देश या मित्र देश में उसका निवास रहता है तब तक उसे मित्र समझा जाता है।

3. ऐसी कम्पनी शत्रु प्रकृति की कम्पनी बन जाती है यदि उसके अभिकर्ता या उसके कार्यकलापों पर वस्तुतः नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति शत्रु देश में निवास करते हैं या अन्यत्र निवास करते हुए भी शत्रु का समर्थन करते हैं या उसके निदेशानुसार या नियंत्रणाधीन कार्य करते हैं।

4. ऐसी कम्पनी की शत्रु प्रकृति उसके कार्यों पर निर्भर करती है। वह अपने शेयरधारकों की प्रकृति से स्वतः शत्रु प्रकृति की नहीं बन जाती। उसकी शत्रु प्रकृति उसके शेयरधारकों की संख्या और उनके शेयरों के मूल्य पर निर्भर करती है। यदि शत्रु शेयरधारकों को निकाल देने के पश्चात् शेष शेयरधारकों की संख्या कम्पनी की बैठकें करने अथवा निदेशकों या अन्य अधिकारियों को नियुक्त करने के लिए अपर्याप्त है तो वह शत्रु प्रकृति की कम्पनी बन जाती है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

5. ऐसी कम्पनी यदि रजिस्ट्रीकृत है और उचित रूप से प्राधिकृत अभिकर्ताओं की मार्फत तटस्थ देश में कारबार चला रही है तथा उसका अपने रजिस्ट्रीकरण के देश में या तटस्थ देश में निवास है तो उसे शत्रु प्रकृति का नहीं समझा जाता है ।

6. ऐसी कम्पनी यदि अपने में रजिस्ट्रीकृत होते हुए भी शत्रु देश में कारबार चलाती है तो उसे शत्रु प्रकृति की कम्पनी माना जाता है ।

* * * *

[**सोम फ़ेचर** बनाम **एन० बी० ग्रेब**, 1943 ए० सी० 203 में हाउस ऑफ लार्ड्स ने डेमलर कम्पनी के सिद्धान्तों की पुष्टि करते हुए अवधारित किया था कि रोस्टर्डम निवासी डच पोत परिवहन कम्पनी जो हौलैण्डवासी निदेशकों से नियंत्रित है तथा हौलैण्ड में रजिस्ट्रीकृत होते हुए भी शत्रु द्वारा अधिकार कर लिए जाने पर विदेशी शत्रु हो जाती है और वाद नहीं ला सकती यद्यपि डच सरकार लन्दन में स्थापित है और एक पोत को छोड़कर सभी पोत शत्रु के नियंत्रण से बाहर हैं]

* * * *

—: o :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

14. युद्ध अपराध

अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा युद्ध के नियमों का निर्धारण किया गया है। जिनका पालन करना सभी राज्यों और राज्यकार्यों में संलग्न व्यक्तियों का कर्त्तव्य है। युद्ध काल में इन नियमों का पालन न करना युद्ध-अपराध माना जाता है तथा जो व्यक्ति उनका उल्लंघन करता है वह अपराधी माना जाता है। हेग सम्मेलन 1899 में युद्ध बंदियों के प्रति दुर्व्यवहार, लूटपाट, निष्प्रयोजन विनाशकारी युद्ध प्रारम्भ करना, जासूसी आदि युद्ध अपराध माने गए हैं। इनके अन्तर्गत राष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल किए जाने वाले कार्य, जो स्वयं अपराधी द्वारा अपने ही राज्य में किए जाने पर अपराध होते हैं यथा व्यक्तिगत प्रलोभन के लिए या लाभ की पूर्ति के लिए कत्ल आदि करना, जो शत्रु राज्य के आदेश पर या उसकी ओर से कार्यान्वित किए जाते हैं, समर्पण करने वाले सैनिकों का वध करना, संग्रहालयों, अस्पतालों, उपासना स्थलों, स्कूलों, अरक्षित खुले नगरों तथा ऐतिहासिक स्मारकों आदि पर बम वर्षा करना, अनावश्यक नरसंहार करना, शांतिध्वज के अधीन चलने वालों पर आक्रमण करना, वर्जित गैसों का प्रयोग करना आदि आते हैं। इनके अतिरिक्त मानवता और विश्वशांति के विरुद्ध किए जाने वाले सभी कार्य सम्मिलित हैं।

अन्तरराष्ट्रीय विधि राज्यों पर दायित्व निर्धारित करती है कि वह युद्ध अपराधियों को बंदी होने से पूर्व युद्ध नियमों के उल्लंघन में किए गए कार्यों के लिए दण्डित करें। अतः अन्तरराष्ट्रीय विधि व्यक्तियों पर दायित्व डालती है कि वे वैयक्तिक रूप से युद्ध अपराध के कृत्यों से अपने को बचावें और ऐसे कृत्य करने वालों को दण्डित करें। ऐसे अपराधियों को सामान्य न्यायालयों द्वारा दण्डित नहीं किया जाता अपितु उनके लिए विशेष रूप से इस निमित्त अधिकरणों का गठन किया जाता है।

प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व युद्ध की समाप्ति पर की जाने वाली शांति संधियों में सामान्य रूप से क्षमा संबंधी धाराएं रख दी जाती थीं। किन्तु प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर 1919 की वर्सलीज संधि के अनुच्छेद 227 में यह उपबन्धित किया गया था कि मित्र शक्तियों का यह अधिकार है कि वे युद्ध अपराध करने वाले जर्मनों को सैनिक न्यायालयों में वाद चलाकर दण्डित कर सकते हैं। इसी प्रकार जर्मन सम्राट कैसर पर अभियोग चलाया गया था। इसी प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर जर्मन और जापानी युद्ध अपराधियों पर अभियोग चलाए गए थे। इस अध्याय में जर्मन अपराधियों पर चलाए गए अभियोगों के लिए न्यूरेम्बर्ग अधिकरण के निर्णय का वर्णन किया गया है।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यूरेम्बर्ग निर्णय

(The Nuremberg Judgment)

इन्टरनेशनल मिलिट्री ट्रिब्यूनल, न्यूरेम्बर्ग

1946 सी०एम०डी० 6964 : 41 ए०जे०आई०आर०एल० पृष्ठ 172.

इस मामले में युद्ध अपराधों की विधि का निर्धारण किया गया है।

* * * *

अभी द्वितीय विश्व युद्ध चल ही रहा था कि युद्ध का विरोध करने वाली शक्तियों ने कहना प्रारम्भ कर दिया था कि जर्मन अधिकारियों तथा नाज़ी दल के सदस्यों को; जिन्होंने अत्याचारों और युद्ध-अपराधों में भाग लिया है, पकड़े जाने पर युद्ध-अपराधों के लिए अभियोजित किया जाएगा।

8 अगस्त, 1945 को लन्दन में फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, सोवियत रूस और यूनाइटेड स्टेट्स के प्रतिनिधियों ने एक करार पर हस्ताक्षर किए थे। इस करार में जर्मनी के सहयोगी राज्यों के प्रमुख युद्ध अपराधियों पर अभियोग चलाए जाने का उपबन्ध था। इस करार के साथ एक चार्टर संलग्न कर दिया गया था जिसमें इन अपराधियों का विचारण करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय सैनिक अधिकरण (इण्टरनेशनल मिलट्री ट्रायब्यूनल) की स्थापना की गई थी तथा वे अपराध विनिर्दिष्ट किए गए थे जो उस अधिकरण की अधिकारिता में होंगे। इस चार्टर के अनुच्छेद 6 द्वारा अधिकरण को निम्नलिखित अपराधों का विचारण करने के लिए प्राधिकृत किया गया था :—

"(क) **शान्ति के विरुद्ध अपराध :** अर्थात् युद्ध के लिए योजना बनाना, तैयारी करना, युद्ध आरम्भ करना या आक्रामक युद्ध करना अथवा अन्तरराष्ट्रीय संधियों, करारों या आश्वासनों का अतिक्रमण करते हुए युद्ध छेड़ना या सामान्य योजना में या ऊपर वर्णित कार्यों को पूरा करने के षड्यंत्र में भाग लेना ;

(ख) **युद्ध अपराध :** अर्थात् युद्ध की विधियों या रूढ़ियों का अतिक्रमण करना;

(ग) **मानवता के विरुद्ध अपराध :** अर्थात् हत्या करना, सर्वनाश करना, गुलाम बनाना, विवासन और युद्ध के पूर्व या दौरान सिविल नागरिकों के प्रति अमानवीय कार्य करना, अथवा राजनैतिक या धार्मिक आधारों पर अत्याचार करना !

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऊपर वर्णित अपराधों में से किसी अपराध के किए जाने के लिए सामान्य योजना या षड्यंत्र रचने या उसके निष्पादन में भाग लेने वाले नेता, आयोजक उकसाने वाले या सह-अपराधी ऐसी योजना के निष्पादन में किसी भी व्यक्ति द्वारा किए गए सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी होंगे ।

चार्टर में यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि प्रतिवादी की शासकीय स्थिति चाहे कितनी भी ऊंची हो, किन्तु वह इस उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होगा या उस स्थिति से उसका दण्ड कम नहीं हो जाएगा । उसमें स्पष्टतया यह भी स्पष्ट किया गया था कि वरिष्ठ अधिकारियों के आदेश प्रतिरक्षा का आधार नहीं होंगे किन्तु दण्ड के कम किए जाने के लिए उन पर विचार किया जा सकेगा । यह भी उपबन्धित किया गया था कि अधिकरण को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह किसी दल या संगठन को अपराधी संगठन या किसी विशिष्ठ दल के किसी सदस्य को किसी राष्ट्रीय, सैनिक या अधिभोगी न्यायालय के समक्ष विचारण के योग्य घोषित कर सके और उक्त न्यायालयों को न्यूरेम्बर्ग अधिकरण के निष्कर्ष को चुनौती देने का अधिकार नहीं होगा ।

बाइस जर्मन और नाजी नेताओं और छह संगठनों को न्यायालय के समक्ष अभ्यारोपित किया गया था । पश्चात् कथित में से केवल दो रीच कैबिनेट तथा जनरल स्टाफएवं हाई कमाण्ड को दोषमुक्त कर दिया गया था । बाइस अभियुक्त नेताओं में से तीन को दोषमुक्त कर दिया गया था, बारह को मृत्युदण्ड दिया गया । इनमें एक वह भी था जिस पर उसकी अनुपस्थिति में विचारण किया गया था, तीन को आजीवन कारावास और शेष चार को लम्बी अवधि के कारावास का दण्ड दिया गया ।

* * * *

सामान्य योजना या षड्यंत्र और आक्रामक युद्ध

प्रतिवादियों पर आस्ट्रिया, चेकोस्लवाकिया, पोलैण्ड, डेन्मार्क, नार्वे, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, लग्जेमबर्ग तथा रूस पर आक्रमण- युद्ध की योजना बनाने तथा उसे कार्यान्वित करने के आरोप लगाए गए थे । आस्ट्रिया पर की गई कार्यवाही को उचित बताते हुए प्रतिवादियों का तर्क यह था कि आस्ट्रिया पर कार्यवाही किसी प्रकार का रक्तपात किए बिना आस्ट्रिया और जर्मनी के एकाकीकरण की मांग की पूर्ति के लिए की गई थी ।

इसे अस्वीकार करते हुए अधिकरण ने कहा कि यदि उसे सत्य भी मान लिया जाए तो भी यह अतात्विक है क्योंकि तथ्यों से स्पष्टतया यह साबित हो जाता है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो पद्धतियां अपनाई गई थीं वे वैसी हीं थीं जैसी कि आक्रामक द्वारा अपनाई जाती हैं और तथ्य यह है कि जर्मनी ने इस बात के लिए सैनिक तैयारी कर ली थी कि यदि कोई प्रतिरोध किया जाता है तो वह अपनी सशस्त्र शक्ति का प्रयोग करेगा ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डेनमार्क, चेकोस्लवाकिया और पोलैण्ड के संबंध में प्रतिवादियों का तर्क यह था कि इन देशों द्वारा जर्मनी के विरुद्ध आक्रामक कार्यवाही करने पर जर्मनी को सुरक्षात्मक युद्ध के लिए बाध्य होना पड़ा। अतः वे योजनाबद्ध और आक्रमक युद्ध के दोषी नहीं थे। अधिकरण ने साक्ष्य के आधार पर यह पाया कि चेकोस्लवाकिया पर आक्रमण करने की योजना 5 नवम्बर, 1937 को ही बना ली गई थी तथा पोलैण्ड और डेन्मार्क पर आक्रामक युद्ध जर्मनी द्वारा आरम्भ किया गया था और उसे किसी भी प्रकार से सुरक्षात्मक कार्यवाही नहीं कहा जा सकता।

नार्वे पर आक्रमण के संबंध में यह कहा गया कि वह इंग्लैण्ड, फ्रांस की एलाइड योजना को विफल बनाने के लिए आत्म-सुरक्षा की दृष्टि से उन देशों के बन्दरगाहों और हवाई अड्डों को कब्जे में लेने के लिए किया गया था। अधिकरण ने उक्त तर्क को अस्वीकार करते हुए प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि उन देशों पर कब्जा इंग्लैण्ड और फ्रांस पर योजनाबद्ध आक्रमण करने के लिए किया गया था क्योंकि उनके अड्डों से सुविधापूर्वक आक्रामक कार्यवाही की जा सकती थी।

प्रतिवादियों ने यह भी तर्क दिया कि जर्मनी को ब्रियाण्ड-केल्लोग्ग पैक्ट के हस्ताक्षर कर्त्ताओं द्वारा किए गए आरक्षण के अनुसार, यह निश्चित करने का अधिकार था कि क्या सुरक्षात्मक कार्यवाही आवश्यक है और ऐसा निर्णय लेते समय उसका फैसला निश्चायक था। अधिकरण ने कहा कि दावाकृत आत्म-सुरक्षा की कार्यवाही यथाथतः आक्रामक या सुरक्षात्मक थी, यह जांच और न्यायनिर्णय द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है।

बेल्जियम, नीदरलैण्ड और लग्जेमबर्ग पर 10 मई को आक्रमण किया गया था और उसे न्यायोचित ठहराने के लिए जर्मन राजदूत द्वारा उन देशों की सरकारों को ज्ञापन भेजा गया था कि उन देशों की सहमति से ब्रिटेन और फ्रांस की सेनाएं उनके देश से गुजर कर रुहर पर आक्रमण करने की योजना बना रही हैं किन्तु इसे प्रमाणित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए गए थे। जबकि अभियोजकों का तर्क यह था कि ब्रिटेन और फ्रांस लो कण्ट्रीज़ (Loe countries) में सैनिक कार्यवाही के लिए योजना बनाने में एक दूसरे की सहायता कर रहे थे ताकि जर्मनी द्वारा आक्रमण किए जाने पर उनकी रक्षा की जा सके। अधिकरण ने यह पाया कि बेल्जियम, नीदरलैण्ड और लग्जेमबर्ग पर किए गए आक्रमण का कोई औचित्य नहीं था और वह बहुत पहले तैयार की गई नीतियों के अनुसरण में किया गया था और वह स्पष्टतया आक्रामक युद्ध था।

22 जून, 1941 को युद्ध की घोषणा किए बिना जर्मनी ने सोवियत रूस पर 23 अगस्त, 1939 की अनाक्रमण समझौते के होते हुए भी, हमला कर दिया गया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रतिवादियों का तर्क यह था कि चूंकि रूस जर्मनी पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था और उसकी तैयारी भी कर रहा था इसलिए जर्मनी द्वारा सोवियत रूस पर हमला न्यायोचित था। अधिकरण ने यह पाया कि रूस पर आक्रमण उसका आर्थिक शोषण करने के उद्देश्य से किया गया था और यह स्पष्टतया आक्रामक युद्ध था।

अन्तरराष्ट्रीय संधियों का अतिक्रमण

प्रतिवादियों पर लगाए गए दूसरे आरोप के संबंध में अधिकरण ने यह पाया कि प्रतिवादियों ने योजनाबद्ध रूप से बारह देशों के विरुद्ध अन्तरराष्ट्रीय संधियों, करारों और आश्वासनों का अतिक्रमण करते हुए आक्रामक युद्ध किए अतः वे अन्तरराष्ट्रीय संधियों, करारों और आश्वासनों का अतिक्रमण करने के दोषी हैं।

सामान्य योजना या षड्यंत्र में भाग लेना

युद्ध करने के लिए योजना बनाना और तैयार करना आवश्यक है। अभियोजकों ने प्रतिवादियों पर सामान्य योजना बनाने और षड्यंत्र रचने का आरोप लगाया है। यह षड्यंत्र नाजी पार्टी के 1919 से आरम्भ होकर 1945 के अन्त तक 25 वर्षों तक चलता रहा। अधिकरण ने प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि ये आरोप कुछ प्रतिवादियों के विरुद्ध सिद्ध होते हैं। प्रतिवादियों का तर्क यह था कि तानाशाही शासन पद्धति में सामान्य योजना बनाने का अवसर नहीं होता। युद्ध की योजना हिटलर द्वारा बनाई गई थी और उन्होंने केवल उसकी आज्ञाओं का पालन किया जो उनका कर्तव्य था। अधिकरण ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा कि यहां योजना का अर्थ सोच-विचार करने से नहीं है बल्कि सम्पादन में भाग लेने से है। अतः जिन लोगों ने इस योजना के निष्पादन में भाग लिया है, चाहे उस पर किसी ने सोच-विचार किया हो, यह दिखाकर अपने उत्तर - दायित्व से नहीं बच सकते कि वे उस व्यक्ति के निदेश पर कार्य कर रहे थे जिसने उस पर सोच-विचार किया था। जब वे उसके उद्देश्यों को जानते हुए उसको सहयोग देते हैं तब वे उसके द्वारा चलाई गई योजना में अपने को भागीदार बना लेते हैं। अतः उन्होंने हिटलर के उद्देश्यों को जानते हुए तथा उसके द्वारा आरम्भ की गई योजना में सहयोग देकर अपने को उसका अंग बनाकर स्वयं को अपराधी बना लिया।

युद्ध अपराध और मानवता के विरुद्ध अपराध

प्रतिवादियों पर सोवियत रूस के युद्ध बंदियों की हत्या करने और उनके साथ दुर्व्यवहार करने के आरोपों के संबंध में प्रतिवादियों का तर्क यह था कि चूंकि रूस ने जिनेवा अभिसमय (कन्वेन्शन) पर हस्ताक्षर नहीं किए थे इसलिए वह उसका

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पक्षकार नहीं था । अतः उसके युद्ध बंदियों के संबंध में जनेवा अभिसमय के उपबन्ध लागू नहीं किए जा सकते । अधिकरण ने प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि 15 सितम्बर, 1941 को एडमिरल केनेरिस ने सोवियत युद्धबंदियों के साथ व्यवहार के लिए बनाए गए विनियमों के विरुद्ध अभ्यापत्ति की थी। जिसमें उसने कहा था कि जनेवा अभिसमय जर्मनी और सोवियत रूस के बीच संबंधों में लागू नहीं होगा । अतः युद्ध बंदियों के साथ किए जाने वाले व्यवहार के लिए साधारण अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्त ही लागू होंगे । ये सिद्धान्त अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ से धीरे-धीरे इस आधार पर स्थापित हुए हैं कि युद्ध बंदी न तो प्रतिशोध है और न ही दण्ड है बल्कि यह मात्र संरक्षणात्मक अभिरक्षा है । जिसका एकमात्र उद्देश्य युद्धबंदियों को आगे युद्ध में भाग लेने से रोकना है । इस सिद्धान्त का विकास सभी सेनाओं द्वारा मान्य दृष्टीकोण के अनुसरण में हुआ है कि असहाय लोगों को मार डालना या क्षति पहुंचाना सैनिक परम्पराओं के प्रतिकूल है । प्रतिवादियों ने इसकी अवहेलना करते हुए एडमिरल केनेरिस की अभ्यापत्ति को ठुकरा दिया और युद्ध बंदियों के साथ न केवल दुर्व्यवहार ही किया बल्कि उन्हें मार भी डाला ।

युद्ध के नियमों के अधीन जिस देश पर अधिभोग किया जाता है उस देश की अर्थ व्यवस्था का उपयोग अधिभोग के खर्चे को पूरा करने के लिए और उसके अर्थ सामर्थ्य के अधीन किया जाना चाहिए, अर्थात् यह खर्चा उसकी वहन शक्ति से अधिक नहीं होना चाहिए । किन्तु जर्मनी ने अपने अधिभोग में लिए गए राज्यक्षेत्रों की अर्थ व्यवस्था का उपयोग उन देशों के अर्थ सामर्थ्य की उपेक्षा करके अपने उद्देश्यों और नितियों की पूर्ति के लिए युद्ध प्रयासों के लिए किया था । यथार्थतः क्रमबद्ध रूप में प्राइवेट और लोक सम्पत्ति को लूटा जो चार्टर के अनुच्छेद 6(ख) के अधीन आपराधिक कार्य है ।

अनुच्छेद 6(ख) में यह उपबन्धित है कि अधिभोग में ले लिए गए राज्यक्षेत्रों के साथ बुरा वर्ताव या दास-श्रम के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए विवासन युद्ध-अपराध होगा । अधिभोग में ले लिए गए राज्यक्षेत्रों के निवासियों से बेगार लेने संबंधी विधिक हेग अभिसमय के अनुच्छेद 52 में दी गई हैं । जर्मन अधिभोग प्राधिकारियों की नीति इस अभिसमय के निबन्धनों का घोर अतिक्रमण करती थी । उन्होंने युद्धबंदियों को मजदूरी का सामान्य स्रोत मान लिया था तथा बहुत से युद्ध बंदियों से सैनिक कार्यवाही संबंधी कार्य कराए गए थे जिनसे जनेवा अभिसमय के अनुच्छेद 31 का अतिक्रमण होता था । अतः प्रतिवादी इन अपराधों के दोषी हैं । प्रतिवादियों ने अपने बचाव के लिए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक तर्क यह प्रस्तुत किया गया कि जर्मनी अधिभोग में ले लिए गए राज्यक्षेत्र पर भूमि युद्ध संबंधी नियम लागू करने के लिए आबद्ध नहीं था क्योंकि जर्मनी ने उन क्षेत्रों को विधिवत अपना हिस्सा बना लिया था। अधिकरण ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा पराभव का सिद्धान्त वहां लागू नहीं होता जहां सेनाएं अधिभोग में ले लिए गए राज्यक्षेत्रों को उनके यथार्थ स्वामियों को वापस दिलाने का प्रयास कर रही हों। अतः पराभव का सिद्धान्त 1 सितम्बर, 1939 के बाद अधिभोग में ले लिए गए किसी भी क्षेत्र को लागू नहीं होता। इसके अतिरिक्त बोहेमिया और मोराविया के क्षेत्र रीच के साथ कभी भी नहीं जोड़े गए थे, वहां तो केवल संरक्षक शासन स्थापित किया गया था। अतः वहां अपराधों का किया जाना किसी भी प्रकार से उचित नहीं माना जा सकता।

चार्टर की वैधता

प्रतिवादियों के इस तर्क को कि अधिकरण और उसकी अधिकारिता विजेताओं द्वारा अपनी शक्ति का मनमाना प्रयोग है और उसे अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन वैध नहीं माना जा सकता, अस्वीकार करते हुए अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया--

चार्टर का सृजन उन देशों की प्रभुत्वसम्पन्न विधायी शक्ति के प्रयोग द्वारा किया गया है जिनके समक्ष जर्मन रीच ने बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण किया था और अधिभोग में ले लिए गए राज्यक्षेत्रों के लिए विधान बनाने के इन देशों के असंदिग्ध अधिकार को विश्व के सभी सभ्य देशों ने मान्यता दी है। चार्टर का सृजन विजयी राष्ट्रों द्वारा अपनी शक्ति के मनमाना प्रयोग से नहीं हुआ है बल्कि जब चार्टर का सृजन किया गया था उस समय जो अन्तरराष्ट्रीय विधि प्रचलित थी उसी का यह अभिव्यक्त रूप है। चार्टर पर हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों ने इस अधिकरण का सृजन किया, अधिकरण द्वारा लागू की जाने वाली विधियां परिभाषित कीं और विचारण के उचित संचालन के लिए विनियम बनाए। अधिकरण की अधिकारिता करार और चार्टर में निश्चित की गई है तथा उसकी अधिकारिता में आने वाले अपराध, जिनके लिए व्यक्ति उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, अनुच्छेद 6 में अधिकथित किए गए हैं। प्रतिवादियों को अधिकार दिया गया है कि वे तथ्य तथा विधि के अनुसार निष्पक्ष विचारण की मांग कर सकते हैं।

कायतर दण्ड विधि

प्रतिवादियों की ओर से यह तर्क दिया गया था कि राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय विधि का एक मूल सिद्धान्त है कि कोई भी व्यक्ति ऐसे कार्य के लिए अपराधी नहीं माना जा सकता जो उसके किए जाने के समय विधि के अधीन अपराध न हो।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सभी सभ्य राष्ट्रों ने कार्येतर दण्डात्मक विधि पर आधारित दण्ड को घृणित बताया है तथा किसी भी प्रभुत्वसम्पन्न शक्ति ने आक्रामक युद्ध को उसके किए जाने के समय अपराध नहीं बनाया था। किसी भी परिनियम में आक्रामक युद्ध को परिभाषित नहीं किया गया था और उसके किए जाने के लिए कोई दण्ड स्थिर नहीं किया गया था और ऐसे अपराधों का विचारण करने के लिए तथा अपराधियों को दण्ड देने के लिए किसी न्यायालय की स्थापना नहीं की गई थी।

इस तर्क के विरुद्ध वादियों ने यह कहा कि कार्येतर दण्डात्मक विधि का सिद्धान्त प्रभुत्वसम्पन्न शक्ति को सीमित नहीं करता बल्कि वह न्याय का साधारण सिद्धान्त है। यह कहना कि संधियों और आश्वासनों की अवज्ञा करते हुए पड़ौसी देशों पर बिना चेतावनी के आक्रमण करने वालों को दण्ड देना अन्यायपूर्ण है, स्पष्टतया असत्य है, क्योंकि आक्रामक को यह मालूम होना चाहिए कि वह गलत कार्य कर रहा था अतः उसे दण्डित करना अन्यायपूर्ण नहीं है। ऐसा गलत कार्य करने वालों को बिना दण्ड के छोड़ देना ही अन्यायपूर्ण होगा।

अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादियों को, जो जर्मन सरकार में महत्वपूर्ण स्थान धारण करते थे, अवश्य ज्ञान होना चाहिए था कि जर्मनी द्वारा हस्ताक्षरित संधियों में अन्तरराष्ट्रीय विवादों के हल के लिए युद्ध का आश्रय लेना विधिविरुद्ध घोषित किया गया था। 27 अगस्त, 1928 के केल्लोग्ग-ब्रियाण्ड पैक्ट में, जिसे जर्मनी, इटली तथा जापान सहित 63 देशों ने आबद्धकर रूप में स्वीकार किया था, में अन्तरराष्ट्रीय विवादों को हल करने के लिए युद्ध का आश्रय लेना अस्वीकार किया गया था इसमें यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि कोई राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय नीति के रूप में युद्ध करता है तो वह पैक्ट को भंग करता है। इस दृष्टिकोण से कार्येतर विधि का सिद्धान्त वर्तमान तथ्यों पर लागू नहीं होता और प्रतिवादियों ने वह अपराध किया है जो वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय विधि में अपराध माना गया है।

चार्टर के अनुच्छेद 6 (ख) में परिभाषित अपराध अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन युद्ध अपराधों के रूप में पहले से ही मान्यता प्राप्त थे। वे 1907 के हेग अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 46, 50, 52 और 56 तथा 1929 के जिनेवा अभिसमय (कन्वेन्शन) के अनुच्छेद 3, 4, 46 और 51 के अन्तर्गत आते थे। इन उपबन्धों का अतिक्रमण करना अपराध माना जाता था और उसके लिए दोषी व्यक्तियों को दण्ड दिया जाता था, यह बात अब अच्छी प्रकार स्थापित हो चुकी है और इस पर कोई विवाद नहीं है।

किन्तु यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि इस मामले में हेग अभिसमय अनुच्छेद 2 में 'साधारण रूप से भाग लेना' खण्ड के कारण लागू नहीं होता। हाल ही

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के युद्ध में अनेक युद्धरत देश इस अभिसमय के पक्षकार नहीं थे। किन्तु यह तर्क मान्य नहीं हो सकता क्योंकि इन अभिसमयों में स्वीकृत सिद्धान्तों को 1939 तक सभी राष्ट्रों द्वारा युद्ध की विधि और रूढ़ियों के रूप में स्वीकार किया जा चुका था और अनुच्छेद 6(ख) में उन्हीं के प्रति निर्देश किया गया है।

अधिकरण की बैधता

प्रतिवादियों के इस तर्क के संबंध में कि केल्लोग-ब्रियाण्ड पैक्ट में यह अभिनियमित नहीं किया गया है कि ऐसे युद्ध अपराध होंगे अथवा पैक्ट के अधीन ऐसे कोई न्यायालय स्थापित नहीं किए गए हैं जो उन व्यक्तियों का विचारण करेंगे जो ऐसे युद्ध करते हैं। और यही बात हेग अभिसमय के संबंध में भी सही है। अधिकरण ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा कि यह कुछ सीमा तक हेग अभिसमय के संबंध में सही हो सकता है किन्तु 1907 के बाद ऐसे युद्ध निश्चित रूप से अपराध और युद्ध की विधियों के विरुद्ध अपराधों के रूप में दण्डनीय माने जाने लगे थे। यद्यपि हेग अभिसमय में इस प्रकार के व्यवहारों को आपराधिक नहीं कहा गया है और न ही उनके लिए कोई दण्ड विहित किया गया है और न ही उन पर विचारण करने और दण्ड देने के लिए किसी न्यायालय का वर्णन किया गया है। लेकिन अनेक सैनिक अधिकरणों ने इस अभिसमय में अधिकथित स्थल युद्ध संबंधी नियमों का अतिक्रमण करने वाले दोषियों का विचारण किया है और उन्हें दण्डित किया है। 1923 की पारस्परिक सहायता संधि (ट्रीटी ऑफ म्यूचुअल असिस्टेन्स) के प्रारूप के अनुच्छेद 1 में आक्रामक युद्ध को अन्तरराष्ट्रीय अपराध घोषित किया गया था और 1924 के जनेवा प्रोटोकॉल (प्रोटोकॉल फॉर दि पैसिफिक सेटेलमेण्ट आफ इण्टरनेशनल डिस्प्यूट्स) की उद्देशिका में यह घोषित किया गया था कि आक्रामक युद्ध अन्तरराष्ट्रीय अपराध है। इन साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आक्रामक युद्ध को पहले ही अन्तरराष्ट्रीय अपराध स्वीकार किया जा चुका था।

राज्यकृत्य के लिए आरक्षण

प्रतिवादियों ने अपने बचाव में एक तर्क यह प्रस्तुत किया कि अन्तरराष्ट्रीय विधि प्रभुत्व सम्पन्न राज्यों के कार्यों से संबंधित है और उसमें व्यष्टियों को दण्ड देने के लिए कोई उपबन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त राज्य जहां प्रश्नगत कार्य राज्य कृत है वहां जो व्यक्ति उसे कार्यान्वित करते हैं वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होते बल्कि उन्हें राज्य के प्रभुत्व के सिद्धान्त के आधार पर संरक्षित किया जाता है। अधिकरण ने इन तर्कों को अस्वीकार करते हुए कहा कि व्यष्टियों को अन्तरराष्ट्रीय विधि के अतिक्रमणों के लिए दण्ड दिया जा सकता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तरराष्ट्रीय विधि के विरुद्ध अपराध व्यक्तियों द्वारा न कि राज्य जैसी अमूर्त सत्ताओं द्वारा किए जाते हैं और ऐसे अपराध करने वाले व्यक्तियों को दण्ड देकर ही अन्तरराष्ट्रीय विधि के उपबन्धों को प्रवर्तित किया जा सकता है। चार्टर के अनुच्छेद 7 में स्पष्टतया यह कहा गया है कि प्रतिवादियों की शासकीय स्थिति के, चाहे वह राज्य के प्रधान या सरकारी विभागों में उत्तरदायी अधिकारियों के रूप में हो, संबंध में यह नहीं समझा जाएगा कि वह उन्हें उत्तरदायित्व से मुक्त करती है या उससे दण्ड कम हो जाता है।

इसके विपरीत चार्टर का सार ही यही है कि व्यष्टियों के अन्तरराष्ट्रीय कर्त्तव्य होते हैं जो व्यष्टि राज्य द्वारा अधिरोपित आज्ञाकारिता की राष्ट्रीय बाध्यताओं से श्रेष्ठतर होते हैं। अतः यदि कोई राज्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन अपनी सक्षमता के बाहर कार्यवाही का प्राधिकार प्रदान करता है और कोई व्यक्ति उस प्राधिकार के अधीन कार्य कर युद्ध की विधियों का अतिक्रमण करता है तो वह अन्तरराष्ट्रीय विधि की बाध्यताओं से उन्मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

उच्चादेश पालन

प्रतिवादियों ने यह भी तर्क प्रस्तुत किया था कि उन्होंने जो कुछ भी किया था वह हिटलर के आदेशों के अधीन किया था। अतः वे उन कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं हैं जो उन्होंने उन आदेशों के पालन करते हुए किया। इस तर्क को अस्वीकार करते हुए अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि चार्टर के अनुच्छेद 8 में विनिर्दिष्टतया यह उपबंधित है कि ऐसी प्रतिरक्षा को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। इस चार्टर के उपबन्ध सभी राष्ट्रों की विधि के अनुरूप हैं। युद्ध की अन्तरराष्ट्रीय विधि का अतिक्रमण करते हुए किसी सैनिक को मार डालने या यंत्रणा देने का आदेश दिया जाता है और वह उसका पालन करता है तो उसकी इस निर्दयता के लिए इस तर्क को स्वीकार नहीं किया जाएगा कि उसने यह कार्य उच्चादेश का अनुपालन करते हुए किया था। यद्यपि, जैसा कि चार्टर में उपबन्धित है, इस प्रकार के आदेश को दण्ड कम करने के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। उत्तरदायित्व निर्धारण के लिए सही परख आदेश का होना नहीं है बल्कि यह है क्या आदेश का पालन करने वाले के समक्ष नैतिक विकल्प का चुनाव करना सम्भव था।

प्रतिवादियों ने सामान्य योजना और षड्यंत्र में भाग लेने के संबंध में यह तर्क दिया कि तानाशाही शासन पद्धति में सामान्य योजना नहीं बन सकती। अधिकरण ने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया और प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादियों के विरुद्ध जो आरोप लगाया गया

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह स्थापित हो गया है। यहां योजना का अर्थ उस पर सोच-विचार करने से नहीं है बल्कि उसके निष्पादन में भाग लेने से है। जो उस योजना का निष्पादन करते हैं वे अपने उत्तरदायित्व से यह कह कर नहीं बच सकते कि वे उस व्यक्ति के निदेश पर कार्य कर रहे थे जिसने वह योजना बनाई थी। जब वे उसके उद्देश्यों को जानते हुए उसको सहयोग देते हैं तब वे उसके द्वारा चलाई गई योजना में अपने को भागीदार बना लेते हैं। अतः प्रतिवादी उसके लिए उत्तरदायी हैं। हिटलर के अपराधी इरादों को पूरा करने में सहयोग देने वालों को क्षमा नहीं किया जा सकता क्योंकि सहयोगी स्वयं भी अपराधी थे। जब उन्होंने तानाशाह के उद्देश्यों को जानते हुए उसके द्वारा प्रारम्भ की गई योजना में सहयोग देकर अपने को उसका अंग बना लिया तो वे स्वयं भी अपराधी बन गए।

* * * *

टिप्पणी:—इस मामले में न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है:—

1. आक्रामक युद्ध अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के विरुद्ध अपराध है। युद्ध की योजना बनाने, उसकी तैयारी करने, प्रेरणा देने तथा ऐसे युद्ध में भाग लेने वाले सभी व्यक्ति दण्ड के भागी हैं। चाहे यह कार्य अपराधियों ने उच्चादेश के अधीन किया हो। इससे उनका अपराध समाप्त नहीं हो जाता।
2. राज्य एक अमूर्त अस्तित्व है अतः राज्य कृत्यों को कार्यान्वित करने वाला व्यक्ति उसके लिए उत्तरदायी है। अन्तरराष्ट्रीय विधि के विरुद्ध अपराधा व्यक्तियों द्वारा ही किए जाते हैं और उन्हें दण्डित करके ही अन्तरराष्ट्रीय विधि को प्रवर्तित किया जा सकता है। चार्टर में व्यक्तियों के अन्तरराष्ट्रीय विधि का विषय निर्धारण किया गया है और यदि राज्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन अपनी सामर्थ्य से बाहर जाकर कार्यवाही करना प्राधिकृत करत है और कोई व्यक्ति उस प्राधिकार के अधीन कार्य कर युद्ध के विधियों का अतिक्रमण करता है तो वह अन्तरराष्ट्रीय विधि की बाध्यताओं से मुक्त नहीं हो सकता।

* * * *

इस निर्णय में प्रतिपादित सिद्धान्तों का पोषण कर संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 11 दिसम्बर, 1946 के प्रस्ताव संख्या 95(1) में उन्हें अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के रूप में मान्यता प्रदान की है। उन्हें अन्तरराष्ट्रीय विधि आयोग ने ड्राफ्ट कोड ऑफ ऑफेनसिज अगेंस्ट मैनकाइण्ड 1951 में अन्तर्निहित कर स्वीकृति प्रदान की है। [45 ए० जे० आई० एल० सप्लीमेण्ट 103, 123-132 (1951)]

प्रस्तुत मामले में अधिकथित सिद्धान्त को **'इच मैन बनाम अटर्नी जनरल ऑफ इजराइल'**, [(1962) एस० सी० 136 आई० एल० आर० 277] में माना गया है कि युद्ध अपराध और नरसंहार ऐसे अपराध हैं जिन पर सभी देशों को सार्वभौमिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार 'यू० एस० बनाम ब्रिफिन', (1968 सी० एम० 41), में वियतकांग के सदस्यों की हत्या के अपराध में उच्च अधिकारी के आदेश पर कार्य करने के तर्क को अस्वीकार कर दिया गया था। किन्तु 1974 में वियतनाम के 'माई लाई काण्ड' के नरसंहार के अपराधी लेफ्टिनेण्ट कैली के मामले में दण्ड को कम किए जाने के लिए इसे स्वीकार किया गया था।

युद्ध-अपराध संबंधी महत्वपूर्ण सामग्री—

टेलर, न्यूरेम्बर्ग ट्रायल्स : वार क्राइम्स एण्ड इण्टरनेशनल लॉ इण्टरनेशनल कन्सोलिडेशन नं० 450 (1949), राइट, वार क्राइम्स अण्डर इण्टरनेशनल लॉ; 62 लॉ क्वार्टरली रिव्यू 40 (1946); स्टिमशन; दि न्यूरेम्बर्ग ट्रायल्स: लैण्डमार्क इन लॉ; 25 फॉरेन अफेयर्स 183 (1947); जी फिन्च, दि न्यूरेम्बर्ग ट्रायल्स एण्ड इण्टरनेशनल लॉ, 41 ए० जे० आई० एल० 20 (1947); ग्लूक, दि न्यूरेम्बर्ग ट्रायल्स एण्ड एग्रसिव वार, 59 हार्वर्ड लॉ रिव्यू 396 (1946); सचिक वार क्रिमनल्स एण्ड दि लॉ ऑफ यूनाइटेड नेशन्स 7 यूनिवर्सिटी ऑफ टोरण्टो लॉ जर्नल 27 (1947)।

—: ० :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

15. तटस्थता

किसी राज्य द्वारा दो या अधिक युद्धमान देशों के बीच व्यवहार्य निष्पक्षता की प्रवृत्ति को तटस्थता कहते हैं, अर्थात् वह राज्य युद्धमान देशों का न तो समर्थन करता है और न विरोध ही । अन्तरराष्ट्रीय विधि में इसे विशेष प्रकृति की विधिक स्थिति माना जाता है, इससे अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन उस राज्य को कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते हैं और कुछ बाध्यताएं अधिरोपित हो जाती हैं । इसके लिए यह भी आवश्यक है कि तटस्थ राज्य की इस स्थिति को युद्धमान देश मान्यता प्रदान करें । इस प्रकार तटस्थता के निम्नलिखित तीन आवश्यक तत्व हैं:—

1. तटस्थता का दृष्टिकोण ।
2. तटस्थता का युद्धमान देशों द्वारा स्वीकार किया जाना, तथा
3. तटस्थता से अधिकारों और बाध्यताओं का सृजन ।

यह सिद्धान्त केवल युद्धकाल में लागू होता है । इसके लिए किसी घोषणा की आवश्यकता नहीं होती ।

तटस्थता सम्बन्धी नियम, 1856 की पैरिस घोषणा तथा 1907 के हेग अभिसमय में मिलते हैं । इनमें उल्लिखित कुछ मूल नियम इस प्रकार हैं :—

1. तटस्थ देश को किसी युद्धमान देश की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता नहीं करनी चाहिए उसे दोनों देशों के प्रति निष्पक्ष रहना चाहिए । किन्तु युद्धमान देश के प्रति सहानुभूति रखने, उसे मानवीय कार्यों, यथा आहतों की सेवा सुश्रुषा, दवाइयां या डाक्टरी सहायता प्रदान करने से तटस्थता का उल्लंघन नहीं होता । (यदि किसी तटस्थ देश द्वारा युद्धमान देशों की हितकर सहायता की जाती है तो क्या उससे तटस्थता का अतिक्रमण होता है, इस प्रश्न पर विम्बलडन के मामले में विचार किया गया है) ।

2. तटस्थ देश का यह कर्त्तव्य है कि वह किसी युद्धमान देश की सेनाओं को अपने प्रदेश से गुजरने न दे या सैनिक कार्यवाही का अड्डा न बनने दे । (इस प्रश्न पर 'अल्बामा' और 'नैलीला' के मामलों में विचार किया गया है) ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

3. तटस्थ देश युद्धमान देशों द्वारा उसकी वाणिज्यिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता पर लगाए गए निर्बन्धनों को स्वीकार करे यथा पोतों के परिदर्शन और तलाश के अधिकार को तथा विनिषिद्ध माल वाहक पोतों के अधिग्रहण को स्वीकार करे। (इस प्रश्न पर 'मारिया' तथा 'क्लिम' के मामलों में विचार किया गया है)।

4. यदि उसके प्रदेश में युद्धमान देश का पोत लाया जाता है तो पोत पर स्थित व्यक्तियों को मुक्त कर दे तथा पोत को उसके स्वामी को वापस कर दे। (इस प्रश्न पर 'अप्पाम' के मामले में विचार किया गया है)।

5. उसकी त्रुटि या दुर्भावना से युद्धमान देश को हुई क्षति की पूर्ति करे। (इस प्रश्न पर 'अल्बामा' के मामले में विचार किया गया है)।

उपरोक्त कर्त्तव्यों के आधार पर तटस्थ देशों के कुछ अधिकार भी स्वीकार किए गए हैं जो इस प्रकार हैं--

(i) तटस्थ राज्य के राज्य क्षेत्र में न तो युद्ध की कार्यवाहियां की जाए और न उनकी तैयारी ही की जाए। [इसमें से प्रथम अधिकार के सम्बन्ध में 'विलियम पीर' नामक ब्रिटिश वाणिज्य पोत का मामला है। उसे मैक्सिको के तटस्थ जल में अमरीका द्वारा पकड़ा गया था। मध्यस्थ ने उसके स्वामी के दावे को स्वीकार करते हुए कहा कि यद्यपि मैक्सिको वाद का पक्षकार नहीं है किन्तु पोत का स्वामी तटस्थता के अधिकार के हनन का तर्क प्रस्तुत कर सकता है। (मूर— इण्टरनेशनल आरब्रिट्रेशन, भाग, 2, पृष्ठ 3948) 'जनरल आर्मस्ट्रांग' के मामले में अमरीका ने तटस्थ राज्य पुर्तगाल से क्षतिपूर्ति की मांग की थी। उसका कथन था कि जब जनरल आर्मस्ट्रांग पुर्तगाल के तटीय जल में था उस पर ब्रिटिश पोत द्वारा आक्रमण किया और पुर्तगाल ने उसे रोकने का कोई प्रयास नहीं किया। इस तर्क को अस्वीकार करते हुए मध्यस्थ ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह कार्य पुर्तगाल के प्रभुत्व के अवमान में तथा उसके प्रभुत्व के अधिकार के उल्लंघन में किया गया। चूंकि उसके अधिकारियों से न तो सहायता की मांग की गई और न उसे संरक्षण के लिए चेतावनी ही दी गई। अतः वह उत्तरदायी नहीं है। (मूर-डाईजेस्ट, भाग 2, पृष्ठ 1096) जहां तक दूसरे सिद्धान्त का प्रश्न है उस पर 'अल्बामा' के मामले में विचार किया गया है]।

(ii) तटस्थता की सुरक्षा के नियमों का युद्धमान देशों द्वारा पालन किया जाए। (इसे हेग के 1907 के पांचवे तथा तेरहवें अभिसमयों में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वीकार किया गया है। इस प्रश्न पर न्यूरेम्बर्ग निर्णय में विचार किया गया है)।

(iii) यदि तटस्थ देश की तटस्थता का अतिक्रमण किया जाता है तो उसे अतिक्रमण करने वाले से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार है। किन्तु यह सिद्धान्त निश्चित रूप से स्थापित नहीं हो पाया है।

निम्नलिखित तीन स्थितियों में तटस्थता समाप्त हो जाती है—

(i) युद्ध की समाप्ति पर,

(ii) तटस्थ देश द्वारा किसी युद्धमान देश की ओर से पक्षकार के रूप में युद्ध आरम्भ कर देने पर, या

(iii) किसी युद्धमान देश द्वारा तटस्थ देश के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करने देने पर।

संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माण के बाद तटस्थता का वह स्वरूप नहीं रह गया है जो उससे पहले था क्योंकि साम्या के उपबन्ध सभी राज्यों पर कुछ दायित्व डालते हैं जो तटस्थता के सिद्धान्त के प्रतिकूल हैं।

———

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दि किम
(The Kim)

(1915 प्रोबेट डिवीजन पृष्ठ 215)

यह मामला सम्बद्ध यात्रा सिद्धान्त के सम्बन्ध में है।

* * * *

किम नार्वे के तीन अन्य जलयानों के साथ न्यूयार्क से कोपनहेगन जा रहा था। इनमें से किम पर खाद्य सामग्री, सुअर की चर्बी (लार्ड), रबड़ और चमड़ा लदे हुए थे। तीनों अन्य जलयानों के साथ किम जलयान को समुद्र यात्रा के दौरान ब्रिटिश सैनिक पोत द्वारा पकड़ लिया गया और उस पर लदा हुआ माल इस आधार पर अभिगृहीत कर लिया गया कि वह सशर्त विनिषिद्ध माल था। ये जलयान एक अमरीकन कॉरपोरेशन द्वारा किराए पर लिए गए थे जिसका अध्यक्ष जर्मन था तथा यूरोपीय एजेण्ट भी जर्मन था।

न्यायालय के समक्ष मामला केवल अभिगृहीत माल के सम्बन्ध में लाया गया कि अभिगृहीत माल विनिषिद्ध माल नहीं था तथा और वह तटस्थ जलयानों द्वारा तटस्थ देशों को और तटस्थ पत्तन को ले जाया जा रहा था अतः उसे अभिगृहीत नहीं किया जा सकता था।

युद्ध की स्थिति होते हुए भी तटस्थ पोत अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार जर्मनी के पत्तनों से व्यापार करने के लिए स्वतन्त्र थे और वे विनिषिद्ध और सशर्त विनिषिद्ध माल भी ले जा सकते थे किन्तु वह ऐसा युद्धमान या सहयोगी राज्यों द्वारा पकड़े जाने के जोखिम पर कर सकते थे। चूंकि नार्थ सी (उत्तरी समुद्र) में तटस्थ देशों द्वारा जर्मन पत्तनों से व्यापार करना कठिन और असम्भव कर दिया गया था इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि जर्मनी को जाने वाला सामान स्कैन्डेनेवियन पत्तनों में ले जाया जाता और वहां से अन्य मार्गों द्वारा जर्मनी पहुंचा दिया जाता। अतः यह देखना आवश्यक है कि यह व्यापार यथार्थ या वास्तविक अथवा अपदेशी या दृश्यमान रूप से डेन्मार्क से किया जा रहा है।

सन् 1911-1913 के दौरान सभी स्रोतों से डेन्मार्क में आयात की गई सुअर की चर्बी (लार्ड) की औसतन वार्षिक मात्रा 14,59,000 पौंड थी जबकि केवल इन चार पोतों में कोपनहेगन के लिए लादी गई सुअर की चर्बी (लार्ड) की मात्रा 1,92,52,000 पौंड थी। इन मात्राओं की तुलना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक मास से कम समय के भीतर इन पोतों द्वारा डेन्मार्क में इन तीनों वर्षों में आयात की गई औसतन वार्षिक मात्रा से 13 गुना अधिक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मात्रा में सुअर की चर्बी (लार्ड) लाई गई है। अगस्त-दिसम्बर, 1913 में अमरीका से जर्मनी के लिए सुअर की चर्बी (लॉर्ड) का निर्यात 68,664,475 पौंड थी। जो 1914 में इन्हीं पांच महीनों में कम होकर 23,000 पौंड हो गया था। जबकि अमरीका से स्कैण्डेनेवियन देशों को निर्यात 2,125,519 पौंड से बढ़कर 59,694,447 पौंड हो गया था। इन तथ्यों से निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि इन चारों पोतों में लदा हुआ अधिकांश या सम्पूर्ण सुअर की चर्बी (लार्ड) जर्मन भेजे जाने के उद्देश्य से लाई गई थी।

तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालने से पूर्व उन विधिक सिद्धान्तोंका अन्वेषण करना और उन्हें अभिनिश्चित करना सुविधाजनक होगा जो सन् 1914 में विद्यमान परिस्थितियों की दृष्टि से अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार लागू किए जाने हैं।

इस सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय विधि के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्त विचारार्थ सामने आते हैं, इनमें से एक 'निर्विघ्न सम्बद्ध यात्रा (कान्टिन्युअस वॉयेज) या निर्विघ्न परिवहन (ट्रान्सपोरटेशन) से सम्बद्ध नियम में अन्तर्विष्ट है और दूसरा क्रमशः सशर्त और पूर्ण विनिषिद्ध माल के शत्रु देश के गन्तव्य स्थान तक पहुंचने से सम्बन्धित है।

विनिषिद्ध माल की विधि और निर्विघ्न जलयात्रा के सिद्धान्त का आधार युद्धमान देश का वह अधिकार है जिसके द्वारा वह शत्रु देश में सैनिकों के उपयोग के लिए माल को न पहुंचने दे।

तटस्थ व्यापारी, अपने हितों के लिए, जहां तक सम्भव होता है, इस अधिकार के प्रयोग किए जाने के लिए परिसीमाएं बांध देते हैं। तटस्थ और युद्धमान देशों के इन परस्पर विरोधी हितों के विनिषिद्ध माल की विधि और निर्विघ्न सम्बद्ध यात्रा से सम्बन्धित प्रतिवादों के कारण हैं।

इसके समझौते का प्रयास लन्दन सम्मेलन में किया गया था जो लन्दन घोषणा के रूप में सामने आया। निर्विघ्न सम्बद्ध यात्रा या निर्विघ्न परिवहन के सिद्धान्त को पूर्ण विनिषिद्ध माल के सम्बन्ध में सम्मेलन में पूर्णतया स्वीकृत किया गया और स्पष्टतया यह घोषणा की गई कि यह सिद्धान्त उन सभी स्थितियों में लागू होगा जहां माल का गन्तव्य स्थान शत्रु के क्षेत्र में स्थित है चाहे उस माल की ढुलाई परोक्ष रूप से एक पोत से दूसरे पोत द्वारा या बाद में स्थल मार्ग से हुई हो।

जहां तक सशर्त विनिषिद्ध माल का सम्बन्ध है यह समझौता करने का प्रयास किया गया था कि जहां शत्रु की कोई अपनी पत्तन न हो वहां के सिवाय निर्विघ्न सम्बद्ध यात्रा का सिद्धान्त लागू होगा। सशर्त विनिषिद्ध माल को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस सिद्धान्त के लागू न किए जाने का कोई तर्क संगत कारण दिखाई नहीं देता है। यदि यह सत्य है कि युद्धमान देश को शत्रु देशों में भेजे जा रहे पूर्ण विनिषिद्ध माल को पकड़ने का अधिकार है तो सशर्त विनिषिद्ध माल को पकड़ने का अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए जो यद्यपि पूर्ण विनिषिद्ध माल नहीं होता तथापि उसका गन्तव्य स्थान शत्रु सरकार या उसके सशस्त्र बल होने के कारण वह पूर्ण विनिषिद्ध माल हो जाता है। और उसके साथ जल या स्थल मार्ग द्वारा परिवहन की आज जो सुविधाएं उपलब्ध हैं उनसे सशर्त विनिषिद्ध माल पकड़ने का युद्धमान देश के अधिकार का महत्व अवास्तविक हो जाएगा यदि तटस्थ पत्तन को परेषित किया जाता हो माल के संरक्षण के लिए प्राप्त है। यदि आसानी से उपलब्ध परिवहन के इस समय में निर्विघ्न जल यात्रा या निर्विघ्न परिवहन के सिद्धान्त का कोई महत्व है तो उसके अन्तर्गत न केवल समुद्र मार्ग से एक पत्तन से दूसरी पत्तन तक की यात्रा बल्कि यथार्थ गन्तव्य स्थान स्थल मार्ग द्वारा माल का परिवहन भी आना चाहिए।

निर्विघ्न सम्बद्ध यात्रा या परिवहन का सिद्धान्त जल और स्थल दोनों तरह के वहन के सम्बन्ध में वर्तमान युद्ध के प्रारम्भ होने से ही राष्ट्रों की विधि का अंग बन गया है। इसको पुष्टी मान्यता प्राप्त विधिक निर्णयों के सिद्धान्तों और आधुनिक विधिवेत्ताओं के मतों तथा आधुनिक समुद्री युद्ध में राष्ट्रों की प्रथा से होती है।

इस मामले में माल के प्राथमिक परेषण से ही न्यायालय अपना दृष्टिकोण सीमित नहीं कर सकता कि माल का गन्तव्य स्थान तटस्थ पत्तन कोपनहेगन था। न्यायालय यह अभिनिश्चित करने का हकदार है कि क्या तटस्थ गन्तव्य स्थान केवल दृश्यमान था और यदि ऐसा था तो वास्तविक गन्तव्य स्थान क्या था।

स्थोरा के वास्तविक गन्तव्य स्थान जानने के प्रमुख परीक्षणों में से एक परीक्षण यह है कि क्या तटस्थ पत्तन को उसका परेषण देश के सामान्य स्टॉक के लिए आयात के प्रयोजनार्थ परिदान करने के लिए किया गया था ?

तटस्थ पत्तन पर यथार्थ या दृश्यमान गन्तव्य स्थान अवधारित करने के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण परिस्थिति है किसी परेषिती (माल पाने वाले) का नाम बताए बिना 'आदेश या समनुदेशन पर' माल परेषित करना है। वर्तमान समय में 'आदेश पर' परेषण सामान्य पद्धति है किन्तु यदि युद्ध प्रारम्भ होने के बाद माल भेजने वाले विनिषिद्ध प्रकृति का माल परेषिती (माल पाने वाले) का नाम बताए बिना, अपने आदेश पर परेषित करते हैं तो यह इस प्रश्न पर विचार करते समय एक संदेहास्पद परिस्थिति हो सकती है कि क्या माल वस्तुतः तटस्थ

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गन्तव्य स्थान के लिए तथा उस देश के सामान्य स्टाक का अंग बनाने के आशय से भेजा गया था अथवा उसका अन्तिम गन्तव्य स्थान कोई और था। निस्संदेह यह परीक्षण निश्चायक है। युद्ध काल में इस प्रकार के परेषण से उत्पन्न सन्देह को माल भेजने वाले साक्ष्य द्वारा दूर कर सकते हैं।

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि माल डेनमार्क में उपभोग या उपयोग किए जाने के लिए नहीं भेजा गया था और न ही वह विक्रय द्वारा या अन्यथा उस देश के सामान्य स्टॉक में समाविष्ट किए जाने के आशय से भेजा गया था तथा कोपनहेगन माल के परिदान का यथार्थ वास्तविक स्थान नहीं था। पकड़े जाने के समय माल जर्मनी जा रहा था और वही उसका वास्तविक और यथार्थ गन्तव्य स्थान था।

* * * *

इस मामले में एक अन्य प्रश्न यह उठता है कि क्या वह माल, जिसके बारे में यह विनिश्चय किया गया है कि वह जर्मनी जा रहा था, कहीं जर्मन सरकार या उसके विभागों या सेनाओं द्वारा सेना के उपयोग के लिए या युद्ध सदृश्य संक्रियाओं में वस्तुतः संलग्न अन्य व्यक्तियों के उपयोग के लिए तो नहीं भेजा जा रहा अथवा परिस्थितियों के अनुसार यह उपधारणा तो नहीं की जा सकती कि वह इन्हीं प्रयोजनों के लिए भेजा रहा था।

परिषद् के 29 अक्तूबर के आदेश का प्रभाव यह है कि 'लन्दन घोषणा' (डीकलेरेशन ऑफ लण्डन) के अनुच्छेद 34 में अधिकथित उपधारणाओं के अतिरिक्त अनुच्छेद 33 द्वारा यथा परिभाषित शत्रु देश में गन्तव्य स्थान की उपधारणा के बारे में यह मान लिया जाएगा कि वह विद्यमान है। यदि वह माल शत्रु राज्य या उसके अभिकर्ता के लिए या शत्रु के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति के लिए परेषित किया जाता है या वह माल 'आदेश' पर परेषित किया जाता है अथवा पोत के कागजपत्रों से यह पता नहीं चलता कि परेषिती कौन है। किन्तु यदि पोत के कागजपत्रों से यह पता नहीं चलता कि परेषित कौन है तो यदि पोत के स्वामी यह साबित कर दे कि गन्तव्य स्थान अहानिकर है तो ऐसी उपधारणा नहीं की जा सकती।

'किम' पर माल भेजने वालों द्वारा जितने माल का दावा किया गया है वह सब उनके द्वारा अपने आदेश पर या अपने अभिकर्ताओं के आदेश पर न कि किसी स्वतन्त्र परेषिती को परेषित किया गया था और वे सभी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि माल का गन्तव्य अहानिकर था। अतः 'किम' पर माल भेजने वालों द्वारा जितने माल का दावा किया गया है वह माल विधिपूर्ण प्राइज के रूप में अधिहरणीय था।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह विनिश्चय कर लेने के बाद कि यद्यपि माल का दृश्यमान गन्तव्य स्थान कोपनहेगन था तथापि उसका वास्तविक गन्तव्य स्थान जर्मनी था, प्रश्न यह रह जाता है कि क्या वह माल जर्मन सरकार या उसके सैनिक बलों के उपयोग के लिए परेषित किया गया था तो तत्सम्बन्धी विधि क्या है ?

प्रथमतः 'किम' पर लदा हुआ माल सैनिक प्रयोजन के लिए तथा युद्ध सदृश्य प्रयोजनों अर्थात् विस्फोटकों के उत्पादन के लिए था तथा उसका गन्तव्य भी समीपवर्ती जर्मन पत्तन था। इसके अतिरिक्त युद्ध के दौरान जर्मनी में सशस्त्र बलों और सिविल जनसंख्या की स्थिति तथा सशस्त्र बलों के लिए माल प्राप्त करने के लिए अपनाए गए तरीकों को ध्यान में रखने से स्पष्ट है कि अधिकांश माल सैनिकों के उपयोग के लिए था। अतः उस माल का यथार्थ या वास्तविक गन्तव्य जर्मनी ही था।

युद्धमान देशों का विनिषिद्ध माल भेजना अपराध नहीं है। माल विधिसम्मत रूप से भेजा जा सकता है किन्तु उसके पकड़े जाने का भय रहता है तथा वह वैध प्राइज के रूप में अधिहरणीय है।

अतः साबित किए गए तथ्यों से स्पष्टतया यह निष्कर्ष निकलता है कि माल भेजने वालों द्वारा दावाकृत माल, पकड़े जाने के समय, डेन्मार्क में उपभोग या वास्तविक विक्रय या अन्यथा सामान्य स्टॉक में समाविष्ट किए जाने के लिए नहीं जा रहा था किन्तु इसके विपरीत वह न केवल जर्मनी जा रहा था बल्कि जर्मन सरकार और उसकी सेना के यथार्थ और अन्तिम उपयोग के लिए जा रहा था। अतः माल का पकड़ा जाना और विधिसम्मत प्राइज के रूप में अधिहरण न्यायानुमत है।

* * * *

टिप्पणी:—निर्विघ्न सम्बद्ध यात्रा के सिद्धान्त के अन्तर्गत तटस्थ पोत सशर्त और पूर्ण विनिषिद्ध माल को प्रथमतः किसी तटस्थ पत्तन के लिए ले जाता है या प्रकट रूप से अपना गन्तव्य स्थान तटस्थ पत्तन रखता है और वहां माल उतार कर या कर आदि का संदाय करके अपने वास्तविक गन्तव्य स्थान अर्थात् युद्धमान देश के पत्तन के लिए प्रस्थान करता है। इसमें पोत की यात्रा का उद्देश यथार्थतः युद्धमान देश के पत्तन पर माल पहुंचाना होता है किन्तु विनिषिद्ध माल के अधिहरण से बचने के लिए या नाकाबन्दी से बचने के लिए वह अपनी यात्रा को दो भागों में विभक्त करके धोखा देने का प्रयास करता है। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जो माल शत्रु पत्तन पर ले जाए जाने पर विनिषिद्ध हो जाता हैं उसे विनिषिद्ध माल के रूप में बीच में ही रोका जा सकता है चाहे प्रकटतः उसका गन्तव्य स्थान तटस्थ पत्तन ही क्यों न हो यदि यथार्थतः या वास्तविक रूप से वह माल उस तटस्थ पत्तन से जल या स्थलमार्ग किसी शत्रु प्रदेश में ले जाया जाना हो।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्विघ्न जलयात्रा का सिद्धान्त वर्तमान युद्ध के प्रारंभ से ही अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जा चुका है।

निर्विघ्न जलयात्रा के अधीन तटस्थ पोत पर लदा हुआ सशर्त या पूर्ण निषिद्ध माल युद्धमान देश द्वारा पकड़ा और विधिसम्मत प्राइज के रूप में उसका अधिहरण किया जा सकता है।

महत्वपूर्ण साहित्य

ब्रिम्स, डाक्ट्रिन ऑफ कान्टीन्यूअस वायेज (1926) 7 हैकवर्थ इण्टरनेशनल लॉ (1943) 1 किम में प्रतिपादित सिद्धान्त की पुष्टि 'दि एसेल जॉनसन' (1921) 1 ए० सी० 473 में की गई है। इस मामले में तटस्थ पोत पर लदा ऊन पकड़ा गया था जो स्वीडन जा रहा था। यद्यपि उसका यथार्थ गन्तव्य जर्मनी था। बेटी, प्राइज लॉ एण्ड माडर्न कण्डीशन्स (1931); रोसन, प्राइज लॉ इयूरिंग II वर्ल्ड वार 1947, पृष्ठ 160; फ्रिटजम्यूराइस, सम एस्पैक्टर ऑफ माडर्न कण्ट्रबेण्ड कण्ट्रोल एण्ड दि लॉ ऑफ प्राइज, 1945; ब्रिटिश इयर बुक इण्टरनेशनल लॉ 73।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दि फ्रान्सिसका
(The Franciska)

10 मूर पी० सी० 37

एक युद्धमान देश द्वारा दूसरे युद्धमान देश के सम्पूर्ण समुद्र तट या उसके किसी अंश या किसी पत्तन का अपने युद्ध पोतों द्वारा इस प्रकार घेराव कर लेना कि किसी भी देश का कोई पोत या वायुयान उस सीमा में प्रवेश न कर सके और न बाहर निकल सके, नाकाबन्दी कहलाता है। नाकाबन्दी से सम्बन्धित नियम 1856 के पैक्ट ऑफ पैरिस में उपलब्ध हैं। नाकाबन्दी को युद्ध के सदृश कार्य माना जाता है। नाकाबन्दी के आवश्यक तत्व इस प्रकार हैं:—

(i) शत्रु के संपूर्ण या आंशिक समुद्र तट या पत्तन का युद्धपोतों द्वारा घेराव।

(ii) सभी देशों के पोतों और वायुयानों के आगम-निर्गम पर प्रतिबन्ध।

नाकेबन्दी युद्ध की समाप्ति पर या नाकेबन्दी के हटा लिए जाने पर उसके प्रभावशील न रहने पर अथवा शत्रु द्वारा युद्ध-बेड़े या नाकाबन्दी करने वाले देश या नाकाबन्द पत्तन या प्रदेश के विजित हो जाने पर समाप्त हो जाती है।

* * * *

15 अप्रैल, 1854 को ब्रिटेन के बाल्टिक सागर के नौ सैनिक बेड़े के सेना नायक ने सोवियत रूस के कुछ पत्तनों की वस्तुतः नाकेबन्दी कर दी किन्तु यह नाकेबन्दी ब्रिटिश, फ्रांस और रूस के एक दूसरे के पोतों के लिए 15 मई, 1854 तक शिथिल रखी गई थी। फ्रान्सिसका एक तटस्थ डेनिस पोत था। वह स्पेन से रीगा स्थोरा ले जा रहा था। 14 मई को जब वह इलसीनोर से बाल्टिक सागर के लिए चला तथा जब वह 22 मई, 1885 को रीगा के पास पहुंचा तो उसे रीगा की नाकेबन्दी भंग करने के अपराध में पकड़ लिया गया तथा उसे न्यायिक निर्णय के लिए इंग्लैण्ड भेज दिया गया। प्रथम न्यायालय ने उसे सिद्धदोष ठहराया। विनिश्चय इस अनुमान के आधार पर किया गया था कि जब फ्रान्सिसका इलसीनोर में रुका था तब उसे रीगा के नाकेबन्दी की सूचना प्राप्त हो गई होगी और नाकेबन्दी की जानकारी के होते हुए भी उसका रीगा की ओर जाना नाकेबन्दी का उल्लंघन करने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के उद्देश्य से ही हो सकता है। पोत के स्वामी ने इस विनिश्चय के विरुद्ध अपील की। अपील स्वीकार करते हुए न्यायालय ने पोत उसके स्वामी को प्रत्यास्थापित कर दिया।

* * * *

इस मामले में युद्धमान देशों को सुरक्षात्मक ढंग से अपना वाणिज्य चालू रखने का अधिकार दिया गया है और केवल तटस्थ देशों के वाणिज्य को अपवर्जित किया गया है। अतः प्रश्न यह है कि क्या ऐसा अपवर्जन अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन न्यायोचित है यदि नहीं तो किस सीमा तक तटस्थ देश उस पर आक्षेप करके लाभ उठाने के हकदार हैं।

* * * *

अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन एक युद्धमान देश दूसरे युद्धमान देश के लिए या अपने लिए ऐसे वाणिज्य को चालू रखने का अधिकारी नहीं होता जो तटस्थ देशों के लिए अपवर्जित है। अतः कोई नाकेबन्दी जो किसी भी युद्धमान देश को ऐसा वाणिज्य करने की स्वीकृति प्रदान करती है तथा तटस्थ देशों को अपवर्जित करती है, विधिसंगत नहीं होगी। यह सिद्धान्त न्याय पर आधारित है क्योंकि तटस्थ वाणिज्य में हस्तक्षेप का अधिकारी युद्ध द्वारा शत्रु को समाप्त करने के अधिकार के अन्तर्गत आता है।

यदि युद्धमान देशों के लिए नाकेबन्दी में शिथिलता प्रदान की जाती है तो वह वैध रूप से स्थापित नहीं रहती है। यदि शिथिलता आंशिक है तो तटस्थ देशों को उसी प्रकार के लाभ का हक होता है। जहां तक इस मामले का सम्बन्ध है रूसी पोतों ने 15 मई को कोरलैंड पत्तन से, जो कि युद्धमान है, बाधा रहित प्रस्थान किया था और उससे तटस्थ राज्यों की प्रजा को भी उसी लाभ का हक है और यदि कोई पोत इस प्रकार की स्थिति में पकड़ा जाता है तो वह प्रत्यास्थापन का हकदार है।

यह निष्कर्ष निकालने के लिए यह देखना आवश्यक है कि किस सिद्धान्त के आधार पर युद्धमान देश को नाकेबन्द पत्तन से तटस्थ देशों को अपवर्जित करने का अधिकार है। युद्धमान देश को यह अधिकार है कि वह शत्रु के व्यापार को नष्ट कर सकता है किंतु यह असीमित अधिकार तटस्थ देशों पर लागू नहीं होता। अतः यह अपवर्जन उपरोक्त अधिकार पर आधारित नहीं माना जा सकता। क्योंकि यह सर्व स्वीकृत सिद्धान्त है कि तटस्थ राष्ट्र शांति काल की भांति युद्धकाल में भी युद्धमान देशों के साथ व्यापार कर सकता है। किंतु यह अधिकार विनिषिद्ध माल तथा नाकेबन्द पत्तन के साथ व्यापार न करने के सिद्धान्त के अपवाद के अधीन है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह दोनों अपवाद इस तर्क पर आधारित प्रतीत होते हैं कि तटस्थ देशों को युद्धमान देशों की सैनिक कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करने का या युद्धमान देश को युद्ध सामग्री की पूर्ति करने या उसके द्वारा नाकाबन्दी स्थान से व्यापार करने का अधिकार नहीं है ।

लार्ड स्टोवैल ने नाकेबन्दी को परिभाषित करते हुए कहा कि उसमें आयात और निर्यात दोनों को अवरुद्ध करना होता है तथा नाकाबन्द स्थान से सभी प्रकार के वाणिज्य सम्बन्ध तोड़ देने होते हैं। [दि फेड्रिक मोल्के (1 राब 4)] "दि ब्राऊजुडिश" के मामलों में उन्होंने कहा "नाकाबन्दी एक स्थान के चारों तरफ डाला गया एक प्रकार का घेरा है जिसके द्वारा सभी विदेशी सम्बन्धों, यहां तक कि पत्राचार को भी, जहां तक मानव शक्ति उसे प्रभावित कर सकती है, पूर्ण रूप से विच्छेद कर देना है । उसका आशय सम्पूर्ण वाणिज्य को रोक देना होता है। तथा उसमें किसी तटस्थ देश को आयात निर्यात में सहायता करने की कोई स्वतन्त्रता नही रहती"। "रोला" के मामले (6 राब 372) में उन्होंने कहा कि नाकाबन्दी एकात्मक रूप से सभी पोतों के, जिन्हें विधि द्वारा विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं, आने जाने का निषेध करना है। "सक्सेस" के मामले (1 डांड्स 134) में उन्होंने कहा कि वह उपाय जो लागू किए गए हैं नाकाबन्दी की प्रकृति के हैं अतः उनको ब्रिटिश और तटस्थ पोतों के लिए पूर्ण निषेध के रूप में लागू किया जाना चाहिए क्योंकि यदि तटस्थ देश के व्यापार को प्रतिबन्धित कर दिया जाता है और अपने देश की प्रजा को उस पत्तन पर, जिससे तटस्थ देश को निषेध किया गया है, निर्बाध वाणिज्य करने की अनुमति प्रदान कर दी जाती है तो वह तटस्थ देश के अधिकारों का घोर अतिक्रमण होगा।

* * * *

नाकाबन्दी की वैधता के सम्बन्ध में दूसरा महत्वपूर्ण तर्क यह है कि यदि तटस्थ देशों के विरुद्ध आंशिक और उपान्तरित नाकाबन्दी लागू की जाती है तो न्याय की दृष्टि से यह आवश्यक है कि नाकाबन्दी की सूचना उन्हें दी जानी चाहिए और उन्हें पूर्ण रूप से बताया जाना चाहिए कि उनकी प्रजा क्या करे और क्या न करे। उन्हें ऐसी कठिनाई में नहीं डाला जा सकता कि वे ऐसे अनिश्चित स्थिति की नाकाबन्दी वाले स्थान से सभी वाणिज्य के लिए अलग रहें या उनके पोतों को पकड़कर एडमेरल्टी न्यायालय के समक्ष या निर्णय करने के लिए भेज दिया जाए कि उनका आचरण संरक्षित है या नहीं ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यदि विधि सम्बन्धी यह मत सही है तो यह नहीं माना जा सकता कि फ्रांसिसका जब इलसनोर से चला तो उसे रीगा के नाकेबन्दी की सूचना थी क्योंकि वास्तव में वहां कोई विधिसम्मत नाकेबन्दी विद्यमान नहीं थी और एक तटस्थ से यह चाहना कि वह ऐसी सम्भावना का अनुमान कर ले कि भविष्य में वैध नाकाबन्दी वस्तुतः नाकाबन्दी का स्थान ले लेगी तो उसी तरह से स्वीकार नहीं किया जा सकता जिस तरह से नाकाबन्दी की स्थापना की सूचना प्राप्त हो जाने के बाद उसके समाप्त हो जाने के अनुमान को स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

यदि यह मान भी लिया जाए कि इस मामले में 15 अप्रैल और 15 मई के बीच स्थापित नाकेबन्दी के सम्बन्ध में विधिक आपत्ति नहीं की जा सकती तो भी वैध नाकेबन्दी के लिए यह आवश्यक है कि उसकी सूचना सभी राष्ट्रों को सामान्य रूप से प्रदान कर दी जाए । अतः इस मामले में यह जानना बाकी रह जाता है कि क्या पोत को नाकेबन्दी स्थापित होने की सूचना थी तथा वह इस प्रकृति की थी कि उसे उसकी उपेक्षा के लिए अधिग्रहण के दण्ड के अधीन लाया जा सकता है । प्रथम न्यायालय ने यह माना है कि प्रार्थी को 14 मई को इतसनोर में जहां पोत रुका था, तथा कोपनहेगन से, जहां पोत का स्वामी रहता है, नाकाबन्दी की अधिसूचना की जानकारी प्राप्त हो गई थी । इसके विपरीत अपीलार्थी ने यह अभिकथित किया कि उसे वस्तुतः नाकेबन्दी के अधीन पत्तन में न जाने की कोई शासकीय अधिसूचना नहीं थी । साधारण सूचना के अधीन जानकारी से किसी को दोष ज्ञान होने का अनुमान नहीं निकाला जा सकता तथा एक पोत को ऐसी परिस्थितियों में पकड़ने से पूर्व नाकेबन्दी करने वाले बेड़े से चेतावनी प्राप्त करने का सर्वदा हक है । न्यायालय ने इसे अस्वीकार करते हुए नाकेबन्दी के ज्ञान के सम्बन्ध में लार्ड स्टोवैल के 'एडीलेट' के मामले में (2 राब 111) जो 'नैपचून' की टिप्पणी में उद्धृत है तथा 'हटींगडेन' के मामले (3 राब 324) में दिए गए निर्णयों को उद्धृत किया ।

नाकेबन्दी के सूचना में उसकी स्थापना और सीमा स्पष्ट होनी चाहिए तथा साधारणतया जानकारी इस प्रकार दी जानी चाहिए जिससे की सभी व्यक्तियों को उसकी जानकारी होने का अनुमान लगाया जा सके । तथा यह सूचना ऐसी होनी चाहिए कि जानकारी प्राप्त करने वाले के मन में उसकी सत्यता और प्रमाणिकता के सम्बन्ध में कोई सन्देह न हो सके । सूचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि उससे साधारणतया यह अनुमान लगाया जा सके कि उसका सबको ज्ञान है । इसके लिए यदि सक्षम अधिकार सुभिन्न ज्ञापन के माध्यम से लोगों को सूचित कर देता है तो उसे पर्याप्त माना जाएगा अथवा उसे सार्वजनिक स्थान पर प्रकाशित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर दिया गया हो तो उस चेतावनी को वैध एवं प्रभावकाली सार्वजनिक सूचना माना जाएगा ।

किसी पोत को नाकेबन्दी भंग करने के दोष के लिए दण्डित करने के लिए आवश्यक है कि "स्वयं नाकेबन्दी से अधिक उसे नाकेबन्दी की सूचना होनी चाहिए । नाकेबन्दी की सूचना स्पष्ट होनी चाहिए और उसमें नाकाबन्द स्थान की सीमा वर्णित होनी चाहिए । यदि नाकेबन्दी एक पत्तन की की गई है तो उसका स्पष्ट नामांकन होना चाहिए किन्तु यथार्थतः यदि एक पत्तन की नाकेबन्दी करके उसे अनेक या सभी पत्तनों पर उसका लागू होना घोषित किया जाता है तो वह कागजी नाकेबन्दी का स्थापक माना जाएगा तो तटस्थ देश के वाणिज्य के लिए घोर अन्याय है । तदनुसार एक तटस्थ देश को स्वतन्त्रता होगी कि वह ऐसी घोषणा की अवहेलना कर सके । यदि बाद में वह एक ऐसे पत्तन में, जो यथार्थतः नाकाबन्द है, प्रवेश करने का प्रयास करता है तो वह नाकेबन्दी भंग करने के लिए दण्डनीय नहीं होगा" जैसा कि लार्ड स्टोवैल ने "हेनरिका और मारिया" के मामले (1 राव 148) में सुस्पष्ट रूप से अधिकथित किया था । उस मामले में नाकेबन्दी करने वाले दल के एक अधिकारी ने एक तटस्थ पोत को यह सूचित किया था कि सभी डच पत्तन नाकाबन्द है जबकि नाकेबन्दी एम्सटरडम तक ही सीमित थी । वह पोत जब बाद में एम्सटरडम में प्रवेश करने के प्रयास में पकड़ा गया तो लार्ड स्टोवैल ने पोत को प्रत्यास्थापित किए जाने की डिक्री जारी करते हुए कहा था कि नाकेबन्दी की सूचना अवैध है क्यों कि नाकेबन्दी सभी पत्तनों तक विस्तृत नहीं थी । "नाकेबन्दी की घोषणा प्रभुत्वसम्पन्न का महत्वपूर्ण कार्य है और सम्राट के पोत के सेना नायक उसकी घोषणा नहीं कर सकता" । ऐसी सूचना, जो प्राधिकार में अवैध हो, यदि अन्य पत्तनों के सम्बन्ध में अनुचित है तो वह एम्सटरडम के लिए भी उचित नहीं कही जा सकती । इस प्रकार की सूचना पर यदि तटस्थ पोत गन्तव्य स्थान को नाकाबन्द पाता है तो यह उसके इस अधिकार को छीन लेती है कि अब वह हालैण्ड के किस अन्य पत्तन को जाए । किसी पोत के सेनानायक को ऐसी कठिन स्थिति में नहीं डाला जाना चाहिए । यदि कोई तटस्थ पोत ऐसी स्थिति में उस सूचना का उल्लंघन करता है तो वह दोषी नहीं माना जा सकता ।

इस सिद्धान्त को प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर लागू करते हुए न्यायालय ने कहा कि जो नाकेबन्दी 14 मई को कोपनहेगन में जानकारी का विषय थी उसका ज्ञान पोत के मास्टर तथा स्वामी को होना चाहिए था । उन्हें यह भी ज्ञान होना चाहिए था कि कोरलैण्ड तट से वाणिज्य पोत वापस हो रहे हैं तथा रूसी पत्तनों में प्रवेश करने का प्रयास करने वाले पोत पकड़े जाने का खतरा मोल ले रहे हैं । यह सब जानते हुए भी पोत के मास्टर तथा स्वामी ने सम्पूर्ण कागजात प्रस्तुत नहीं किए

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे और न ही नाकेबन्दी का ज्ञान न होने की बात प्रमाणित करने के लिए आवश्यक शपथ पत्र द्वारा खण्डन किया गया था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि यह मान लिया जाए कि नाकेबन्दी वैध थी तथा पोत के मास्टर को सार्वजनिक सूचना के आधार पर उसकी जानकारी थी तो भी 14 मई को नाकेबन्दी की यथार्थ स्थिति 14 मई को कोपनहेगन में नहीं जानी जा सकती थी और वही सूचना मास्टर को उस समय इलसीनोर पत्तन में प्राप्त हो सकती थी अतः उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर उसकी अवहेलना के लिए उसे दण्डित नहीं किया जा सकता अतः पोत को उसके स्वामी को प्रत्यास्थापित कर दिया गया।

टिप्पणी :—इस मामले में निम्नलिखित सिद्धांत स्थापित किए गए हैं :—

1. अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन नाकेबन्दी स्थापित हो जाने पर एक युद्धमान देश दूसरे युद्धमान देश के लिए या अपने लिए ऐसे वाणिज्य को चालू रखने का अधिकारी नहीं होता जो तटस्थ देशों के लिए अपवर्जित है। ऐसा करना विधिसंगत नहीं होगा। यदि युद्धमान देशों के लिए नाकेबन्दी में शिथिलता प्रदान की जाती है तो तटस्थ देशों को भी उसके लाभ का हक प्राप्त है। अतः नाकेबन्दी निष्पक्षता पूर्ण होनी चाहिए।
2. युद्धमान देश का नाकाबंदी स्थापित करने का अधिकार शत्रु के वाणिज्य को समाप्त करने के अधिकार के अन्तर्गत है।
3. एक तटस्थ राष्ट्र शान्तिकाल की भांति युद्धकाल में भी युद्धमान देशों के साथ व्यापार कर सकता है किन्तु यह अधिकार विनिषिद्ध माल तथा नाकेबन्दी के सिद्धान्तों के अधीन है।
4. नाकेबन्दी एक स्थान के चारों तरफ डाला गया एक प्रकार का घेरा है जिसके द्वारा सभी विदेशी सम्बन्धों का, यहां तक कि पत्राचार का भी, जहां तक मानव शक्ति उसे प्रभावित कर सकती है, पूर्ण रूप से विच्छेद कर देना है। उसका आशय सम्पूर्ण वाणिज्य को समाप्त कर देना होता है तथा उसमें एक तटस्थ को आयात-निर्यात में सहायता करने की कोई स्वतन्त्रता नहीं रहती।
5. नाकेबन्दी की सूचना सभी राज्यों को दी जानी चाहिए और उन्हें पूर्ण रूप से बताया जाना चाहिए कि उनकी प्रजा क्या करे और क्या न करे।
6. नाकेबन्दी की सूचना में उसकी स्थापना और सीमा स्पष्ट होनी चाहिए तथा सामान्य रूप से जानकारी इस प्रकार दी जानी चाहिए कि सभी व्यक्तियों को उसकी जानकारी होने का अनुमान लगाया जा सके। तथा यह सूचना ऐसी होनी चाहिए कि जानकारी प्राप्त करने वाले के मन में उसकी सत्यता और प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई संदेह न हो सके। सूचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि उससे साधारणतया यह अनुमान लगाया जा सके कि उसका सबको ज्ञान है। इसके लिए यदि सक्षम प्राधिकारी सुभिन्न प्रज्ञापन के माध्यम से लोगों को सूचित कर देता है तो उसे पर्याप्त माना जाएगा अथवा उसे सार्वजनिक स्थान पर प्रकाशित कर दिया गया हो तो उस चेतावनी को वैध एवं प्रभावकारी सार्वजनिक सूचना माना जाएगा।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

7. नाकेबन्दी की सूचना स्पष्ट होनी चाहिए और उसमें नाकाबन्द स्थान की सीमा वर्णित होनी चाहिए। यदि नाकाबन्दी एक पत्तन की की गई है तो उसका स्पष्ट नामांकन होना चाहिए।

8. नाकाबन्दी की घोषणा प्रभुत्वसम्पन्न का महत्वपूर्ण कार्य है और सम्राट के पोत के सेना नायक उसकी घोषणा नहीं कर सकता। उसकी घोषणा प्राधिकार प्राप्त प्राधिकारी द्वारा की जानी चाहिए।

9. विधिवत नाकेबन्दी का उल्लंघन करनेवाले पोत का अधिहरण किया जा सकता है। यदि पोत नाकेबन्दी की सूचना से अवगत नहीं है तो उसका अधिहरण नहीं किया जा सकता।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दि अप्पाम
(The Appam)

243 यू० एस० 214

यह मामला प्राइज़ के तटस्थ पत्तन पर ले जाए जाने के प्रभाव के सम्बन्ध में है।

* * * *

अप्पाम एक ब्रिटिश वाणिज्यिक पोत था। यह अफ्रीका के पश्चिमी किनारे से सोयाबीन, मक्का, टीन, मसाले आदि सामान तथा 170 यात्रियों को, जिनमें आठ ब्रिटिश युद्धबन्दी भी थे, लेकर लीवरपूल जा रहा था। 15 जनवरी, 1916 को वह लीवरपूल और इमडेन के बीच जर्मन युद्ध पोत मोवी द्वारा पकड़ लिया गया और उसे 21 जनवरी, 1916 को अमरीका के हमटन रोड पत्तन पर ले जाया गया। जहां उसे युद्ध काल तक युद्ध के प्राइज़ के रूप में रोके रखा जाना था। हमटन रोड पहुंचने पर लेफ्टीनेंट वर्ज के आदेश की प्रति कलेक्टर के समक्ष प्रस्तुत की गई जिसमें अप्पाम को अमरीका के पत्तन में रोके रखे जाने का अनुरोध था। इसके साथ ही जर्मन राजदूत ने स्टेट डिपार्टमेण्ट से 1799 की अमरीकी-प्रूसिया सन्धि के अन्तर्गत अग्रिम सूचना तक उस पोत को अमरीका के पत्तन में रखे जाने तथा उसके नाविकों को युद्धकाल तक बन्दी बनाए रखने का अनुरोध किया। अमरीका की सरकार ने दूसरी प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए नाविकों को स्वतन्त्र कर दिया।

सोलह दिन बाद जहाज के स्वामी—ब्रिटिश अफ्रीका स्टीम नेवीगेशन कम्पनी ने वर्जीनिया के डिस्ट्रिक्ट फेडरल न्यायालय में पोत पर आधिपत्य प्राप्त करने के लिए वाद फाइल किया। इसी के साथ पोत के मास्टर ने भी उस पर लदे हुए माल पर आधिपत्य प्राप्त करने के लिए वाद फाइल किया।

पोत के स्वामी तथा मास्टर का तर्क यह था कि अमरीका के पत्तन पर इस प्रकार पोत का रोके जाने से अन्तरराष्ट्रीय विधि तथा अमरीका के विधान और उसकी तटस्थता का अतिक्रमण होता है।

इसके विपरीत जर्मनी का तर्क यह था कि अप्पाम को "प्राइज़ मास्टर" द्वारा 1799 की अमरीका-प्रूसिया सन्धि के अधीन प्राइज़ के रूप में लाया गया था तथा अन्तरराष्ट्रीय विधि के साधारण सिद्धान्त के आधार पर प्राइज़ मास्टर को प्राइज़ को तटस्थ पत्तन में लाने का हक है। उसके उस पत्तन में ठहरने की अवधि न्यायिक विचारण का विषय नहीं है। चूंकि प्राइज़ को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जब्त किए जाने के लिए जर्मनी के सक्षम अधिकारिता के प्राइज़ न्यायालय में कार्यवाही संस्थित की जा चुकी है अतः अमरीकी न्यायालय को उस पर अधिकारिता नहीं है।

न्यायालय ने जर्मनी के अभिकथनों को अस्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि पोत अमरीका के तटस्थ पत्तन पर अनिश्चित काल तक रोक कर रखे जाने के लिए लाया गया है अतएव जर्मन सरकार का उस पर कोई वैधानिक आधिपत्य नहीं रहा। अप्पाम को बन्दी बनाने के बाद उसे साधारण कार्यवाही के लिए जर्मनी के पत्तन पर ले जाया जाना चाहिए था। जहां प्राइज़ न्यायालय में उसका विचारण किए जाने के उपरान्त उसे प्राइज़ के रूप में जब्त किए जाने का आदेश दिया गया होता। इसके विपरीत उसे 3000 मील दूर अमरीका के तटस्थ पत्तन पर ठहराने के लिए लाया गया है जिसे वैध नहीं माना जा सकता अतः उसे उसके स्वामी को प्रत्यास्थापित किया जाता है।

इस निर्णय के विरुद्ध जर्मनी ने अमरीका की सुप्रीम कोर्ट में अपील की।

* * * *

तथ्यों और अभिकथनों का अध्ययन करने के पश्चात् अवधारणार्थ निम्नलिखित तीन मुख्य प्रश्न उठते हैं—

1. क्या उपर्युक्त परिस्थितियों में अमरीका के पत्तन का उपयोग इस राष्ट्र की तटस्थता की नीति के विरुद्ध है ?
2. क्या जर्मनी तथा अमरीका के बीच हुई सन्धियों के आधार पर अमरीका के पत्तन का इस प्रकार उपयोग उचित है ?
3. क्या अमरीका के नावाधिकरण न्यायालय को यह अधिकार है कि वह अप्पाम तथा उस पर लदे हुए माल को दण्डस्वरूप जब्त किए जाने का आदेश जारी करे।

उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए न्यायाधीश ने कहा कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार जर्मन सेनाधिकारी को चाहिए था कि पोत को पकड़ने के बाद उसे किसी जर्मन पत्तन पर ले जाता जहां जर्मन प्राइज़ न्यायालय उस पर विचारण कर जब्ती का न्यायिक निर्णय देता। इसके विपरीत उसे समीप के किसी तटस्थ पत्तन पर ले जाने के बजाय 3000 मील दूर अमरीका के पत्तन में अनिश्चित काल तक रखने के उद्देश्य से लाया गया था। जर्मनी का तर्क यह था कि अप्पाम को अमरीका के पत्तन में लाना तथा अनिश्चित काल तक रखना 1799

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की अमरीका-प्रूसिया सन्धि पर आधारित है। सन्धि की धारा 19 के अनुसार किसी प्राइज़ पोत को अमरीका के पत्तन पर जब तक चाहे रखा जा सकता है। इस धारा का अर्थान्वियन करते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उससे स्पष्ट है कि उसमें युद्ध पोतों और उनके द्वारा लाए गए प्राइज़ को पत्तन पर पहुंचने पर बन्दी नहीं बनाया जाएगा। उनकी तलाशी नहीं ली जाएगी और उन्हें विधि प्रक्रिया का विषय नहीं बनाया जाएगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि उसे स्वतन्त्रतापूर्वक बन्दीकर्ता द्वारा आदेश पत्र में निर्धारित स्थान पर लाया गया हो, जिसको प्रस्तुत करना न्यायिक अधिकारी का कर्त्तव्य है। जिस समय अप्पाम अमरीका के पत्तन में लाया गया था तब वह जर्मन युद्ध पोत के अधिकार में नहीं था। विधि के अनुसार आदेश पत्र में वाहक का उल्लेख होना आवश्यक है। निश्चित रूप से प्राइज़ को अनिश्चित काल तक ठहराए जाने के लिए अमरीका के पत्तन का प्रयोग किया जाना सन्धि में अपेक्षित नहीं था। उसमें केवल कुछ प्रयोजनों के लिए अस्थायी आश्रय प्रदान किए जाने का उपबन्ध है। उसके उपबन्धों का यह आशय नहीं निकाला जा सकता कि युद्धमान द्वारा अमरीका के पत्तन को बन्दीकृत प्राइज़ का स्थायी शरण स्थान बनाया जाएगा। अमरीका के पत्तनों का इस प्रकार का प्रयोग उसकी तटस्थता के अधिकार का हनन तथा अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा स्वीकृत तटस्थ देशों की बाध्यताओं के प्रतिकूल होगा अतः सन्धि द्वारा हमारे देश के पत्तनों का इस प्रकार प्रयोग किया जाना स्वीकार नहीं किया जा सकता।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अमरीका की सरकार द्वारा मान्य अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्त किसी सन्धि के आधार पर किसी युद्धमान देश को अमरीका के पत्तनों का इस प्रकार प्रयोग करने की आज्ञा नहीं देते यदि इस प्रकार प्रयोग की अनुज्ञा दी जाती है तो इस तटस्थ देश के पत्तन प्राइज़ के लिए सुरक्षात्मक बन्दरगाह बन जाएंगे जहां युद्धमान देश द्वारा बन्दीकृत पोत सुरक्षात्मक ढंग से लाए और अनिश्चित काल तक रखे जा सकेंगे।

इतिहास के प्रारम्भ से ही यह देश युद्धमान देशों के बीच तटस्थ स्थिति बनाए रखने के लिए सावधान रहा है तथा तटस्थता की बाध्यताओं का अतिक्रमण करते हुए अपने पत्तनों के प्रयोग किए जाने की अनुमति नहीं दी है। किन्तु समुद्र में खराब मौसम से बचने के लिए या नौवहन की अक्षमता या ईंधन या सामग्री की कमी से उत्पन्न परिस्थितियों की आवश्यकतावश अस्थायी आश्रय दिया जाता रहा है। ऐसा प्रयोग अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा स्वीकृत है तथा हारी प्रथा के अनुरूप है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अमरीका की सरकार की नीति 1907 के हेग सम्मेलन में अपनाए गए रुख से स्पष्ट होती है। हेग अभिसमय के अनुच्छेद 21 में यह उपबन्धित है कि किसी प्राइज़ को नौवहन की अक्षमता, मौसम की खराबी या ईंधन या सामग्री की कमी से उत्पन्न परिस्थितियों के लिए किसी तटस्थ पत्तन में अस्थायी आश्रय के लिए लाया जा सकता है। किन्तु इन परिस्थितियों के समाप्त होते ही उसे पत्तन को छोड़ देना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता तो तटस्थ देश को उसे तुरन्त पत्तन छोड़ने का आदेश देना चाहिए। यदि वह उसका अनुपालन करने में असमर्थ होता है तो तटस्थ देश उस पर बैठे अधिकारियों एवं व्यक्तियों को मुक्त करके पोत को अपने अधिकार में रोक सकता है। अनुच्छेद 22 में यह उपबन्धित है कि किसी तटस्थ देश को अनुच्छेद 21 में निर्दिष्ट परिस्थितियों से भिन्न परिस्थितियों में उसके पत्तन में लाए गए प्राइज़ को मुक्त कर देना चाहिए।

इस अभिसमय को बेल्जियम, फ्रांस, आस्ट्रिया, हंगरी, जर्मनी और अमरीका ने स्वीकृति प्रदान की थी। अमरीका ने अनुच्छेद 23 को स्वीकार नहीं किया था जिसमें यह उपबन्धित है कि किसी प्राइज़ को तटस्थ राष्ट्र प्राइज़ न्यायालय के निर्णय तक जब्त रख सकता है। यदि प्राइज़ किसी युद्धपोत के साथ है तो प्राइज़ के नाविक युद्धपोत पर चले जाएंगे यदि प्राइज़ किसी युद्धपोत के साथ नहीं है तो उसे मुक्त कर दिया जाएगा। यद्यपि यह सन्धि अनुसमर्थन के अभाव के कारण आबद्धकर नहीं है। तथापि अन्तरराष्ट्रीय विधि के सम्बन्ध में अमरीका के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण है। सम्मेलन के इतिहास से ज्ञात होता है कि अनुच्छेद 23 का अमरीका द्वारा अस्वीकृत किए जाने का कारण यह था कि तटस्थ राज्य को युद्ध में इस सीमा तक शामिल हो जाना पड़ता कि युद्धमान जिस प्राइज़ को अपने साथ ले जाने में असमर्थ हो उसे पक्षकार अपने पत्तन में आश्रय दे। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि जर्मनी तथा अमरीका के बीच हुई सन्धियों के आधार पर अमरीका के पत्तनों का इस प्रकार प्रयोग उचित नहीं माना जा सकता।

तीसरे प्रश्न के सम्बन्ध में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि "ग्लास बनाम बैटसी" (1794, 3 डाल 6) तथा "सेण्टीसीमा ट्रिण्डाड" (7 वीट 283) के मामलों में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अवैध बन्दीकरण सदोष कार्य है और जब वह सम्पत्ति हमारी अधिकारिता में लाई जाती है तब मूल स्वामी उसको प्राप्त करने का हकदार होगा। इसी सिद्धान्त का पालन "लइन्विन्सविल" (1 वीट 238), "दि इस्ट्रेला" (4 वीट 298), "लॉ एमिस्टेड डी रियूस" (5 वीट 385) के मामलों में किया गया है। अतः इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अप्पाम के वैध प्राइज़ होने के सम्बन्ध में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्णय करने की जर्मनी को अनन्य अधिकारिता है। यह पोत प्रथानुसार हमारी अधिकारिता तथा न्यायालय के कब्जे में है जो तटस्थता के अधिकारों के अतिक्रमण पर विचार कर रहा है और उसे इस पोत के मामले को निपटाने का अधिकार है। इन परिस्थितियों में विदेशी अधिकरण स्थानीय अधिकारिता को समाप्त कर उसके निर्णय को असफल बनाने का अधिकार नहीं रखता। अमरीका की तटस्थता का अतिक्रमण इस अधिकारिता का आधार है तथा नावाधिकरण न्यायालय इस अतिक्रमण को प्रत्यास्थापित करने का आदेश दे सकता है।

अमरीका में प्रत्येक मामले में, जहां पोत उसकी अधिकारिता में है, अधिकारिता सम्बन्धी तथा तटस्थता का अतिक्रमण करने वाले पोत को उसके मूल स्वामी को प्रत्यास्थापित करने का आदेश देने का प्राधिकार न्यायालय को है।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले में न्यायालय द्वारा इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है कि—

(i) किसी युद्धमान देश की सन्धि के बिना तटस्थ पत्तन में प्राइज़ को लाने, भेजने या शान्ति की स्थापना तक उसे स्टोर करने के उद्देश्य से रखने का अधिकार नहीं है।

(ii) जब प्राइज़ तटस्थ देश के क्षेत्र या राज्यक्षेत्रीय समुद्र में हो तो उस देश के न्यायालयों को प्राइज के सम्बन्ध में जांच करने, पक्षकारों के अधिकार का अवधारण करने तथा तदनुसार प्राइज़ को प्रत्यास्थापित करने की अधिकारिता होगी।

(iii) प्राइज़ के तटस्थ पत्तन पर लाए जाने पर तटस्थ देश उसे तुरन्त पत्तन छोड़ने का आदेश दे सकता है और ऐसे आदेश का पालन न किए जाने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है।

(iv) यदि प्राइज़ को अधिकारिता के बिना तटस्थ देश के पत्तन पर लाया जाता है तो उसे तुरन्त मुक्त कर दिया जाएगा।

हेग अभिसमय, 1907 के अनुच्छेद 21, 22 और 23 के अनुसार तटस्थ पत्तन में किसी प्राइज़ को —

(क) मौसम की खराबी के कारण, समुद्र में रहने के अयोग्य हो जाने पर और ईंधन, रसद आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए; तथा

(ख) प्राइज़ न्यायालय द्वारा विनिश्चय किए जाने के लिए लाया जा सकता है।

अनुच्छेद 19 और 20 के अनुसार युद्धकाल में किसी युद्धमान देश के युद्धपोतों को तटस्थ पत्तन में तीन मास में एक बार आने, केवल उतना ईंधन लेने जितना उसे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपने देश के समीपस्थ पत्तन तक पहुंचने के लिए पर्याप्त हो तथा रसद लेने और अत्यन्त अनिवार्य मरम्मत करवाने (जिससे उसकी युद्ध क्षमता में वृद्धि न हो) तथा अनुज्ञप्त पोत-चालकों को सेवा में रखने का अधिकार प्राप्त है तथा इससे तटस्थता प्रभावित नहीं होती। तटस्थ देश ऐसा करने के लिए आबद्ध नहीं हैं। पूर्व घोषणा करके वे ऐसा करने से इन्कार भी कर सकते हैं। अनुच्छेद 15 के अनुसार किसी तटस्थ पत्तन पर किसी युद्धमान देश के तीन से अधिक पोत नहीं रह सकते जब तक तटस्थ देश की राष्ट्रीय विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित न किया गया हो। अनुच्छेद 13 के अनुसार पोत केवल 24 घण्टे तक ठहर सकते हैं। अनुच्छेद 14 के अनुसार मौसम की खराबी के कारण या पोत में किसी प्रकार की खराबी हो जाने के कारण ही पोत इससे अधिक अवधि तक रुक सकते हैं। रुकने की अवधि से सम्बन्धित यह नियम धार्मिक, वैज्ञानिक तथा परोपकारी कार्यों में लगे हुए पोतों पर लागू नहीं होता।

* * * *

सम्बन्धित साहित्य —

7 हैकवर्थ इण्टरनेशनल लॉ, च० 24 (1943); कुंज, न्यूट्रलिटी एण्ड दि यूरोपियन वार, 39 मिचीगन लॉ रिव्यू 719 (1941); हेग कन्वेन्शन 1907.

—: o :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

16. प्राइज़ न्यायालय

युद्धकाल में समुद्रों में पकड़े गए शत्रु के पोत तथा उन पोतों में ले जाई जा रही सामग्री तथा अतटस्थ सेवारत या विनिषिद्ध माल वाहक पोत तथा उन पोतों में ले जाई जा रही सामग्री जो युद्धमान देश द्वारा पकड़ी जाती है प्राइज कहलाती है। इस प्रकार पकड़े जाने मात्र से वह सम्पत्ति युद्धमान देश की नहीं हो जाती। साम्या तथा सद्विवेक के सिद्धान्तों के आधार पर उन्हें विशेष न्यायालयों के समक्ष अभिग्रहण की वैधता के सिद्ध किए जाने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। विशेष न्यायालयों में दोनों पक्षकारों को समान रूप से अपने तर्क प्रस्तुत करने और साक्ष्यों के आधार पर अपने दावे सिद्ध करने के लिए अवसर दिया जाता है। प्रत्येक युद्धमान देश का यह कर्त्तव्य है कि वह युद्ध के समय ऐसे न्यायालय स्थापित करे। इन न्यायालयों को प्राइज़ न्यायालय कहते हैं। इन्हें राष्ट्रीय विधि के अधीन स्थापित किया जाता है और उसी के अधीन वे अधिकारिता प्राप्त करते हैं। अतः वे राष्ट्रीय न्यायालय ही होते हैं। किन्तु वे ऐसी राष्ट्रीय विधि को लागू करते हैं जो अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुकूल हो अर्थात् वे अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार अपने निर्णय देते हैं। वे सभी राष्ट्रों के व्यक्तियों के लिए खुले रहते हैं।

इस प्रकार के न्यायालयों के सम्बन्ध में दो मामले यहां उद्धृत हैं (1) अप्पाम तथा (2) 28 जमोरा का।

* * * *

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दि जमोरा

(The Zamora)

(1916) 2 ए० सी० 77

यह मामला प्राइज न्यायालय की प्रकृति और कार्यों तथा उसके द्वारा लागू को जाने वाली विधि के सम्बन्ध में है।

जमोरा स्वीडेन का एक व्यापारिक जहाज था। प्रथम विश्व युद्ध के समय वह ताम्बा लेकर न्यूयार्क से स्टाकहोम जा रहा था। 8 अप्रैल, 1915 को उसे मार्ग में एक ब्रिटिश सैनिक जहाज ने बन्दी बना लिया और ब्रिटिश बन्दरगाह को ले गए तथा उसे शत्रु देश को अथवा शत्रु के लिए विनिषिद्ध माल ले जाने के आरोप में दण्डित किया गया। नावाधिकरण न्यायालय के समक्ष मामला प्रस्तुत करके प्राइज़ न्यायालय नियम, 1914 (प्राइज़ कोर्ट रूल्स, 1914) के आदेश 29, नियम 1 के अधीन ताम्बा सम्राट् को परिदत्त करने के लिए अन्तरिम आदेश जारी करने का अनुरोध किया गया। ज़मोरा के स्वामी स्वीडिश कम्पनी और माल के समनुदेशितियों ने आपत्ति की कि आदेश 29 से अन्तरराष्ट्रीय विधि का अतिक्रमण होता है अतः प्राइज़ न्यायालय उसे लागू नहीं कर सकता। नावाधिकरण न्यायालय ने आपत्ति को अस्वीकार करते हुए सरकारी आदेश की वैधता मंजूर कर ली। इस निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील की गई।

* * * *

प्राइज न्यायालय नियम, 1914 के आदेश 29, नियम 1 के उपबन्ध प्रथमदृष्टया अनिवार्य हैं। जब कभी न्यायाधीश के समक्ष यह प्रकट किया जाता है कि उसे सम्राट् की ओर से प्रश्नगत पोत या माल का अधिग्रहण करना है तो उसे एक विशिष्ट प्रकार से कार्य करना होता है। यदि उक्त नियम का यही अर्थान्वयन है और न्यायाधीश तद्द्वारा आबद्ध हो तो न्यायालय के लिए और कुछ नहीं रह जाता है और अपील अनिवार्यतः असफल हो जाती है। लेकिन यदि यह प्रकट हो कि इस प्रकार अर्थान्वयन किया गया नियम न्यायाधीश पर आबद्धकर नहीं है तो उसका किसी अन्य प्रकार से अर्थान्वयन करना पड़ेगा। अतः प्रस्तुत मामले में इस पर विचार करना होगा कि नियम के अर्थान्वयन के अनुसार यदि नियम न्यायाधीश के लिए अनिवार्य निदेश है तो वह किस सीमा तक आबद्धकर है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राइज़ न्यायालय के नियम (प्राइज़ कोर्ट रूल्स) सपरिषद् सम्राट् के आदेशों (आर्डर्स ऑफ हिज़ मैजस्टी इन काउन्सिल) से बल प्राप्त करते हैं। ये आदेश प्राइज न्यायालय अधिनियम, 1894 (प्राइज़ कोर्ट ऐक्ट, 1894) के आधार पर सम्राट् में निहित शक्तियों के अधीन या अन्यथा जारी किए गए हैं। यह अधिनियम सपरिषद् सम्राट् को प्राइज़ न्यायालयों की प्रक्रिया और पद्धति के लिए नियम बनाने का अधिकार प्रदान करते हैं। अतः जहां तक प्राइज़ न्यायालयों के नियमों की प्रक्रिया और पद्धति का सम्बन्ध है, उनका कानूनी बल है और निस्संदेह वे आबद्धकर हैं। किन्तु आदेश 29, नियम 1, जिसका अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाता है कि वह न्यायाधीश के लिए अनिवार्य निदेश है, केवल प्रक्रिया या पद्धति का ही नियम नहीं है। यह प्रक्रिया या पद्धति का नियम तभी हो सकता है जब उसका अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाए कि उसमें अनुसरण किया जाने वाला मार्ग विहित किया गया है, यदि न्यायाधीश का यह समाधान हो जाए कि प्राइज़ न्यायालयों में लागू की जाने वाली विधि के अनुसार क्राउन को, नियम से स्वतन्त्र रूप से, प्रश्नगत पोत या माल का अधिग्रहण करने का अधिकार प्राप्त है अथवा यदि न्यायाधीश प्राइज़ न्यायालय में अन्तर्निहित किसी दैवेकिक शक्ति का प्रश्नगत पोत या माल को क्राउन को बेचने के लिए प्रयोग करना चाहता है। अतः यदि आदेश 29, नियम 1 का यह अर्थान्वयन किया जाता है कि वह अनिवार्य और आबद्धकर है तो ऐसा 1894 के अधिनियम के आधार पर न होकर सपरिषद् सम्राट् में निहित किसी अन्य शक्ति के आधार पर हो सकता है।

यह विचार कि सपरिषद् सम्राट् या कार्यपालिका की किसी शाखा को इस देश के न्यायालयों द्वारा लागू की जाने वाली विधि विहित करने या बदलने की शक्ति है तो ऐसा करना इस देश के संविधान के सिद्धान्तों के विपरीत होगा। अनेक आधुनिक स्टेट्यूटों के अधीन कार्यपालिका की विभिन्न शाखाओं को स्ट्रेयूटों का बल रखने वाले नियम बनाने की शक्ति प्राप्त है किन्तु ऐसे सभी नियमों की विधिमान्यता इसी स्टेट्यूट के आधार पर होती है जिसके अधीन ऐसी शक्ति का सृजन किया जाता है न कि कार्यपालिका के आधार पर जिसके द्वारा स्टट्यूट बनाए जाते हैं। यह कोई कार्य नहीं कहेगा कि परमाधिकार में कोई ऐसी शक्ति शामिल है जिसके द्वारा सामान्य विधि या साम्या न्यायालयों (कोर्ट्स ऑफ कॉमन लॉ आर इक्यूटी) द्वारा लागू की जाने वाली विधि विहित या परिवर्तित की जा सकती है। लेकिन यह कहा गया है कि इस देश में जिस रीति से प्राइज़ न्यायालय नियुक्त किए जातेहैं और उनकी अधिकारिता की जो प्रकृति है वह इस सम्बन्ध में उन्हें अन्य न्यायालयों से भिन्न बना देती है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नेवल प्राइज़ ऐक्ट, 1864 से पूर्व प्राइज़ से सम्बन्धित विषयों में अधिकारिता का प्रयोग हाई कोर्ट आफ एडमिरेल्टी द्वारा किया जाता था और इस अधिकारिता का प्रयोग युद्ध प्रारम्भ होने के समय ग्रेट सील के अधीन, क्राउन द्वारा जारी किए गए कमीशन के आधार पर किया जाता था। निस्सन्देह कमीशन की विधिमान्यता परमाधिकार के आधार पर होती थी किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं निकाला जा सकता कि परमाधिकार के अन्तर्गत उस अधिकारिता के अधीन समय-समय पर लागू की जाने वाली विधि विहित या परिवर्तित की जा सकती थी।

वे सभी विषय जिन पर न्यायालय को विचार करने का प्राधिकार प्राप्त है वे प्रभुत्वसम्पन्न शक्ति द्वारा युद्ध के अधिकार के अन्तर्गत किए गए कार्य हैं या उनसे उत्पन्न होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सम्राट प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, प्राइज़ न्यायालय के समक्ष सभी कार्यवाहियों में पक्षकार होना चाहिए। प्रभुत्व पर आधारित अधिकारों का अधित्यजन कर दिया जाता है और सम्राट अधिकांश प्रयोजनों के लिए सामान्य वादी की स्थिति स्वीकार कर लेता है। निःसंदेह प्राइज़ न्यायालय को अपने समक्ष अवधारणार्थ आने वाले सभी प्रश्नों पर न्यायिकतः विचार करना चाहिए यदि वह कार्यवाही के पक्षकारों में से किसी भी पक्षकार से आदेश प्राप्त करने के लिए आबद्ध हो तो उसके लिए न्यायिकतः कार्य करना असम्भव हो जाएगा।

प्राइज़ न्यायालय को जो विधि लागू करनी होती है वह राष्ट्रीय या देशीय विधि नहीं होती बल्कि अन्तरराष्ट्रीय विधि होती है। निस्सन्देह प्राइज़ न्यायालय राष्ट्रीय न्यायालय होते हैं और उनकी डिक्रियों और आदेशों की विधिमान्यता राष्ट्रीय विधि पर आधारित होती है। अतः उसके द्वारा प्रवर्तित विधि को, एक दृष्टि से, राष्ट्रीय विधि का भाग माना जा सकता है। ऐसा होने पर भी राष्ट्रीय विधि और अन्तरराष्ट्रीय विधि में अन्तर स्पष्ट और सुनिश्चित है। जो न्यायालय राष्ट्रीय विधि लागू करता है वह उस प्रभुत्वसम्पन्न राज्य द्वारा, जो उस न्यायालय की स्थापना करता है अधिकथित विधि द्वारा आबद्ध होता है और उसे प्रभावशील करता है। उसे केवल यह जानना होता है कि विधि क्या है किन्तु जो न्यायालय अन्तरराष्ट्रीय विधि लागू करता है उसे ऐसी विधि अभिनिश्चित करनी होती है और उसे प्रभावशील करनी होती है जो किसी विशिष्ट राज्य द्वारा अधिकथित न की गई हो बल्कि जो सभ्य राष्ट्रों द्वारा अपने पारस्परिक सम्बन्धों के निर्वाह में काफी समय से अनुसरण की जा रही पद्धति/प्रथा से उत्पन्न हुई हो या जो अभिव्यक्त अन्तरराष्ट्रीय करारोंमें पाई जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि यदि और जहां तक इस देश का प्राइज़ न्यायालय सपरिषद् सम्राट् के उन आदेशों से आबद्ध है और उन्हें प्रभावशील करते हैं जो

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तरराष्ट्रीय विधि विहित या परिवर्तित करते हैं, वह अन्तरराष्ट्रीय विधि लागू न करके राष्ट्रीय विधि लागू करता है क्योंकि परमाधिकार का प्रयोग करके सम्राट् के अधिक्षेत्रों के बाहर किसी पर, जो सम्राट् का प्रजाजन नहीं है, विधिक बाध्यता अधिरोपित नहीं की जा सकती। यदि सपरिषद् सम्राट् के आदेश प्राइज़ न्यायालय पर आबद्धकर होते तो ऐसे न्यायालय को उस कमीशन के, जिसके आधार पर उसे अधिकारिता प्राप्त है, अभिव्यक्त निबन्धनों के प्रतिकूल कार्य करने के लिए विवश किया जा सकता है।

किसी युद्धमान शक्ति द्वारा युद्धाधिकार के अधीन किए गए कार्य उसके अपने न्यायालयों में न्याय्य नहीं होते जब तक कि वह शक्ति स्वयं उनकी अधिकारिता स्वीकार नहीं कर लेती। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि प्राइज़ न्यायालय विद्यमान न हों तो युद्धकाल में युद्धमान शक्ति के कार्य से व्यथित कोई भी व्यक्ति राजनयिक माध्यम और अन्तरराष्ट्रीय मैत्री में विघ्न पड़ने के जोखिम के अलावा प्रतिशोध प्राप्त नहीं कर सकता। किन्तु अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा इसके लिए उचित उपचार किया गया है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन प्रत्येक युद्धमान शक्ति प्राइज़ न्यायालय स्थापित करेगी और उसकी अधिकारिता को स्वीकार करेगी और उसकी कार्यों से व्यथित प्रत्येक व्यक्ति को उसमें जाने का अधिकार होगा और वह न्यायालय अन्तरराष्ट्रीय विधि को लागू करेगा और उसके निर्णय दोनों पक्षकारों पर समान रूप से आबद्धकर होंगे। राजनयिक प्रथा द्वारा यह काफी पहले ही सुस्थापित हो चुका है कि इस प्रकार प्रदान किए गए उपचार की दृष्टि से युद्धमान शक्ति के कार्यों से व्यथित तटस्थ देश को उससे पहले युद्धमान शक्ति के प्राइज़ न्यायालयों का आश्रय लेना चाहिए और जब उसके न्यायालय के समक्ष उसके सभी प्रयास असफल हो जाएं तभी उसे राजनयिक हस्तक्षेप का अवलम्ब लेना चाहिए। वह राजनयिक हस्तक्षेप तो तभी किया जा सकता है यदि इन न्यायालयों के विनिश्चयों से घोर अन्याय होता हो। लेकिन यह सुस्पष्ट है कि यदि प्राइज़ न्यायालय अन्तरराष्ट्रीय बाध्यता की विधि को नाममात्र के लिए लागू करके यथार्थतः युद्धमान शक्ति की कार्यपालिका के निदेश पर कार्य करने लगें तो राजनयिक उपचार के नियम का आधार एकदम समाप्त हो जाएगा।

प्राइज़ न्यायालय किसी अन्य न्यायालय की भांति अपने प्रभुत्वसम्पन्न राज्य की विधायी अधिनियमितियों द्वारा आबद्ध होता है। किन्तु यदि विधायिका ऐसा अधिनियम पारित करती है जिसके उपबन्ध अन्तरराष्ट्रीय विधि से असंगत हों और प्राइज़ न्यायालय उन उपबन्धों को लागू करता है तो वह अन्तरराष्ट्रीय विधि को लागू नहीं कर रहा होगा। इन उपबन्धों को लागू करते समय वह प्राइज़ न्यायालय के यथार्थ कार्यों से वंचित हो जाएगा।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यदि अधिनियम के उपबन्ध अन्तरराष्ट्रीय विधि के मात्र घोषणात्मक उपबन्ध हैं तो भी अन्तरराष्ट्रीय विधि के निर्वचन के रूप में न्यायालय का प्राधिकार पर्याप्त रूप से कम हो जाएगा क्योंकि कोई भी यह नहीं कह सकता कि क्या उसके विनिश्चय अन्तरराष्ट्रीय बाध्यताओं पर सम्यक् ध्यान रखकर लिए गए थे अथवा वे अधिनियम की आबद्धकर प्रकृति पर आधारित थे। लेकिन इस तथ्य से कि इस देश के प्राइज़ न्यायालय विधायिका के अधिनियमों से आबद्ध होंगे, यह तर्क देने का आधार नहीं बन जाता कि वे सपरिषद् सम्राट के कार्यपालिक आदेशों से आबद्ध हैं।

न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि जो भी हो नेवल प्राइज़ ऐक्ट, 1864 से पूर्व क्राउन को सपरिषद् आदेश (आर्डर इन काउन्सिल) द्वारा कोई शक्ति प्राप्त नहीं थी कि वह प्राइज़ न्यायालयों द्वारा लागू की जाने वाली विधि विहित या परिवर्तित करें। इस अधिनियम के अधीन नावाधिकरण न्यायालय ग्रेट सील के अधीन जारी किए गए किस कमीशन से स्वतन्त्र स्थायी प्राइज़ न्यायालय बन गया था। लेकिन इस अधिनियम की धारा 55 द्वारा जहां एक ओर सम्राट के परमाधिकार को सुरक्षित रखा गया है वहीं दूसरी ओर न्यायालय की न्यायिकतः और अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार विनिश्चय करने की अधिकारिता को सुरक्षित रखा गया है। अतः अन्य धाराओं में अन्तर्विष्ट अभिव्यक्त उपबन्धों के अध्यधीन इस अधिनियम में सभी विषयों को उसी प्रकार रखा गया है जैसे वे इस अधिनियम के पारित किए जाने के पहले थे। एकमात्र अभिव्यक्त उपबन्ध जिनके आधार पर सपरिषद् सम्राट को शक्तियां प्रदान की गई हैं वे धारा 13 में अन्तर्विष्ट हैं जिसके अधीन धारा 13 में प्राइज़ न्यायालय की पद्धति या प्रक्रिया से सम्बन्धित नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है तथा धारा 53 के अधीन अधिनियम के सुचारु कार्यान्वयन के लिए आवश्यक आदेश देने के लिए शक्ति प्रदान की गई है। किन्तु यह शक्ति न्यायालय द्वारा लागू की जाने वाली विधि विहित या परिवर्तित करने तक विस्तृत नहीं है।

यह तर्क दिया गया था कि ऐसा हो सकता है कि न्यायालय सपरिषद् सम्राट् के किसी ऐसे आदेश द्वारा आबद्ध नहीं होगा जो स्पष्टतया अन्तरराष्ट्रीय विधि के स्थापित नियमों के प्रतिकूल हो किंतु ऐसे क्षेत्र हो सकते हैं जिनमें यह विधि अपूर्ण रूप से अभिनिश्चित और परिभाषित हो और जब ऐसा होता है तब यह अभिनिर्धारित करना अयुक्तियुक्त नहीं होगा कि न्यायालय को चाहिए कि वह अपनी राय कार्यपालिका के निदेशों के अधीन और उनके अनुसार अभिव्यक्त करें। यदि न्यायालय को अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार न्यायिकतः विनिश्चय करना हो तो वह संदेहास्पद मामलों में भी क्राउन से, जो कि कार्यवाहियों का पक्षकार है, निर्देश नहीं ले सकता। उसे स्वयं अपनी योग्यतानुसार यह

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अवधारित करना चाहिए कि विधि क्या है और उसके द्वारा निकाला गया निष्कर्ष, चाहे वह कितने ही असमंजस से निकाला गया हो, कार्यपालक आदेश पर अभिभावी होगा। केवल इसी प्रकार ही वह प्राइज़ न्यायालय के रूप में अपने कार्यों को निष्पक्ष रूप से सम्पन्न कर सकता है और उस विश्वास को न्यायोचित ठहरा सकता है जो अन्य देशों ने उसके विनिश्चयों में अब तक रखा है।

इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि क्योंकि सपरिषद् आदेश (आर्डर्स इन काउन्सिल) प्राइज़ न्यायालय द्वारा लागू की जाने वाली विधि विहित या परिवर्तित नहीं कर सकते इसलिए वह न्यायालय उन आदेशों की सर्वथा उपेक्षा करेगा। बल्कि इसके विपरीत न्यायालय हर एक ऐसे मामले में उन आदेशों के अनुसार कार्य करेगा जिसमें शत्रु या तटस्थ देश के पक्ष में क्राउन के अधिकारों में कमी होती हो। इसके अतिरिक्त प्राइज़ न्यायालय सपरिषद् सम्राट के हर एक उस आदेश की न्यायिक अवेक्षा करेगा जो उन विषयों पर विचार करने के लिए तात्विक हैं जिन पर उसे कार्यवाही करनी होती है और हर एक ऐसे आदेश को अत्यधिक महत्व देगा। किन्तु उन्हें विधि की प्राधिकारपूर्ण अथवा आबद्धकर घोषणा नहीं माना जाएगा। अतः नाकेबन्दी के आदेश के अधीन नाकाबन्द पत्तनों में प्रवेश करने का प्रयास करने वाले पोतों को पकड़ना और उन्हें दण्ड देना न्यायोचित होगा किन्तु इससे ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए रुकावट नहीं पड़ेगी कि नाकेबन्दी निष्प्रभावी है और इसलिए विधिविरुद्ध है। प्रतिशोध का प्राधिकार प्रदान करने का आदेश उन तथ्यों के बारे में निश्चायक होगा जिनसे यह दर्शित होता है कि प्रतिशोध के लिए मामला विद्यमान है, और उन्हें सम्यक् महत्व दिया जाएगा। किन्तु इससे किसी व्यथित पक्षकार द्वारा यह दलील देने के अधिकार या न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करने के अधिकार पर कोई रुकावट नहीं पड़ेगी कि ये तरीके विधि-विरुद्ध हैं क्योंकि मामले की सभी परिस्थितियों को देखते हुए उसके द्वारा दिए गए आदेश से तटस्थों को अयुक्तियुक्त असुविधा होती है।

अतः प्राइज़ न्यायालय नियमों के आदेश 29, नियम 1, जिसके बारे में यह अर्थान्वयन किया गया है कि वह न्यायालय के लिए अनिवार्य निदेश है, आबद्धकर नहीं है। इन परिस्थितियों में इस नियम का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह उन मामलों में न्यायालय के लिए मात्र निदेश है जिनमें यह अवधारित किया जाए कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार क्राउन को शत्रु या तटस्थ देशों के पोत या माल का अधिग्रहण न करने का अधिकार प्राप्त है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि कतिपय परिस्थितियों में और कतिपय प्रयोजनों के लिए क्राउन अपने प्रजाजनों के क्षेत्र में स्थित किसी भी सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकता है। किन्तु यह अधिकार ऐसा अधिकार है जो राष्ट्रीय विधि द्वारा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रदत्त किया गया है इसलिए यह अन्तरराष्ट्रीय विधि लागू करने वाले न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं किया जा सकता ।

यह तर्क दिया जा सकता है कि इस तथ्य मात्र से कि तटस्थ देशों की सम्पत्ति युद्धमान शक्ति की अधिकारिता में स्थित है, अन्तरराष्ट्रीय विधि के अनुसार वह सम्पत्ति युद्धमान शक्ति की राष्ट्रीय विधि के अध्यधीन हो जानी चाहिए । यह तर्क निश्चित रूप से न्यायसंगत है और वह कतिपय मामलों में और कतिपय प्रयोजनों के लिए ठोस हो सकता है । साधारणतया एक शक्ति के प्रजाजन की सम्पत्ति दूसरी शक्ति के राज्यक्षेत्र में असली स्वामी की सम्मति के बिना स्थित नहीं हो सकती और इसी सम्पत्ति को उस दूसरी शक्ति की राष्ट्रीय विधि की अधिकारिता को स्वीकार करना माना जा सकता है । किन्तु अधिकारिता के भीतर स्थायी रूप से स्थित और अस्थायी रूप से स्थित सम्पत्ति में अन्तर किया जा सकता है । यह (युनाइटेड किंगडम में) व्यापार कर रहे किसी विदेशी का माल उस स्थिति में नहीं है जैसे कि इंग्लैण्ड के किसी पत्तन का उपयोग करने वाला पोत । इंग्लैण्ड के पत्तनों का उपयोग करने वाले पोत भी कुछ प्रयोजनों के लिए, उदाहरणार्थ स्वच्छता या पुलिस व्यवस्था के प्रयोजनों के लिए स्थानीय (राष्ट्रीय) विधि के अध्यधीन हो जाते हैं । किन्तु ये नियम उस पोत के सम्बन्ध में लागू नहीं होते जो युद्ध के अधिकार का प्रयोग करते हुए राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता में लाए जाते हैं । क्योंकि उसमें स्वामी या ऐसे व्यक्ति की सहमति नहीं होती जिसकी सहमति से स्वामी पर बाध्यता अधिरोपित हो सकती है । तथापि ऐसी दशा में भी वह पोत पुलिस और स्वच्छता के प्रयोजनार्थ राष्ट्रीय विधि के अध्यधीन हो जाता है । अतः यह अभिनिर्धारित करने से कि वह सभी प्रयोजनों के लिए, जिनमें अधिग्रहण का राष्ट्रीय अधिकार भी शामिल है, अध्यधीन हो जाता है, कई प्रकार की विषमताएं उत्पन्न हो जाएंगी ।

एक राष्ट्र की अपने प्रजाजन की सम्पत्ति के अधिग्रहण के अधिकार के सम्बन्ध में राष्ट्रीय विधि दूसरे राष्ट्र की विधि से भिन्न हो सकती है । जिन परिस्थितियों के अधीन, जिन प्रयोजनों के लिए और जिन शर्तों के अध्यधीन इस अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है यह जरूरी नहीं हैं कि वे समान हों । यह बहुत ही असंगत होगा यदि अन्तरराष्ट्रीय विधि, जिससे सभी देश आबद्ध होते हैं, हर एक देश में प्रचलित राष्ट्रीय विधि की जांच-पड़ताल करके ही अभिनिश्चित की जानी हो । यदि युद्ध के समय कोई युद्धमान देश इस सम्बन्ध में अपनी राष्ट्रीय विधि में परिवर्तन करके अन्य राष्ट्रों या उनके प्रजाजनों के अधिकारों को प्रभावित करता है तो स्थिति और भी विषम हो जाएगी । इस सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय प्रथा की अपनी विधि विकसित हो गई है और वह हर एक राष्ट्र के इस

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिकार को मान्यता प्रदान नहीं करती कि वह अपनी राष्ट्रीय विधि लागू कर सकता है।

* * * *

टिप्पणी:—युद्धकाल में शत्रु या तटस्थ राज्यों के अतटस्थ सेवा में लगे हुए पोत और विनिषिद्ध माल युद्धमान देश द्वारा पकड़ लिए जाने या अधिग्रहण कर लिए जाने पर प्राइज़ कहलाते हैं। इन पर स्वामित्व सक्षम न्यायालय द्वारा घोषी ठहराए जाने पर ही होता है और जब तक सक्षम न्यायालय द्वारा यह विनिश्चय नहीं कर दिया जाता वह ऋण सम्पत्ति के रूप में रहते हैं।

युद्धकाल में समुद्र में पकड़े गए शत्रु के पोत या माल पर मूल स्वामी का अधिकार समाप्त हो जाता है किन्तु बहुधा यह संदेह रह जाता है कि क्या पकड़ा गया पोत या माल शत्रु देश का है या किसी अतटस्थ देश का अथवा पोत में ले जाई जा रही सामग्री विनिषिद्ध माल की कोटि में आती है या नहीं, इसका अधिग्रहण किया जा सकता है या नहीं आदि। अधिग्रहण करने वाले देश या राष्ट्र के अधिकारों की सीमा निश्चित करने से सम्बन्धित प्रश्नों का हल करने के लिए न्यायालय का हस्तक्षेप प्रायः वांछनीय हो जाता है। अतः सभी युद्धमान देश युद्ध की समाप्ति पर युद्धकाल में पकड़े गए या अधिग्रहण किए गए पोतों या सामग्रियों के सम्बन्ध में विनिश्चय करने के लिए प्राइज़ न्यायालय स्थापित करते हैं जो युद्धमान देशों की राष्ट्रीय विधि के अधीन स्थापित किए जाते हैं और उसी के अनुसार कार्य करते हैं किन्तु उनकी प्रकृति अन्तरराष्ट्रीय होती है। इन न्यायालयों के प्रमुख कार्य क्या होते हैं इस सम्बन्ध में पिट कोवेट, लीडिंग केसेज़ में उल्लेख किया गया है—

(i) समुद्र में पकड़े गए पोतों और सामग्रियों की जांच करना,

(ii) पकड़े गए माल को वैध प्राइज़ घोषित करना और सिद्धदोष ठहराना और दण्ड निर्धारित करना,

(iii) दोष सिद्ध न होने पर माल प्रतिकर सहित उसके स्वामी को वापस किए जाने का आदेश देना,

(iv) आनुषंगिक रूप से सबके हितों की रक्षा करना।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दि मारिया
(The Maria)

हाई कोर्ट ऑफ एडमिरेल्टी (1799) आई० सी० रॉब 340

इस मामले में निरीक्षण और तलाशी के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है ।

* * * *

मारिया एक स्वीडिश वाणिज्यिक पोत था । जनवरी, 1798 को वह फ्रान्स से पुर्तगाल के भूमध्य सागरीय पत्तनों को पिच, टार, हेम्प, लोहा आदि सामग्री एक युद्धपोत के संरक्षण में ले जा रहा था । मार्ग में ब्रिटिश युद्धपोत ने उसके निरीक्षण और तलाशी की मांग की और संरक्षक द्वारा बाधा डालने पर उसे बन्दी बनाकर इंग्लैण्ड ले जाया गया जहां उसके विरुद्ध कार्यवाही की गई । हाई कोर्ट ऑफ एडमिरेल्टी ने कहा कि निरीक्षण और तलाशी की कार्यवाही में बाधा डालने वाले पोत और उसकी सामग्री को जब्त किया जा सकता है ।

* * * *

किसी युद्धमान देश को खुले समुद्र में पोतों का निरीक्षण करने और तलाशी लेने का एक निर्विवाद अधिकार है । चाहे पोत पर ले जाई जा रही सामग्री या उसका गन्तव्य स्थान कैसा भी हो, निरीक्षण और तलाशी द्वारा ही उसके यथार्थ स्वरूप को जाना जा सकता है । यह अधिकार इतना स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति, जो समुद्रीय बन्दीकरण की वैधता को स्वीकार करता है, इसे अस्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि जब तक युद्धमान देश को पोत के निरीक्षण और तलाशी की स्वतन्त्रता नहीं होगी तब तक वह यह नहीं जान सकता कि उसकी सामग्री की प्रकृति क्या है । जब तक उसमें कोई ऐसी सामग्री न हो, जो पकड़ी जा सके, तब तक उसे पकड़ा नहीं जा सकता । वह लोग भी, जो यह कहते हैं कि स्वतन्त्र पोतों की सामग्री को भी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है, कम से कम पोत का स्वतन्त्र होना या न होना अभिनिश्चित करने के लिए निरीक्षण और तलाशी के अधिकार को स्वीकार करते हैं । यह अधिकार प्रथा द्वारा एकात्मक और सार्वभौमिक रूप से स्थापित है और बहुत सी यूरोपीय सन्धियों में इसका उल्लेख किया गया है, उसकी पूर्व विद्यमानता को मान्यता दी गई है और उसके प्रयोग को विनियमित किया गया है । इस अधिकार के प्रयोग के लिए शिष्टता और सौजन्यता के तरीकों को अपनाया जाना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार शक्ति का प्रयोग भी वर्जित नहीं है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक युद्धमान देश को यह अधिकार है कि वह तटस्थ देशों के पोतों का, उनका स्वरूप जानने के लिए, निरीक्षण करे और तलाशी ले किन्तु ऐसे पोत या उसके संरक्षक युद्धपोत को यह अधिकार नहीं कि वह निरीक्षण करने और तलाशी लेने के अधिकार का प्रतिरोध करे या उसके लिए शक्ति का प्रयोग करे। वैध रूप से यह नहीं माना जा सकता कि स्वीडिश सरकार का संरक्षक युद्ध पोत इस अधिकार के प्रयोग में अवरोध उत्पन्न कर सकता है। यदि वह शक्ति का प्रयोग करता है तो वह अवैध शक्ति द्वारा वैध अधिकार के प्रयोग का विरोध करना होगा। निरीक्षण या तलाशी में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित करना अन्तरराष्ट्रीय विधि का अतिक्रमण है। यदि कोई पोत शक्ति द्वारा इस अधिकार के प्रयोग में बाधा उपस्थित करता है तो उसकी सम्पत्ति को अधिकृत किया जा सकता है। इस मत की पुष्टि बाटेल के विचारों से होती है (बुक नं० 3 चैप्टर 7 सेक्शन 114)। यही सिद्धान्त सभी सिविल लॉ देशों में लागू है तथा यूरोपीय देशों के विधि शास्त्रों में भी यही है कि उचित जांच को अस्वीकार करना अपराध के सिद्ध होने के समान दण्डनीय है। अतः वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन तटस्थ पोत द्वारा युद्धमान देश के युद्धपोत द्वारा निरीक्षण और तलाशी के अधिकार के प्रयोग में तटस्थ राज्य के पोत द्वारा जानबूझकर प्रतिरोध पैदा करने का विधिगत परिणाम अधिहरण होगा।

* * * *

टिप्पणी :—इस मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि युद्धमान देश द्वारा निरीक्षण और तलाशी के अधिकार का तटस्थ पोत द्वारा प्रतिरोध किए जाने पर वह अधिहरणीय हो जाता है।

* * * *

अन्तरराष्ट्रीय विधि में यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है कि युद्धमान देश को तटस्थ पोत का निरीक्षण करने और तलाशी लेने का अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार को यह जानने के लिए मान्यता दी गई है कि क्या कोई तटस्थ वाणिज्यिक पोत यथार्थतः तटस्थ देश का है; क्या वह शत्रु को सहायता पहुंचाने, विनिषिद्ध माल ले जाने या किसी अतटस्थ देश की सेवा करने में तो नहीं लगा हुआ है। इन बातों का पता निरीक्षण और तलाशी द्वारा ही लगाया जा सकता है। निरीक्षण के अधीन वाणिज्यिक पोत को रुकने का आदेश दिया जाता है और उसके रुकने के उपरान्त उस पर युद्धपोत के अधिकारी जाकर पोत की राष्ट्रीयता, उस पर लदे हुए माल, यात्रियों की प्रकृति और पोत के गन्तव्य स्थान की जानकारी पोत के कागजपत्रों तथा पासपोर्ट, मस्टर रोल, लॉग बुक, बिल ऑफ लेडिंग आदि का परीक्षण करके करते हैं तथा पोत के स्वामी (मास्टर) का सम्बन्धित कागजपत्रों सहित युद्धपोत पर बुला कर परीक्षण किया

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाता है यदि इससे युद्धमान देश का पूर्ण रूप से समाधान नहीं होता तो वह अपनी शंका के निवारणार्थ अपने कुछ अधिकारियों को उस पोत की पोत के स्वामी/मास्टर की उपस्थिति में तलाशी लेने के लिए भेज सकता है। इस अधिकार का प्रयोग युद्धमान देश अपनी जल सीमा या खुले समुद्र में ही कर सकता है, तटस्थ देश की जल सीमा में नहीं कर सकता।

पोत और माल के निर्दोष पाए जाने पर उसे अपने गन्तव्य स्थान पर प्रस्थान करने देना चाहिए और कार्यवाही से समय आदि की क्षति की पूर्ति की जा ी चाहिए। यदि पोत दोषी पाया जाता है तो उसे पकड़ा जा सकता है और प्राइज़ न्यायालय के समक्ष उसका अभियोजन किया जा सकता है। इस अधिकार का प्रयोग युद्ध के चालू रहने के दौरान अर्थात् युद्ध के आरम्भ होने से समाप्ति तक ही किया जा सकता है।

तटस्थ व्यापार को निर्बाध बनाने के उद्देश्य से इस अधिकार को प्राय: सभी राष्ट्रों ने अपनाना आरम्भ कर दिया। तटस्थ राज्य के युद्धपोत के संरक्षण में जाने वाले वाणिज्यिक पोतों को निरीक्षण और तलाशी से उन्मुक्त रखे जाने, के सिद्धान्त से ग्रेट ब्रिटेन को छोड़ कर प्राय: सभी राष्ट्र सहमत थे। इस सिद्धान्त के पीछे तर्क यह था कि तटस्थ राज्य के रक्षक बेड़े के संरक्षण में वाणिज्यिक पोत इस तथ्य की प्रत्याभूति हैं कि संरक्षित पोत तटस्थ पोत है तथा वह अवैध व्यापार या अतटस्थ देश की सेवा में नहीं लगा हुआ है। इस सिद्धान्त को 1909 की लन्दन घोषणा के अनुच्छेद 61 में स्वीकार किया गया था। इस अनुच्छेद में यह अधिकथित किया गया है कि संरक्षित पोत का समादेशक (कमाण्डर) युद्धमान देश के युद्धपोत के समादेशक द्वारा मांग ।कए जाने पर ोत पर लदे हुए माल के सम्बन्ध में लिखित सूचना देगा। यदि युद्धमान देश के पोत का समादेशक का उससे समाधान न हो और उसे संदेह हो कि संरक्षण का दुरुपयोग किया जा रहा है तो वह अपना संदेह रक्षक बेड़े के समादेशक को प्रकट कर सकता है। तब पोत का समादेशक स्वयं उसकी जांच कर अपनी रिपोर्ट युद्धमान देश के पोत के समादेशक को प्रस्तुत करेगा। यदि वह उचित समझे तो वह यह जांच युद्धमान देश के पोत के अधिकारी की उपस्थिति में कर सकता है। यदि उसके मतानुसार पोत विनिषिद्ध माल ले जा रहा है या अतटस्थ देश की सेवा में लगा हुआ है तो वह अधिग्रहणीय बन जाता है और उससे संरक्षण हटा लिया जाना चाहिए।

लन्दन घोषणा के अनुच्छेद 63 के अनुसार युद्धमान देश के निरीक्षण और तलाशी के अधिकार में किसी पोत द्वारा बाधा डालना या शक्ति का प्रयोग करना दण्डनीय है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुच्छेद 64 के अनुसार यदि प्राइज़ न्यायालय पोत के पकड़े जाने या माल के अधिग्रहण को बहाल नहीं रखते या कोई विनिश्चय किए बिना छोड़ देते हैं तो पकड़े गए पोत को अपनी क्षतिपूर्ति का अधिकार प्राप्त है।

: o : -

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विधिक शब्दावली

1. हिन्दी-अंग्रेजी

अकृत और शून्य	Null and void
अतात्विक	Immaterial
अतिक्रमण	Violation
अतिक्रमण करना	To violate
अधिकथित	Laid down
अधिकरण	Tribunal
अधिकार	Right
अधिकारिता	Jurisdiction
अधिग्रहण	Requisition
अधित्यजन	Waiver
अधित्यजन करना	To waive
अधिनियमित	Enacted
अधिनियामक सत्ता	Law giver
अधिभोग	Occupation
अधिरोपित	Imposed
अधिहरणीय	Confiscable
अध्यर्पण	Cession
अननुसमर्थित	Unratified
अनन्य	Exclusive
अनाक्रमण समझौता	Non-aggression pact
अनुच्छेद	Article
अनुज्ञेय	Permissive
अनुध्यात	Contemplated
अनुसमर्थन करना	Ratify
अन्तरण	Transfer
अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय	International Court
अन्तरराष्ट्रीय मैत्री	International amity
अन्तरराष्ट्रीय राजमार्ग	International Highway
अन्तरराष्ट्रीय विधि	International Law

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तरित	Transferred
अन्तर्विष्ट	Contained
अन्तिम	Definitive
अन्यदेशीय	Alien
अपदेशी	Pretended
अपवर्जन	Exclusion
अपहरण	Abduction
अपास्त करना	To set aside
अपेक्षित	Required
अभिकथन	Allegation
अभिकथन करना	To allege
अभिकर्ता	Agent
अभिगृहीत	Seized
अभिग्रहण	Seizure
अभित्यक्त क्षेत्र	Deserted area
अभित्रस्त करना	To intimidate
अभिनिर्धारित	Held
अभिभावी होना	To prevail
अभिवहन	Transit
अभिव्यक्त करना	Express
अभिव्यक्ति	Expression
अभिसमय	Convention
अभिसमयजात विधि	Conventional law
अभ्यापत्ति	Protest
अभ्यारोपित करना	Indict
अभ्यावेदन	Representation
अमूर्त सत्ता	Abstract entity
अर्थान्वयन	Construction
अल्पीकरण	Derogation
अवधारित	Determined
अविधिमान्य	Invalid
आक्रामक	Aggressor
आज्ञापक	Mandatory
आतिथेय देश	Host country

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आत्यंतिक	Absolute
आधार-रेखा	Base line
आप्रवास	Immigration
आबद्धकर	Binding
आयुद्ध	Arms
आयुधादि	Armaments
आयोजक	Organiser
आस्तियां	Assets
आहत	Victim
उच्चायुक्त	High Commissioner
उत्प्रवास	Emigration
उद्गम	Origin
उद्घोषणा	Proclamation
उद्देशिका	Preamble
उन्मुक्ति	Immunity
उपदर्शित हो...	Indicate
उपदान	Gratuity
उपनिवेशक संरक्षित राज्य	Colonial protectorate
उपबन्ध	Provision
उपबन्धित	Provided
उपमति	Acquiescence
उपलक्षित	Tacit
उपशमन अभिवाक्	Plea in abatement
एकतरफा	Unilateral
कगार	Escarpment
कतिपय	Certain
कर्त्तव्य	Duty
कर्मीदल	Crew
कार्मिक	Personnel
कार्यपालक	Executive
कार्यपालिक आदेश	Executive Order
कृत्रिम व्यक्ति	Artificial person
क्षेत्रीय शरण	Territorial asylum
खुला समुद्र	High seas

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोला-बारूद	Ammunition
घोषणा	Declaration
चलत जलयान	Sailing vessel
चिरभोग	Prescription
जलयान	Vessel
जंगम सम्पत्ति	Movable property
तटवर्ती राज्य	Riparian state
तटस्थ	Neutral
तटस्थता	Neutrality
तटीय अग्रभाग	Coastal front
तटीय जल	Coastal waters
तात्विक	Material
द्वीप	Island
द्वीप समूह	Archipelago
दृश्यमान	Ostensible
नावाधिकरण न्यायालय	Admiralty court
नाव्य	Navigable
निबन्धन	Term
निम्न जल-स्तरांक	Low water-mark
निर्बन्धन	Restriction
निर्वचन	Interpretation
निर्वासित सरकार	Government in exile
निर्विघ्न जलयात्रा	Continuous voyage
निश्चायक	Conclusive
निश्चायक रूप से	Conclusively
निष्पादन	Execution
नुकसानी	Damages
नौपरिवहन	Navigation
न्यायानुमत	Justified
न्यायिक अवेक्षा	Judicial notice
न्यायिकतः	Judicially
न्याय्य	Justiciable
पद्धति	Practice
परमाधिकार	Prerogative

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पराभव	Subjugation
परिक्षेत्र	Zone
परित्याग करना	To abandon
परिनियम	Statute
परिभाषित	Defined
परिमोचन	Liberation
परिरक्षण करना	To preserve
परिवीक्षा अधिकारी	Probation officer
परेषिती	Consignee
परोपकारी	Philanthropic
पारगमन	Passage
पारस्परिकता	Reciprocity
पार्श्वस्थ राज्य	Adjacent state
पोत	Ship
पोत निर्माणशाला	Shipyard
प्रकृत व्यक्ति	Natural person
प्रतिकर	Compensation
प्रतिकूल	Contrary
प्रतितोष	Redress
प्रतिधृत करना	To detain
प्रतिवादी	Defendant
प्रतिशोध	Revenge, Reprisal
प्रतिषिद्ध	Prohibited
प्रत्यर्थी	Respondent
प्रत्यर्पण	Extradition
प्रत्यर्पणीय	Extraditable
प्रत्याक्रमण	Retaliate
प्रत्यायित	Accredited
प्रथा	Usage
प्रपलायी अपराधी	Fugitive offender
प्रभुत्व	Sovereignty
प्रभुत्वसम्पन्न	Sovereign
प्रवर्तनीय	Enforceable
प्रवारित	Precluded

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रवरित रहना	To abstain
प्रशासनिक	Administrative
प्रसीमा	Precine
प्राख्यान	Assert
प्राधिकार	Authority
प्रारूप	Form
प्रास्थगित	In abeyance
प्रोत्तुंग	Promontory
बगावत	Rebellion
बातिल करना	To annul
बाध्यकर	Obligatory
भूतलक्षी प्रभाव से	Retrospectively
मत्स्य नौका	Trawler
मध्य रेखा	Medium line
मध्यवर्ती राज्यक्षेत्र	Intervening territory
महाद्वीपीय मग्नतट भूमि	Continental shelf
महाधिपत्य	Suzerain
माध्यस्थम् अधिकरण	Arbitral Tribunal
मानचित्रांकन करने वाली फर्म	Cartographical firm
माफ करना	Condone
मुठभेड़	Combat
मुहार	Facade
युद्धपोत	Cruiser
राजनयिक	Diplomatic
राजनयिक शरण	Diplomatic asylum
राजनयिक संरक्षण	Diplomatic protection
राजनैतिक शरणार्थी	Political refugee
राज्य	State
राज्यक्षेत्रातीत	Extra-territorial
राज्यक्षेत्राधिमुक्तता	Exterritoriality
राज्यक्षेत्रीय समुद्र	Territorial waters
राज्यों की अखण्डता का सिद्धांत	Principle of continuity of States
रियायत	Concession
रियायती संविदा	Concessionary contract

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राष्ट्र	Nation
राष्ट्रिक	National
राष्ट्रीय विधि	Municipal law
रूढ़ियां	Customs
लिखत	Instrument
लूटपाट	Depredation
लोप	Omission
वचनबन्ध	Engagement
वस्तुतः	De facto, in fact
वाणिज्यिक	Commercial
वाणिज्यिक बेड़ा	Merchant fleet
विचलन	Deviation
विचारण	Trial
विद्रोह	Revolt
विधान	Legislation
विधानमण्डल	Legislature
विधायी	Legislative
विधिक सत्ता	Legal entity
विधितः	De jure
विनिर्दिष्ट	Specified
विनिश्चय	Decision
विनिषिद्ध	Contraband
विन्यास	Formation
विवक्षित	Implied
विवाद	Dispute
विवाद्यक	Issues
विवासन	Deportation
विशिष्ट	Particular
विस्फोट	Explosion
विहित करना	Prescribe
वैवेकिक शक्ति	Discretionary power
व्यथित	Aggrieved
व्यपदेशन	Representation
व्यपहृत	Kidnapped

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व्यष्टि, व्यष्टिक	Individual
व्यादेश	Injunction
शरण	Asylum
शाश्वत अध्यर्पण	Cession in perpetuity
शाश्वत प्रभुत्व	Perpetual sovereignty
शैलमाला	Reaf
शोध्य	Due
संकल्प	Resolution
संदाय	Payment
संधियां	Treaties
संवर्धन	Augmentation
संविदाकारी पक्षकार	Contracting party
संशोधित	Amended
संहिता	Code
सदोष कार्य	Wrongful act
समझौता	Pact
समता	Equality
समदूरस्थ रेखा	Equidistance line
समनुदेशन करना	Assign
समाकृति	Configuration
समाविष्ट	Comprised
समुद्री विधि	Maritime law
समेकन	Consolidation
सम्प्रेक्षण करना	To observe
सर्वनाश	Extermination
सर्वबन्धी रिट	Writ in rem
सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र	Most favoured nation
सशस्त्र पुलिस	Armed police
सशस्त्र बल	Armed forces
सामन्त राज्य	Vassal state
साम्या	Equity
साम्यापूर्ण विबन्ध	Equitable estoppel
सार्वदेशिक उपमति	Universal acquiescence
सार्वभौमिक	Universal

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सनिक विद्रोह	Military rebellion
स्थलाकृति अधिकारी	Topographical Officer
स्थापित	Established
स्थोरा	Cargo
स्थावर सम्पत्ति	Immovable property
हानिपूर्ति	Reparation
हिताधिकारी स्वामी	Beneficial owner

—: ○ :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

2. अंग्रेजी-हिन्दी

Abandon	परित्याग करना
Abduction	अपहरण
Absolute	आत्यंतिक
Abstain	प्रविरत रहना
Abstract entity	अमूर्त्त सत्ता
Accredited	प्रत्यायित
Acquiescence	उपमति
Adjacent state	पार्श्वस्थ राज्य
Administrative	प्रशासनिक
Admiralty court	नावाधिकरण न्यायालय
Agent	अभिकर्त्ता
Aggressor	आक्रामक
Aggrieved	व्यथित
Alien	अन्यदेशीय
Allegation	अभिकथन
Allege	अभिकथन करना
Amended	संशोधित
Ammunition	गोला-बारूद
Annul	बातिल करना
Arbitral Tribunal	माध्यस्थम् अधिकरण
Archipelago	द्वीप समूह
Armaments	आयुधादि
Armed Forces	सशस्त्र बल
Armed Police	सशस्त्र पुलिस
Arms	आयुध
Article	अनुच्छेद
Artificial person	कृत्रिम व्यक्ति
Assets	आस्तियाँ
Assert	प्राख्यान
Assign	समनुदेशन करना
Asylum	शरण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Augmentation	संवर्धन
Authority	प्राधिकार
Base line	आधार रेखा
Beneficial owner	हिताधिकारी स्वामी
Binding	आबद्धकर
Cartographical firm	मानचित्रांकन करने वाली फर्म
Certain	कतिपय
Cession	अध्यर्पण
Cession in perpetuity	शाश्वत अध्यर्पण
Coastal front	तटीय अग्रभाग
Coastal waters	तटीय जल
Code	संहिता
Colonial protectorate	उपनिवेशिक संरक्षित राज्य
Combat	मुठभेड़
Commercial	वाणिज्यिक
Compensation	प्रतिकर
Comprised	समाविष्ट
Concession	रियायत
Concessionary contract	रियायती संविदा
Conclusive	निश्चायक
Conclusively	निश्चायक रूप से
Condone	माफ करना
Configuration	समाकृति
Confiscable	अधिहरणीय
Consignee	परेषिती
Consolidation	समेकन
Construction	अर्थान्वयन
Contained	अन्तर्विष्ट
Contemplated	अनुध्यात
Continental shelf	महाद्वीपीय मग्नतट भूमि
Continuous voyage	निर्विघ्न सम्बद्ध यात्रा
Contraband	विनिषिद्ध
Contracting party	संविदाकारी पक्षकार
Contrary	प्रतिकूल

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Convention	अभिसमय
Conventional law	अभिसमयजात विधि
Crew	कर्मीदल
Cruiser	युद्धपोत
Customs	रूढ़ियां
Damages	नुकसानी
De facto	वस्तुत:
De jure	विधित:
Decision	विनिश्चय
Declaration	घोषणा
Defendant	प्रतिवादी
Defined	परिभाषित
Definitive	अन्तिम
Deportation	विवासन
Depredation	लूटपाट
Derogation	अल्पीकरण
Deserted Area	अभित्यक्त क्षेत्र
Detain	प्रतिधत करना
Determined	अवधारित
Deviation	विचलन
Diplomatic	राजनयिक
Diplomatic asylum	राजनयिक शरण
Diplomatic protection	राजनयिक संरक्षण
Discretionary power	वैवेकिक शक्ति
Dispute	विवाद
Due	शोध्य
Duty	कर्त्तव्य
Emigration	उत्प्रवास
Enacted	अधिनियमित
Enforceable	प्रवर्तनीय
Engagement	वचनबन्ध
Equality	समता
Equidistance line	समदूरस्थ रेखा
Equitable estoppel	साम्यापूर्ण विबन्ध

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Equity	साम्या
Escarpment	कगार
Established	स्थापित
Exclusion	अपवर्जन
Exclusive	अनन्य
Execution	निष्पादन
Executive	कार्यपालक
Executive Order	कार्यपालिक आदेश
Explosion	विस्फोट
Express	अभिव्यक्त करना
Expression	अभिव्यक्ति
Extermination	सर्वनाश
Exterritoriality	राज्यक्षेत्राधिमुक्तता
Extraditable	प्रत्यर्पणीय
Extradition	प्रत्यर्पण
Extra-territorial	राज्यक्षेत्रातीत
Facade	गुहार
Form	प्रारूप
Formation	विन्यास
Fugitive offender	प्रपलायी अपराधी
Government in exile	निर्वासित सरकार
Gratuity	उपदान
Held	अभिनिर्धारित
High Commissioner	उच्चायुक्त
High Seas	खुला समुद्र
Host country	आतिथेय देश
Immaterial	अतात्विक
Immigration	आप्रवास
Immovable property	स्थावर सम्पत्ति
Immunity	उन्मुक्ति
Implied	विवक्षित
Imposed	अधिरोपित
In abeyance	प्रास्थगित
In fact	वस्तुतः

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Indicate	उपदर्शित होना
Indict	अभ्यारोपित करना
Individual	व्यष्टि, व्यष्टिक
Injunction	व्यादेश
Instrument	लिखत
International amity	अन्तरराष्ट्रीय मैत्री
International court	अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय
International Highway	अन्तरराष्ट्रीय राजमार्ग
International Law	अन्तरराष्ट्रीय विधि
Interpretation	निर्वचन
Intervening territory	मध्यवर्ती राज्यक्षेत्र
Intimidate	अभित्रस्त करना
Invalid	अविधिमान्य
Island	द्वीप
Issues	विवाद्यक
Judicial notice	न्यायिक अवेक्षा
Judicially	न्यायिकत:
Justiciable	न्याय्य
Justified	न्यायानुमत
Jurisdiction	अधिकारिता
Kidnapped	व्यपहृत
Laid down	अधि कथित
Law giver	अधिनियामक सत्ता
Legal entity	विधिक सत्ता
Legislation	विधान
Legislative	विधायी
Legislature	विधानमण्डल
Liberation	परिमोचन
Low water-mark	निम्न जल-स्तरांक
Mandatory	आज्ञापक
Maritime Law	समुद्री विधि
Material	तात्विक
Medium line	मध्य रेखा
Merchant fleet	वाणिज्यिक बेड़ा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Military rebellion	सैनिक विद्रोह
Most favoured nation	सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र
Movable property	जंगम सम्पत्ति
Municipal law	राष्ट्रीय विधि
Nation	राष्ट्र
National	राष्ट्रिक
Natural person	प्रकृत व्यक्ति
Navigable	नाव्य
Navigation	नौपरिवहन
Neutral	तटस्थ
Neutrality	तटस्थता
Non-aggression pact	अनाक्रमण समझौता
Null and void	अकृत और शून्य
Obligatory	बाध्यकर
Observe	सम्प्रेक्षण करना
Occupation	अधिभोग
Omission	लोप
Organiser	आयोजक
Origin	उद्गम
Ostensible	दृश्यमान
Pact	समझौता
Particular	विशिष्ट
Passage	पारगमन
Payment	संदाय
Permissive	अनुज्ञेय
Perpetual sovereignty	शाश्वत प्रभुत्व
Personnel	कार्मिक
Phillanthropic	परोपकारी
Plea in abatement	उपशमन अभिवाक्
Political refugee	राजनैतिक शरणार्थी
Practice	पद्धति
Preamble	उद्देशिका
Precinct	प्रसीमा
Precluded	प्रवारित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Prerogative	परमाधिकार
Prescribe	विहित करना
Prescription	चिरभोग
Preserve	परिरक्षण करना
Pretended	अपदेशी
Prevail	अभिभावी होना
Principal of continuity of States	राज्यों की अखण्डता का सिद्धान्त
Probation Officer	परिवीक्षा अधिकारी
Proclamation	उद्घोषणा
Prohibited	प्रतिषिद्ध
Promontory	प्रोत्तुंग
Protest	अभ्यापत्ति
Provided	उपबन्धित
Provision	उपबन्ध
Ratify	अनुसमर्थन करना
Reaf	शैलमाला
Rebellion	बगावत
Reciprocity	पारस्परिकता
Redress	प्रतितोष
Reparation	हानिपूर्ति, क्षतिपूर्ति
Representation	व्यपदेशन, अभ्यावेदन
Reprisal	प्रतिशोध
Required	अपेक्षित
Requisition	अधिग्रहण
Resolution	संकल्प
Respondent	प्रत्यर्थी
Restituted	प्रत्यास्थापित
Restriction	निर्बन्धन
Retaliate	प्रत्याक्रमण करना
Retrospectively	भूतलक्षी प्रभाव से
Revenge	प्रतिशोध
Revolt	विद्रोह
Right	अधिकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Riparian State	तटवर्ती राज्य
Sailing vessel	चलत जलयान
Seized	अभिगृहीत
Seizure	अभिग्रहण
Set aside	अपास्त करना
Ship	पोत
Shipyard	पोत निर्माणशाला
Sovereign	प्रभुत्वसम्पन्न
Sovereignty	प्रभुत्व
Specified	विनिर्दिष्ट
State	राज्य
Statute	परिनियम
Subjugation	पराभव
Suzerain	महाधिपत्य
Tacit	उपलक्षित
Term	निबन्धन
Territorial asylum	क्षेत्रीय शरण
Territorial waters	राज्यक्षेत्रीय समुद्र
Topographical Officer	स्थालाकृति अधिकारी
Transfer	अन्तरण
Transferred	अन्तरित
Transit	अभिवहन
Trawler	मत्स्य नौका
Treaties	संधियां
Trial	विचारण
Tribunal	अधिकरण
Unilateral	एकतरफा
Universal	सार्वभौमिक
Universal acquiescence	सार्वदेशिक उपमति
Unratified	अननुसमर्थित
Usage	प्रथा
Vassal state	सामन्त राज्य
Vessel	जलयान
Victim	आहत

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Violate	अतिक्रमण करना
Violation	अतिक्रमण
Waive	अधित्यजन करना
Waiver	अधित्यजन
Writ in rem	सर्वबन्धी रिट
Wrongful act	सदोष कार्य
Zone	परिक्षेत्र

भासमुना—वि० 5—11 वि.अेस.पी.(अेन.डी.)/83—14-2-84—1,000.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh